वनौषधि-चन्द्रोदय

(तीसरा भाग)

('की से चि' तक की औषधियाँ)

लेखक—

श्री चन्द्रराज भण्डारी 'विशारद'

प्रकाशक—

ज्ञान-मन्दिर

भानपुरा (इन्दौर-स्टेट)

प्रथम संस्करण

पूरा सेट १० भाग का
साधारण संस्करण ३०)
साधारण सजिल्द ३५)

मूल्य

एक भाग का
साधारण संस्करण ३)
साधारण संस्करण सजिल्द ३॥)

प्रकाशक—
चन्द्रराज भण्डारी, कृष्णलाल गुप्त
भँवरलाल सोनी, बलराम रतनावत
संचालक—
ज्ञान-मन्दिर,
भानपुरा (इन्दौर-स्टेट)

मुद्रक—
भँवरलाल सोनी
ज्ञान मन्दिर प्रेस
भानपुरा

PATRONS

1—Lieutenant colonal His Highness Maharao Sir Ummed Singh Bahadur G C. S I. G. C. I E. G B E., Kotah.

2—Lieutenant His Highness Maharaja Krishna Kumar Singh Bahadur, Bhawnagar.

3—Lieutenant colonal His Highness Maharaja Jam Sahab Sir Digvijay Singh Bahadur K. C. S I, Nawanagar.

4—Lieutenant colonal His Highness Maharaja Lokendra Sir Govind Singh Bahadur G. C. S I., K. C S. I, Datia.

5—Lieutenant His Highness Maharaj Rana Rajendra Singh Bahadur, Jhalawar.

6—Captain His Highness Maharaja Mahendra Sir Yadvendra Singh Bahadur K C. S. I., K. C. I. E., Panna

7—Rai Bahadur Devi Singh Diwan Rajgarh State, Rajgarh

8—Rai Bahadur Rajya Bhushan Danbir Seth Hiralal Kashaliwal, Indore.

9—Kunwar Budha Singh Bapna S/o Diwan Bahadur Seth Keshan Singh, Kotah

स्मृति

स्व० सेठ कमलापतजी सिंहानिया, कानपुर

की स्मृति में

विषय-सूची

(१)

हिन्दी नाम

विषय सूचि

(२)

संस्कृत

विषय सूची

(१)

बंगाली

विषय सूची

(४)

गुजराती

विषय सूची

(५)

मराठो

विषय-सूची

(६)

अरबी .

INDEX

Latin Names

विषय-सूची

(नं० ८)

(रोगानुक्रम से)

इस विषय-सूची में इस ग्रंथ में आई हुई औषधियां जिन २ रोगों पर काम करती हैं उनमें से कुछ खास २ रोगों के नाम, और औषधियों के नाम पृष्ठांक सहित दिये जारहे हैं। सब रोगों के नाम इसमें नहीं आसके, इसलिये उनका विवरण ग्रंथ के अन्दर ही देखना चाहिये। जिन रोगों के अन्दर जो औषधियां विशेष प्रभावशाली और चमत्कारिक हैं उनपर पाठकों की जानकारी के लिये ऐसे फूल * लगा दिये गये हैं :—

अतिसार

उन्माद, हिस्टीरिया और माली खोलिया

उदरशूल, उदर रोग और आफरा

उपदंश

कुष्ट

कण्ठमाला

कृमिरोग

कर्णरोग

खांसी

गठिया

चर्मरोग और रक्त विकार व विसफोटक

जलोदर

ज्वर

दंतरोग

दाद

दमा

नेत्ररोग

नारू

नपुंसकता और बाजीकरण

पांडु रोग

प्लेग

पथरी और मूत्राघात

प्रदर रोग

प्लीहा (तिल्ली) और यकृत संबंधी रोग

पीलिया और कामला

प्रमेह

आर्तव संबंधी बिमारियां

पित्ती

बिच्छू का विष

पागल कुत्ते का विष

बंध्यत्व

बालरोग

बच्चोंका सूखा रोग

बवासीर

मस्तक शूल और आधा शीशी

मृगी

मन्दाग्नि

मुंह के छाले

लकवा संधिवात और आमवात

संग्रहणी

शस्त्र के ज़खम और दूसरे घाव

सर्प विष

सुजाक

सूजन

हृदय रोग

हड्डी का टूटना या मोच आना

हिचकी

क्षय और राजयक्ष्मा

वनौषधि-चन्द्रोदय

(तीसरा भाग)

वनौषधि-चंद्रोदय

(तीसरा भाग)

कोकीन

नाम —

हिन्दी—कोकीन। अंग्रेजी—कोकीन। तामील—शिरवंटि। लेटिन—Erythroxylon Coca (एरीथ्रोक्सीलोन कोका)।

वर्णन—

इस वनस्पति का वृक्ष ६ से ८ फीट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते हलके हरे रंग के और पतले रहते हैं। ये अंडाकार और किनारों पर तीखे होते हैं। यह वनस्पति उष्ण व आर्द्र स्थानों पर अच्छी तरह से पैदा हो सकती है। लेकिन उपचार में ली जाने वाली वनस्पति शुष्क गर्म वायु में ही बोई जाती है इस वनस्पति का खास घर दक्षिणी अमेरिका है मगर यह वेस्ट इंडीज, हिन्दुस्थान, जावा, सीलोन और अन्य स्थानों में भी पैदा होती है। भिन्न २ स्थानों में पैदा होने वाली वनस्पति के रासायनिक तत्वों में भी काफी भिन्नता रहती है। इसके अन्दर पाया जाने वाला सबसे महत्व का उपक्षार कोकिन होता है जो इस वनस्पति में .१५ से लगाकर .८ प्रतिशत तक पाया जाता है इसके अतिरिक्त इस वनस्पति में सिनेमाइल कोकिन (Cinnamyal cocaine), ट्रुक्सि लाइन (Truxilline A. B.) बेन्जाइल इगोनाइन (Benzoial Ecgonine), ट्रोपिकोकिन (Tropa cocaine) हायग्राइन, (Hygrine) और कुस्को हायग्राइन नामक पदार्थ पाये जाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति में पाया जाने वाला उपक्षार कोकिन स्नायु मंडल को उत्तेजना देने वाला एक जोरदार पदार्थ है। इसके प्रभाव अफीम के प्रभाव से मिलते जुलते हैं। अंतर केवल इतना ही है कि इसमें अफीम से कम उग्रता रहती है, किन्तु इसका प्रभाव अफीम से अधिक स्थायी होता है।

दक्षिण अमेरिका के निवासी इसके पत्तों को चूने के साथ चूसते हैं, ऐसा करने से यह अपना उत्तेजक गुण फौरन दिखलाता है। इसके अन्दर किसी भी स्थान को संज्ञाशून्य करने का गुण भी बहुत प्रभावशाली रूप में मौजूद रहता है।

इसकी संज्ञा शून्यता का गुण मालूम होने पर यूरोप में इस वृक्ष के पत्तों की अधिक मांग हुई और इसकी खेती अधिक मात्रा में की जाने लगी। भारतवर्ष के चिकित्सकों के द्वारा भी यह औषधि विशेष रूप से काम में ली जाने लगी, जिसके परिणाम स्वरूप सन् १९२८-२९ में १२५६ पौंड कोकिन बाहर से भारतवर्ष में आई।

इसके कामोद्दीपक गुणों के मालूम होने पर और गवर्नमेंट के द्वारा इस पर रोक लगाये जाने पर भारतवर्ष के अन्दर इसका गुप्त प्रचार भी बहुत बढ़ गया। ऐसा कहा जाता है कि इसका प्रचार सन् १८८० से १८९० के बीच भागलपुर से शुरू हुआ और वहां से यह बंगाल, बिहार, यू० पी०, पंजाब और सीमाप्रांत में फैल गई। पेशावर के लोगों के द्वारा इस वस्तु का प्रचार बहुत अधिक तादाद में हुआ।

कर्नल चोपरा लिखते हैं कि भारतवर्ष में यह वस्तु पान के साथ अधिक उपयोग में ली जाती है। इसी कारण इसको सेवन करने की आदत पान खाने वालों में विशेष रूप से पाई जाती है। कई लोगों का विश्वास है कि इस वस्तु के सेवन से सम्भोग क्रिया में बहुत आनन्द आता है और महज इसी कारण से कई लोग इसको खाने के आदी बन जाते हैं। दूसरा गुण इसमें यह माना जाता है कि यह मानसिक और शारीरिक थकान को दूर करने में बहुत प्रभाव दिखाती है। वेश्याएँ भी इसका प्रयोग करती हैं। वे दूसरे पदार्थों के साथ में इसका इंजेक्शन योनि में लगवा लेती हैं। इससे इसका प्रभाव भी फौरन मालूम पड़ जाता है, इससे योनि संकोचन हो जाता है और सम्भोग क्रिया में अधिक समय लगता है और अधिक आनन्द आता है।

मगर जो लोग इसके सेवन के आदी होते हैं वे शायद इसके दुर्गुणों से परिचित नहीं रहते हैं। इस औषधि का लगातार सेवन सारे शरीर पर ऐसा विषैला प्रभाव डालता है कि जिससे मुक्त होना मनुष्य के लिये शायद जीवन भर असम्भव हो जाता है। पहला नुकसान तो इस से यह होता है कि मनुष्य इसके खाने का आदी हो जाता है और उसे बिना खाये चैन नहीं पड़ता। दूसरे इस वस्तु का मस्तिष्क पर बहुत ही तेज प्रभाव गिरता है, इससे मस्तिष्क में विकार खड़ा हो जाता है, भ्रम पैदा होता है और साथ ही में विभ्रम एवं उन्माद के लक्षण दृष्टि गोचर होने लगते हैं। ये बातें एकाध दिन के बाद ही नजर आने लगती हैं, और प्रायः सप्ताह और महिनों तक बनी रहती हैं। इसके निरंतर उपयोग से इससे भी अधिक

विकार नजर आने लगते हैं, काफी अशक्तता मालूम पड़ती है, विशेष प्रकार की धातु विकृति होने लगती है, उदासीनता नज़र आती है, चरित्र में फरक होने लगता है, भ्रांति होती है और इस वस्तु का सेवन करने को इच्छा अधिक २ प्रबल होती जाती है। इच्छा शक्ति कम होती जाती है, निर्णय शक्ति का ह्रास होजाता है, कार्य करने को क्षमता घटती जाती है, विस्मरण होता है, चंचलता अधिक २ बढ़ती है और ज़िद भी जड़ पकड़ने लगती हैं। मानसिक और शारीरिक अस्थिरता दिन प्रति दिन बढ़ती है, बोलने और लिखने में निश्चितता का अभाव रहता है, सत्य बोलने वाले मिथ्या भाषी बन जाते हैं और बड़े बड़े अपराध करने लग जाते हैं। समाज प्रिय लोग एकान्त सेवी बन जाते हैं। चेतना को अपेक्षा झुलाव ज्यादा नज़र आता है और मस्तिष्क के कार्यों पर इसका विध्वंसक प्रभाव अधिकाधिक विदित होता जाता है। मानसिक अशक्तता, चिड़चिड़ापन, असत्य निर्णय, वहम, वातावरण के साथ कटु व्यवहार, अनिद्रा, भ्रम, किसी भी वस्तु को असत्य रूप में समझना ये इसके प्रत्यक्ष प्रभाव हैं। शरीर में चमड़ी के नीचे एक विशेष प्रकार का अस्वाभाविक, अप्राकृतिक अनुभव होने लगता है। अस्वाभाविक चेतना मालूम पड़ती है। अभागा प्राणी बड़ा ही दुखी जीवन व्यतीत करता है, अपना समय इसको खुराक की प्रतीक्षा में ही व्यतीत करता है और धीरे धीरे शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक तीनों ही दृष्टि से बिलकुल निकम्मा हो जाता है।

डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार कोका के पत्ते उत्तेजक, थकान नाशक और बल कारक होते हैं। इनको थोड़े से चूने के साथ खानेसे बहुत काम करने पर भी थकावट नहीं आती और भूख नहीं लगती। बड़ी मात्रा में लेने से ये बहुत नुकसान करते हैं। इनको पीस कर किसी अंगपर लेप करने से उस अंग में संज्ञा शून्यता पैदा हो जाती है। कोका के पत्ते किसी भी रोग के पश्चात की कमजोरी को दूर करने के लिये दिये जाते हैं। पेशाब के अंदर अधिक क्षार जाने से अगर मनुष्य कमजोर होता जाय तो उस में भी ये लाभ करते हैं। अधिक दिनों तक इनका सेवन करने से अफीम और शराब की तरह इनको भी लेने की आदत पड़ जाती है। जो फिर नहीं छूटती है।

दांतों के दर्द में अथवा दांत को निकालते समय इसको लगाने से या इस का इंजेक्शन लेने से कष्ट नहीं होता है।

कोइनार

नाम—

संस्कृत—रक्त पुष्प, कोविदार, वनराज। हिन्दी—कोइलारि, कोइनार, गैराल, कालियार, इत्यादि। बंगाल—देवकंचन, कोइरालि, रक्तकंचन। मराठी—अट्टमटी, देवकांचन, रक्तकांचन। पंजाब—कालीं, कारा, कोइराल। देहरादून—खैरवाल। गढ़वाल—गुइरा। तामील—कलावित इचि, मन्दरइ, मीजतिवचि। तेलगू—बोदन्त, कंजनम। लेटिन—Bauhinia Purpurea. (बौहिनिया परपूरिआ)।

वर्णन—

यह एक मध्यम आकार का वृक्ष होता है। इसकी छाल खाकी रंग की तथा कहीं २ गहरे बादामी रंग की होती है। इसके पत्ते ७-५ से १० सेंटीमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके कोमल पत्तों के पीछे मुलायम रुआं रहता है। इसकी फलियां पन्द्रह से पचीस सेंटीमीटर तक लम्बी होती हैं। इनमें बारह से लेकर पन्द्रह तक बीज रहते हैं। यह वनस्पति भारतवर्ष में बहुत थोड़ी तादाद में पैदा होती है। चीन में यह विशेष पैदा होती है। वहां इसकी खेती भी की जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ शान्तिदायक और पेट के आफरे को दूर करती है। इसकी छाल रक्तातिसार में संकोचक औषधि की तौर पर काम में ली जाती है। इसका काढ़ा घावों को धोने के काम में लिया जाता है। इसके फूल मृदु विरेचक होते हैं। इसकी छाल, जड़ और फूलों को चावल के पानी के साथ मिलाकर व्रण और विद्रधि को पकाने के लिये काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी छाल संकोचक, जड़ पेट के आफरे को दूर करने वाली और फूल मृदु विरेचक होते हैं।

कोकुन

नाम—

सिंहाली—पोथइटा, पोट्टइटा, वनपोतु। लेटिन—Kokoona Zeylanica (कोकून। झेलेनिका)।

वर्णन—

यह वनस्पति एनामालीज और सीलोन द्वीप के आर्द्र जंगलों में होती है। यह बहुशाखी बड़ा वृक्ष है। इसके पत्ते १५ से २० सेंटिमीटर तक लम्बे, गोल व बरछी आकार होते हैं। ये ऊपर के तरफ सीधे, हरे रंग के रहते हैं और नीचे के तरफ हलके पीले रंग के होते हैं। इसके पुष्प के ५ पंखड़ियां होती हैं। इसकी फलियां २.४ से ९.० सेंटिमीटर तक लम्बी रहती हैं। इनमें बीज होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी अन्तर छाल जोकि पीले रंग की होती है औषधि में काम में ली जाती है। इसको पीसकर सूंघने से नाक से पानी गिरता है। यह सिर दर्द में लाभ दाई मानी गई है।

सीलोन में यात्री लोग जोकि एडम्सपीक पर यात्रा करने के लिये जाते हैं, इस औषधि को जोंकों से बचाव करने के लिये काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका पिसा हुआ छिलका सिर दर्द में काम में लिया जाता है।

कोटू की छाल

नाम—

अंग्रेजी—कोटूकार्टिक्स।

वर्णन—

यह एक वृक्ष की छाल होती है। जो अमेरिका से यहां पर आती है। इसमें दाल चीनी-की तरह खुशबू आती है। इसका जायका कड़वा और चरपरा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वस्तु आतों का संकोचन करके पुराने दस्त और पेचिश को बंद करती है। इसकी छाल में से एक प्रकार का जौहर या उपक्षार निकाला जाता है। एक दूसरे प्रकार का सत्व भी इसमें पाया जाता है, जो क्षय रोग के बीमारों के रात्रि स्वेद को रोकने के लिये दिया जाता है।

कोंड गंगुर

नाम—

तेलगू—कोंडगोंगु, कोंडगोंगुरा। सिंहाली—हिनपिरिता, नपिरिता। मलयलम—नरनंपुलि, पचपुलि, सूरियमनि। कनाड़ी—हुलिगोवरो। लेटिन—Hibiscus Furcatus (हिबिस्कस फरकेटस)

वर्णन—

यह वनस्पति भारतवर्ष और सीलोन के उष्ण भागों में पैदा होती है। यह जमीन पर फैलने वाली या वृक्ष पर चढने वाली एक प्रकार की लता है। इसका तना कांटेदार होता है। इसके पत्ते ६.३ से ७.५ सें मी. तक लंबे रूएंदार होते हैं। इसके पुष्प व्रत पांच से १० सें.मी. तक लंबे और कांटे दार होते हैं। इसकी फलिया अ डाकार और तीखी नोक वाली होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

टेल बॉट (Talbot) के मतानुसार इसकी जड़ का शीत निर्यास गरमी की मोसिम में शीतलता लाने के लिये पानी के साथ मिलाकर लिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इस की जड़ें शीतल होती हैं।

कोतरूबरमा

वर्णन—

यह एक प्रकार की लता होती है। इसके पत्ते तरोई के पत्तो की शक्ल के मगर उनसे कुछ छोटे होते हैं। इसकी शाखाएँ सख्त होती हैं। इसका फल कचरी की तरह मगर उससे कुछ छोटा होता है।

इस फल में बीज भरे हुए रहते हैं। इसकी दो जातियां होती हैं। एक सफेद दूसरी काली । काली जाति कड़वी होती है। इन दोनों जातियों में खीरे की तरह गंध आती है। इसकी जड़ सफेद और मोटी होती है। (खजाइनुल अदविया)।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से यह औषधि गर्म तासीर की होती है। यह वमन को रोकती है। मसाने की पथरी को दूर करती है तथा फोड़े' फुन्सी और खुजली में लाभ पहुँचाती है। (ख० अ०)

कोएशिया (क्वाशिया)

नाम—

अंग्रेजी—क्वाशिया।

वर्णन—

यह एक बड़े झाड़ की लकड़ी होती है। इस लकड़ी का रंग पीला पन लिये हुए सफेद और इसका स्वाद कड़वा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

बुखार को दूर करने के लिये इस वनस्पति की बहुत प्रशंसा है। यह कृमि नाशक और हाजमें को दुरुस्त करने वाली होती है। इस लकडी में ज्वर नाशक गुण इतना अधिक है कि अगर इस लकड़ी से बनाये हुए प्याले में रात भर पानी को रख कर सवेरे उसको पीलिया जाय तो भी बुखार उतर जाता है।

कोदों

नाम—

संस्कृत—कोद्रा, कोद्रवा, कोराहुशा, कोरद्रवा, कुदला, मैदंग्रका, उद्दला, वनकोद्रवा। हिन्दी—कोदां, कोदक, कोदव, कोदों। बंगाल—कोदोंधान। मराठी—कोद्रु, कोद्रा, हारिक। गुजराती—कोद्रा। बम्बई—कोद्र, कोद्रि, हरिक, कोद्रोकोरा, पकोड़, इत्यादि। पंजाब—कोद्रा, कोदों। तामील—वरगू, वराकु। तेलगू—अरिकालु, अरिके। उर्दू—कोदों। लेटिन—Paspalum Scrobiculatum, (पेसपेलम-स्क्राबिक्यूलेटम)।

वर्णन—

यह एक प्रकार का अनाज होता है जो हिन्दुस्थान के बहुत से हिस्सों में बरसात के दिनों में पैदा किया जाता है। इसके पत्ते नुकीले, लम्बे और बहुत कम चौड़े होते हैं। इसके २ से लगाकर ६ तक बालियां लगती हैं जिनमें गोल २ और बारीक दानें निकलते हैं।

गरीब लोग इस अनाज को खाने के काम में लेते हैं। मगर यह वस्तु स्वास्थ्य प्रद नहीं होती है। इसको खाने से किसी २ को वमन होने लगता है और किसी किसी को सन्निपात ज्वर हो जाता है।

इस वस्तु में एक प्रकार का विषैला प्रभाव रहता है जिसकी वजह से बेहोशी, प्रलाप, कंपन इत्यादि लक्षण पैदा हो जाते हैं। इन लक्षणों को दूर करने के लिये केले के पत्ते की डंडी का रस, आमफल का खट्टा रस या गुड़ मिला हुआ कद्दू का रस पिलाना चाहिये। हार सिंगार के पत्तों का रस पिलाने से भी इस वस्तु का विष उतर जाता है।

इसके बीजों में दो प्रतिशत तेल और ७१४ प्रतिशत मैदा रहती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह वनस्पति कब्जियत पैदा करने वाली और पेट के कीड़ों को नष्ट करने वाली है। यह वातकारक, कफकारक और रक्तस्राव रोधक है। प्रदाह और यकृत की तकलीफों में भी यह लाभदायक है।

सुश्रुत के मतानुसार यह वनस्पति दूसरी औषधियों के साथ में बिच्छू के विष पर लाभ दायक होती है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह बिच्छू के विष पर लाभदायक नहीं है।

कोधव

नाम—

हिन्दी—कोधव। बम्बई—वेलिवी, हबय। कच्छ—कालोकटकियो, जंगली मिरची, मट-कीआल। गुजराती—खोड़, कीमियानुझाड़, शनियू। मद्रास—विलूदि। तामील—वड़गटि। तेलगू-अदमोरी निका। लेटिन—Cadaba Indica, C. Farinosa केडेबा इंडिका, केडेबा फेरिनोसा।

वर्णन—

यह एक बहु शाखी झाड़ीनुमा बेल होती है। इसकी ऊँचाई ३ से ५ हाथ तक होती है। पर यदि किसी वृक्ष का सहारा मिल जाय तो इसकी शाखाएं बहुत ऊंची चढ़ जाती हैं। इसके पत्ते लम्ब गोल और बालिश्त भर लम्बे होते हैं। फूल पीलापन लिये हुए सफेद होते हैं। ये गुच्छे में लगते हैं। इसके फल या फलिया गर्मी में पकती हैं। ये जामुनी अथवा काले रंग की और मूंगफली की तरह होती हैं। ये पक करके जब फटती हैं तब इनमें नारंगी रंग का गूदा निकलता है, जिसमें राई के समान काले बीज निकलते हैं। यह वनस्पति कच्छ, गुजरात, सिंध, राजपुताना, मध्यभारत, कोकण और कर्नाटक में विशेष रूप से पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

मुरे के मतानुसार इस के पत्ते और इसकी जड़ रुके हुए मासिक धर्म को और गर्भाशय के शूल को दूर करती है। यह ऋतुस्राव नियामक है। इसका काढ़ा गर्भाशय की तकलीफों को दूर करता है।

बच्चों को खून के दस्त, सफेद दस्त अथवा सूका रोग हो गया हो तो इसके पत्तों को पीसकर पिलाने से लाभ होता है, इसके पत्तों का अथवा जड़ का काढ़ा कृमियों को नष्ट करने के लिये बहुत प्रसिद्ध है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते विरेचक, कृमिनाशक, ऋतु श्राव नियामक और उपदंश में लाभदायक माने जाते हैं।

कोन

नाम—

परशियन—कोन। लेटिन—Astragalus Strobiliferus (एस्ट्रेगेलस स्ट्राबिलिफेरस)।

वर्णन—

यह वनस्पति पश्चिमी हिमालय में काश्मीर से लगाकर कुनावार तक ८००० से १३००० फीट की ऊंचाई तक होती है। यह बहु शाखी झाड़ी है। इसके कांटे होते हैं। इसकी पत्तियां ११ से १३ तक एक २ गुच्छे में होती हैं। ये बरछी के आकार की और हरे नीले रंग की रहती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका गोंद औषधि के उपयोग में लिया जाता है। यह ट्रेगे कैंथ का प्रतिनिधि है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका गोंद ट्रेगेकैंथ सरीखा ही है।

कोमल।

नाम—

संस्कृत—अविप्रिया। हिन्दी—कोमल। मरदई—फितूरसलियून। पंजाब—फितूरसलियून परशियन—बादियान-इ-कोही। उर्दू—बादियानेखताई। लेटिन—Prangos Pobularia (प्रेंगोस पेब्यूलेरिया)

वर्णन—

यह वनस्पति काश्मीर और तिब्बत में पैदा होती है। इसके पत्ते ३० से लगाकर ४५ सेन्टि-मीटर तक लम्बे होते हैं। इसका फल लम्बा और लकीरों वाला होता है। यही औषधि के रूप में काम में आता है। इसमें बीज रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका फल सुगन्धित, अग्निवर्धक, विरेचक, मूत्रल, ऋतुश्राव नियामक, विष नाशक, यकृत को पुष्ट करने वाला और पेट के आफरे को दूर करने वाला होता है। यह प्रदाह और शूल को नष्ट करता है। इसे कटिवात में उपयोग में लेते हैं। इसकी जड़ें खुजली में लाभ दायक होती हैं। ये भी मूत्रल और ऋतुश्राव नियामक होती हैं।

"कान्तेपिक"।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह पेट के आफरे को दूर करने वाली, मूत्रल और ऋतुस्राव नियामक होती हैं। इसमें इसेंशियल ऑइल, अल्केलाइड्स और वेलरिक एसिड पाया जाता है।

कोलमाऊ

नाम—

कनाड़ी—चित्तुतंगी और गलिमाउ। कुर्ग—कूरमाउ। कोकन—गुमाटा। मलयालम—उरउ। तामील—अनिकुरु,कोलमउ,मुलई। सिंहली—उलुउ। तुलु—नकेकुकु। लेटिन—Machilus macrantha (मेकीलस मेक्रेन्था)।

वर्णन—

यह वनस्पति पश्चिमीय प्रायः द्वीप व सीलोन में पैदा होती है। इसका वृक्ष बड़ा रहता है। इसके पत्ते ६ से लगाकर १८ से. मी. तक लम्बे और २.८ से ६.३ सेंटिमीटर तक चौड़े होते हैं। ये अण्डाकार व नुकीले होते हैं। इनका ऊपर का हिस्सा चमकीला और निचला चिकना होता है। इनके फूल पीले और गुच्छेदार होते हैं। इसका फल गहरे हरे रंग का होता है। इस पर सफेद धब्बे रहते हैं। यह धीरे २ काला होता जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका छिलका दमा, क्षय और आमवात में काम में लिया जाता है। इसके पत्ते घाव पर लगाने के काम में लिये जाते है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका छिलका दमा,क्षय और आमवात में काम में लिया जाता है।

कोलावू (कोल्लू)

नाम—

मलयालम—कियेड, कोड्डाल्ल, कोल्ल, कुल्लाटू, शिरली, शुरलो, सुराशि, सुअम्न पायनि। मराठी—आंजण। कुर्ग—चउपैनी। तामील—कोडपलई, कुडइपलि, मदनचप्रथि। कनाड़ी—जेनुयनि, इनि। लेटिन—Hardwickia Pinnata (हार्डवीकिया पिनेटा)।

वर्णन—

यह वनस्पति पश्चिमी घाट के हरे जंगलों में दक्षिणी कनाड़ा से लेकर ट्रावनकोर तक पैदा होती है। यह एक बड़ा वृक्ष है। इसकी लकड़ी बड़ी कड़ी रहती है। इसके अन्दर का हिस्सा गहरा लाल या लाल बादामी रंग का होता है। इसके वृक्ष में से लाल निस्सरण (Resin) निकला करता है। इसकी पत्तियां चार २ छः २ के गुच्छे में रहती हैं। ये तीखी नोक वाली होती हैं। इसकी लम्बाई ५ से १० सेंटिमीटर तक रहती है। इसका पापड़ा ३.८ से ५ सेंटिमीटर तक लम्बा रहता है। यह चपटा होता है यह सारा बीजों से भरा हुआ रहता है। ये बीज खुरदरे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वृक्ष का निस्सरण भारतवर्ष में सुजाक की बीमारी पर काम में लिया जाता है।

इसके तेल और राल के उपयोग के विषय में जो भी जाँच पड़ताल की गई है, उससे पता लगता है कि इसका औषधि शास्त्र में इतना महत्व पूर्ण स्थान नहीं है।

इम्पीरियल इन्स्टीटयूट लन्दन के मतानुसार इसका तेल कोपेबा के तेल के स्थान में काम में नहीं लिया जा सकता।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वस्तु सुजाक में काम में ली जाती है। इसका उपयोग कोपेबा के तेल के स्थान पर किया जाता है। इसमें उड़नशील तेल रहता है।

कोलिके कुतार

नाम—

बम्बई—कोलिके कुतार। मद्रास—कपनपुंडु। मराठी—भुयातरेटा। संथाली—ओतदोम्पो। लेटिन—Lepidagathis Cristata (लेपिडेगेथिस क्रिस्टेटा)।

वर्णन

यह वनस्पति कोकन, डेकन, उत्तरी सरकार और कर्नाटक में पैदा होती है। इसके तना नहीं होता। इसके कई शाखाएं होती हैं जो कि जड़ ही से फूट जाती हैं। ये शाखाएं मुलायम रहती हैं। इसके पत्ते बरछी आकार रहते हैं। ये २ से लगाकर ३.८ सें० मी० तक लंबे और ०.१ से १ सें० मी० तक चौडे होते हैं। इनके पृष्ठ भाग पर रुआँ रहता है। इसके पुष्प लगते हैं। इसकी फलियाँ लंबी, गोल, कुछ तीखी नोक वाली और मुलायम रहती हैं। प्रत्येक में २ बीज होते हैं। ये बीजे गोल और चपटे होते हैं। इनके ऊपर रुआँ रहता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह एक कटु वनस्पति है। इसे ज्वर में पौष्टिक वस्तु की तौर पर काम में लेते हैं। यह चर्म रोगों में, खास कर खुजली में काम में ली जाती है।

इसकी राल छोटा नागपुर में फोड़ों पर लगाई जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह ज्वर में उपयोग में ली जाती है।

कोलीकांदा (जंगली प्याज)

नाम—

संस्कृत—कोलकंद, क्रमिघ्न, पलाण्डु, मदेच्छ, मूषकंद, सुपत्र। हिन्दी—कोलिकांदा, जंगली कांदा, जंगली प्याज। गुजराती—जंगलीकांदा, रानकांदो। बंगाल—बन प्याज, जंगली प्याज। मराठी—जंगली प्याज, जंगली कांदा। काश्मीर—[illegible]

कुंद्रा, कुंद्री। अरबी असलेहिन्द, बस्खुश फेर हिंदी, इस्किले हिंदी। लेटिन—Urginea Indica (अर्जीनीया इंडिका)

वर्णन—

इस वनस्पति का कन्द देखने में प्याज की ही तरह होता है। इसका पौधा भी करीब २ वैसा ही होता है। मगर इसमें और उसमें बहुत फरक है। यह वनस्पति समुद्र के किनारे की खारी जमीनों में और पहाड़ी जमीनों पर प्रायः सब दूर पैदा होती है। इसका कन्द औषधि के रूप में काम आता है और एक वर्ष से कम उम्र का ही ज्यादा लाभ दायक होता है। पुराना कन्द निःसत्व हो जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से कोलकन्द चरपरा, गरम, कृमि रोग नाशक, वमन को दूर करने वाला और विष के विकारों को दूर करने वाला होता है।

यूनानी मत से यह विरेचक, पेट दर्द को दूर करने वाला, ऋतुश्रावनियामक और लकवा, ब्रोंकाइटीज, दमा, जलोदर, गठिया, चर्मरोग, सिरदर्द, नाक के रोग इत्यादि रोगों में लाभ दायक है।

कोमान के मतानुसार इसके कन्द का उपयोग जीर्ण वायु नलियों के प्रदाह में व नाक के बहने पर शरबत के रूप में आउट पेशन्ट्स (बीमारों) को दिया गया। यह इन दोनों ही रोगों में उपयोगी पाया गया।

डाक्टर चोपरा और डे० ने सन् १९२९ में जो प्रयत्न किये हैं, उनसे पता चलता है कि यह वस्तु युनाइटेड स्टेट्स में पाई जाने वाली Urginea Maritima से व इंग्लेंड में पायी जानेवाली (U. Scilla) से किसी कदर कम नहीं है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह हृदय को उत्तेजना देने वाली और मूत्रल है।

डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार इस औषधि की क्रिया हृदय पर बिलकुल डीजीटेलिस के समान होती है। यह छोटी मात्रा में पसीना लाने वाली है, मूत्र विरेचन करती है, कफ को नाश करती है और हृदय को ताकत देती है। बड़ी मात्रा में यह वमन और दस्त लाती है तथा आमाशय और आंतड़ियों में दाह पैदा करती है और भी अधिक मात्रा में लेने से यह दस्त और उल्टी लाकर प्राण नाश करती है। इसके अन्दर के द्रव्य आतों के द्वारा, मूत्रपिंड के द्वारा और फेफड़ों के द्वारा बाहर निकलते हैं। आतों के बाहर निकलते समय ये मल को पतला कर देते हैं। मूत्र पिंड से बाहर निकलते समय ये मूत्र के प्रमाण को बढ़ा देते हैं और फेफड़े के द्वारा बाहर निकलते समय ये कफ को पतला कर देते हैं।

यह वनस्पति डिजीटेलिस की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली, मूत्र निस्सारक और पाचन नली में दाह करने वाली होती है। डिजीटेलिस में कफ-नाशक धर्म नहीं होता, मगर कोलीकंद में कफ नाशक धर्म रहता है। कोलीकंद से हृदय को शक्ति मिलती है। उसके ठोके साफ हो जाते हैं और वह शांत गति से चलने लगता है। हृदय का अनुसरण नाड़ी भी करती है और वह भी शान्त रीति से स्थिरता के साथ चलने लगती है। इसकी मात्रा आधी रत्ती से १॥ रत्ती तक है।

जिन २ स्थानों पर डिजीटेलिस का व्यवहार किया जाता है उन २ स्थानों पर इस औषधि का प्रयोग करने से यथेष्ट लाभ होता है। खास करके फेफड़े के रोगों पर इसका विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। जब कफ अधिक और चिकना होकर जम जाता है तब इसको देने से यह उसको निकाल देती हैं। श्वास नली की जीर्ण सूजन में भी यह बहुत लाभ पहुँचाती है। पुराने कफ रोग में इसको देने से तीन प्रकार के लाभ होते हैं। (१) जीर्ण कफ रोग की वजह से हृदय के अन्दर हमेशा एक प्रकार की शिथिलता बनी रहती है, वह दूर हो जाती है। (२) कफ छूट कर जल्दी बाहर निकलता है। (३) आमाशय की शक्ति बढ़ कर भूख लगती है और अन्न का पाचन होकर दस्त साफ होती है।

यह औषधि नवीन कफ रोगों में नहीं देना चाहिये। इपिकाक की अपेक्षा यह विशेष दाहजनक होती है, इसलिये इसे वमन कराने के लिए कभी नहीं देना चाहिये।

मूत्र का परिमाण बढ़ाने के लिये इसको अकेले न देकर दूसरी औषधियों के साथ देना चाहिये। हृदयोदर रोग में इसका विशेष उपयोग किया जाता है और इस कार्य में यह विशेष कर पारा और डिजीटेलिस के साथ दी जाती है। हृदय को शिथिलता को दूर करने के लिये यह डिजीटेलिस के बदले में दिया जाता है और कभी २ डिजीटेलिस के साथ में मिला कर भी दिया जाता है। हृदय की शिथिलता में—फिर वह चाहे ज्वर की वजह से हुई हो, हृदय पटल के रोगों से हुई हो मूत्र पिण्डों के रोगों से नाड़ी कठिन हो जाने की वजह से हुई हो अथवा पाण्डुरोग या और किसी कारण से हुई हो—इसको छोटी मात्रा में देने से बड़ा लाभ होता है।

उपयोग—

मूत्रावरोध—नींबू के समान आकार के कोलीकांदे को ५ से १० रत्ती तक की मात्रा में देने से मूत्रवृद्धि होती है।

गठिया—कोलीकांदे को कूट कर पुल्टिस बनाकर बांधने से गठिया और चोट की सूजन मिटती है।

बनावटें—

कोलीकंद उषक वटिका—कोलीकन्द पचीस भाग, बच्छ बीस भाग, उषक गोंद बीस भाग और शहद बीस भाग। इन सब औषधियों को मिला कर २ से ४ रत्ती तक की गोलियां बना लेना चाहिये। ऊपर जिन २ रोगों में कोलीकन्द के लाभ बताये गये हैं। उनमें इनको देने से भी वही लाभ होता है।

कोलीकंद का सिरका—कोलीकंद १ भाग को उससे चौगुने सिरके में मिलाकर उपयोग करना चाहिये।

अर्क कोलीकंद—कोलीकंद को पांच गुनी रेक्टिफाइड स्पिरिट में ८ दिन तक भिंगोना चाहिये।

उसके बाद पाच से लेकर पंद्रह बूंद तक की मात्रा में इसका उपयोग करना चाहिये। इससे भी वे ही लाभ होते हैं जिनका ऊपर वर्णन किया गया है।

कोलकद अवलेह—कोलकंद २ तोला, आंकड़े की जड़का चूर्ण १॥ तोला, अफीम ७ माशे, सेंधा निमक ४॥ तोला, उषक गोंद २ तोला। इन सब चीजों को कूट पीस कर इनके कुल वजन से तिगुने शहद में मिला देना चाहिये। इसको १ माशे की मात्रा में देने से भी उपरोक्त वर्णित सब रोगों में लाभ होता है।

कोलेभ्मान

नाम—

बंबई—कोलेभ्मान। मराठी—नादेन। नेपाल—चर्चर। तेलगू—गुदमेतिगे, कोकित यार-आलू। लेटिन—Vitis Adnata (विटिस एडनेटा)

वर्णन—

यह एक प्रकार की वेल होती है। इसके पत्ते ७.५ से १२.५ सेंटिमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल हरे पीले रग के होते हैं। इसका फल अण्डाकार होता है। इस फल में प्रायः एक बीज रहता है। फल पकने पर काला हो जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके सूखे कंद का काढ़ा देने से खून साफ होता है। यह काढ़ा धातु परिवर्तक और मूत्र निस्सारक होता है।

संथाल के लोग इसकी जड़ को पीस कर, गरम करके हड्डी के मुड़ जाने पर बांधते हैं।

कौसू

नाम—

यूनानी—कोसू जिश्की। लेटिन—वरीरा एन्थल मेंटिका (?)।

वर्णन—

यह एक प्रकार का वृक्ष होता है जो अबीसीनिया आफ्रिका, टर्की, इत्यादि में पैदा होता है। इस दरख्त के कृमिनाशक गुण की शोध सबसे पहिले वरीरा नामक एक फ्रांसिसी डॉक्टर ने की, जो उस समय कुस्तुन्तुनिया में रहता था। उसी के नाम से इस औषधि का नाम वरीरा एन्थल मेंटिका रखा गया, इस दरख्त के पत्ते आड़ू के पत्तों की तरह होते हैं। इन पत्तों पर ऊंची २ नसें उभरी हुई रहती हैं। इस पर नर और मादा दोनों प्रकार के फूल आते हैं। नर फूल की रंगत भूरी और मादा फूल की रंगत लाल होती है। इसका स्वाद कड़वा और बे मजा होता है। इस औषधि में कोसियन नामक एक प्रकार का उपक्षार तथा राल और गोंद पाये जाते हैं। (ख० अ०)

गण दोष और प्रभाव—

यह औषधि पेट के कृमियों को अर्थात् कद्दू दानों को नष्ट करने में बहुत प्रशंसा पा चुकी है। इसके सूखे चूर्ण को आधे पाइन्ट गरम पानी में १५ मिनिट तक भिगो कर वह पानी बड़े सवेरे निराहार हालत में रोगी को पिलादें। उसके ३।४ घण्टे बाद उसको एक हलका जुलाब दे दें। अगर रोगी का जी मिचलाने लगे तो थोड़ा सा नींबू का शिकंजबीन पिलादे। इस प्रयोग से पेट के सब कीड़े दस्त की की राह बाहर हो जायगे। इसकी मात्रा ४ औंस से आधे औंस तक है। (ख० अ०)

कौड़ी

नाम—

संस्कृत—कपर्दिका, वराट, चराचर, वाल्क्रीडक। हिन्दी—कौड़ी। बंगाल—कड़ि। मराठी—कवड़ी। गुजराती—कोड़ी।

वर्णन—

कौड़िया सारे हिन्दुस्तान मे मिलती हैं। ये सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। इनकी सफेद, लाल, और पीली ऐसी तीन प्रकार की जातिया होती हैं।

कौड़ी को शुद्ध करके उसकी भस्म बनाकर उपयोग में लिया जाता है। इसको एक प्रहर तक कांजी में औटाने से यह शुद्ध हो जाती है। उसके बाद कोयले की अग्नि में रखकर धोंकनी से फूंकने से इसकी सफेद रंग की भस्म तयार हो जाती है।

आयुर्वेदिक मत से कौड़ी की भस्म गरम, दीपन, चरपरी तथा वायु गोला, वात, कफ, परिणाम-शूल, संग्रहणी, क्षय रोग, कर्णरोग, और नेत्र रोग को हरने वाली होती है। किसी किसी आचार्य के मत से कौड़ी ठण्डी होती है।

कौड़ी की भस्म में केलशियम का बहुत अंश रहता है। इसलिये जिन रोगों में मनुष्य शरीर के अन्दर केलशियम की कमी हो जाती है, उन रोगों में इस भस्म का प्रयोग करने से बहुत लाभ होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क और किसी २ के मत से सर्द और खुश्क होती है। यह बदहजमी, संग्रहणी और कान के बहने में बहुत मुफीद है। पीली कौड़ी को पीसकर मसाने पर लेप करने से रुका हुआ पेशाब खुल जाता है। इसको पानीमें घिसकर आंखमें लगाने से जाला कट जाता है और देखने की ताकत बढ़ जाती है। इस का लेप करने से दाद और कोढ़ के दाग़ में भी लाभ होता है, नोसादर के साथ कौड़ी को पीसकर लगाने से चर्म रोग मिटते हैं। पीली कौड़ी को जला कर पीसकर आधे माशे के करीब कान में डालने से और ऊपर से नींबू का रस टपकाने से उफान आता है और कान का दर्द मिट जाता है।

सूखी खांसी—इसकी भस्म को २ रत्ती की मात्रा में पान में रखकर खाने से सूखी खांसी मिटती है।

क्षय रोग—इसकी भस्म को मक्खन के साथ चटाने से क्षय रोग में लाभ होता है।

मन्दाग्नि— इसकी भस्म को पीपलामूल के साथ देने से मन्दाग्नि मिटती है।

उदर शूल— इसकी भस्म को कालीमिर्च के साथ मिलाकर आधे नींबू में भरकर इसको गरम करके चूसने से उदरशूल मिटता है।

संग्रहणी— कौड़ी की भस्म ३ माशे, शहद ७ माशे और नमक १ माशा। इन तीनो चीजों को चटाने से संग्रहणी मिटती है, मगर इसके सेवन करने वाले को केवल साठी चांवल और दूध के पथ्य पर रहना चाहिये।

मुहाँसे— पीली कौड़ी को पीसकर नींबू के रस में भिगो देना चाहिये। जब रस सूख जाय तब छरल करके मुँह पर लगाने से मुँह की झाँई और मुहासे मिटते है।

कान का बहना— इसकी राख को कान में डालने से कान का जख्म भर कर पीब का बहना बन्द हो जाता है।

कोसम

नाम—

संस्कृत — कोशाम्र, क्रिमिवृक्ष, क्षुद्राम्र, रक्ताम्र, वनाम्र,। हिन्दी - कोसुम, कुसुम, गोसुम। मराठी—कोशिम, कुसुम्ब, वाहेन, पेडुसन। बम्बई--गोसम, कंचम,कोसम, कोशिभम। मध्यप्रदेश—कुसुम। गुजराती--कौसमी, कोसुम्ब। पंजाब— गोसम, जमेआ,कुसुम्ब,सुमा। तामील— कोलमा, कोंजि पुमरम। तेलगू— कोदलीपुलुस, पपाटि। लेटिन— Schleichera Trijuga, स्केलिचेरा ट्रिजुटा।

वर्णन—

यह एक खूबसूरत और बड़ा वृक्ष होता है जो हिमालय में सतलज से नेपाल तक तथा छोटा नागपुर, मध्यभारत, सीलोन और बरमा में पैदा होता है। इसको जंगली आम भी कहते हैं। इसका वृक्ष मध्यम ऊंचाई का रहता है। इसकी छाल मोटी; नरम, हलके बादामी रंग की और फिसलनी होती है। इसके पत्ते २० से ४० सेंटी मीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल कुछ हरापन लिये हुए पीले होते हैं। इसके फल जायफल की तरह होते हैं। इन फलों में १ से ३ तक बीज रहते हैं। इसके फल का गूदा सफेद, खट्टा, रोचक और खाने लायक होता है। इसके बीजों का तेल निकाला जाता है। कलकत्ते में इसके बीजों को पक कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मतानुसार इसका छिलका चर्मरोग, प्रदाह, व्रण और कफ में लाभदायक होता है। इसका कच्चा फल तूरा व खट्टा, गरम और मुश्किल से पचने वाला होता है। यह पित्तकारक, वात नाशक, और आंतों को सिकोड़ने वाला होता है। इसका पका फल मीठा, खट्टा, सरलता से पचने वाला, आंतों को सिकोड़ने वाला व रुचि और भूख को बढ़ाने वाला होता है। इसके बीज स्निग्ध, सुस्वादु और क्षुधावर्धक होते हैं। ये पौष्टिक और पित्त नाशक होते हैं। इसका तेल कड़वा, तूरा और मीठा होता है।

यह पौष्टिक, अग्नि वर्धक, कृमिनाशक और विरेचक होता है। यह चर्म रोग में लाभ पहुँचाता है और घाव को पूरता है।

इसका छिलटा संकोचक है। इसे तेल में मिलाकर खुजली की बीमारी पर लगाते हैं। संथाल जाति के लोग इसको पीठ और कटि ऊपर की पीड़ा दूर करने के लिये काम में लेते हैं।

इसका तेल खुजली और मुँहासे के ऊपर लगाया जाता है।

इसके बीजों का तेल गंज में अत्यधिक लाभ पहुँचाता है। इसके लगाने से गज मिटकर बाल ऊगने लग जाते हैं। नीलगिरी निवासी इसके तेल को शरीर पर मलते हैं। इसके प्रभाव भिन्न २ बताये गये हैं। संयुक्त प्रांत के लोग इसे विरेचक बताते हैं। बम्बई प्रान्त के थाना डिविजन के लोग इसे विशूचिका रोग में रोग निवारक बताते हैं। बम्बई के लोग इसे आमवात में मालिश करने के काम में लेते हैं। मध्य प्रांत में सम्भलपुर के निवासी इसे सिरदर्द मिटाने के लिये काम में लेते हैं। बाम्बे, मलाबार और कुर्ग में इसे खुजली और अन्य चर्म रोग मिटाने के लिये काम में लेते हैं। यह इलाज जंगली जातियों में ज्यादा प्रचलित है। इसके बीजों को पीसकर जानवरों के घावों पर लगाते हैं और भीतर के कृमियों को भी नाश करने के काम में लेते हैं।

कम्बोडिया में इसका छिलटा मलेरिया की बीमारी में शीत निर्यास के रूप में काम में लिया जाता है। सुश्रुत और बापट इसके फूल को सर्पदंश में उपयोगी बताते हैं। किन्तु वेस और महस्कर के मतानुसार यह सर्पविष नाशक नहीं है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका छिलटा सकोचक और इसका तेल बाल बढ़ाने वाला होता है इसमें Syanogenitic Glucoside रहते हैं।

कोष्ट

नाम—

संस्कृत—दीर्घपत्री, दिव्यगन्ध, विषारि, नाड़ीक, बृहच्चंचु। हिन्दी—कोष्ट, वनपात, पात। बंगाल—कोष्टपात, ललितपात, वनपात, मुंगीपात। गुजराती—छुंछो, मोटी छूंछ। मद्रास—सनेल। पंजाब—बनफल। तामील—पेटाति, पुनपु। तेलगू—परिता, परितंकुरा। लेटिन—corchorus olitorius (कारकोरस ओलिटोरियस।)

वर्णन—

यह एक वर्ष जीवी वनस्पति है। इसके झाड़ तरकारी के लिये लगाये जाते हैं। इसके पत्ते ६.२ से १० सेंटीमीटर तक लम्बे और ३.८ से ५ सेंटीमीटर तक चौड़े होते हैं। इसके फूल हलके पीले रंग के रहते हैं। इसकी फलिया ३ से लेकर ६.२ सेंटीमीटर तक लम्बी रहती हैं। इसके बीज काले रहते हैं। इसके सूखे हुए पत्ते नलित या नालित के नाम से बिकते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते तीखे, उष्ण और कसेले होते हैं। ये दाह को नष्ट करने वाले, संकोचक, मूत्र निस्सारक, बलदायक, मृदु स्वाभावी, ज्वर नाशक और धातुपरिवर्तक होते है। इसके अतिरिक्त अर्बुद, शूल जलोदर, बवासीर, पेट की गठान और विष के उपद्रवों को भी दूर करते हैं।

इस वृक्ष को सुखाकर, जलाकर, पीप लेते हैं और घाव पर उपयोग में लेते हैं। दक्षिणी हिन्दुस्थान में इसे शान्तिदायक वस्तु की तौर पर काम में लेते हैं।

इसके पत्ते शान्ति दायक, पौष्टिक और मूत्रल हैं। ये मूत्राशय के प्रदाह के जीर्ण रोगों में और सुजाक में लाभदाई हैं। इसके पत्ते और कोमल डालियां खाने के काम में ली जाती हैं। यह पौष्टिक और ज्वर निवारक होने के कारण एक प्रकार की घरेलू औषधि है। इसे ज्वर में पीने के काम में लेते हैं।

इसके सूखे पत्ते बाजार में बेचे जाते हैं। इसका शीत निर्याय कटु, पौष्टिक औषधि की तौर पर काम में लिया जाता है। इसमें उत्तेजक गुण नहीं रहते हैं। जो बीमार तीव्र पेचिश रोग से मुक्त हो जाते हैं उन्हें यह औषधि भूख और ताकत बढ़ाने के लिये दी जाती है।

इसके बीज विरेचक हैं।

कर्नल चौपरा के मतानुसार यह ज्वर व पेचिश में उपयोगी है।

ज्वर के अन्दर इस वनस्पति के पत्तों की फाँट बनाकर दी जाती है। अतिसार में इसके पत्ते ५ रत्ती की मात्रा में सोंठ और शहद के साथ दिये जाते हैं। इसके पंचांग की राख शहद में मिलाकर गुल्म रोग (वायुगोला) को नष्ट करने के लिये दी जाती है। मूत्रकृच्छ्र और जीर्ण वस्तिशोथ में इसके पत्तों की फांट लाभदायक होती है। इसके पत्तों के हिम कषाय से भूख बढ़ती है और पाचनशक्ति दुरुस्त होती है।

कड़ु कोष्ट

नाम—

संस्कृत—दीर्घचंचु, कौंटि। हिन्दी—कड़ु कोष्ट, कड़वा पात। मराठी—कड़ु चंच। बम्बई—कड़ छंछ, कुवछंच। गुजराती—कड़वो छड़ी। लेटिन—Corchorus Trilocularis (कारकोरस ट्रिलोक्यूलेरिस)

वर्णन—

यह वनस्पति बंगाल, दक्षिण, मद्रास और बाम्बे प्रेसीडेन्सी, खानदेश, गुजरात, कच्छ, सिन्ध बलूचिस्तान, अफगानिस्थान, अरेबिया और दक्षिण अफ्रीका में पैदा होती है। यह एक वार्षिक वनस्पति है। इसका मकांड और शाखाएँ कुछ रुएँदार होती हैं। इसके पत्ते २.५ से १० सें० मी० लम्बे और २.३ से २ सेंटीमीटर चौड़े होते हैं। ये बरछी के आकार के रहते हैं। इसकी फलियाँ ५ सें० मी० से ७.५ सें० मी० तक लम्बी व नोकदार रहती हैं। इसके बीज काले रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव--

आयुर्वेदिक मत—यह वनस्पति कड़वी, गरम, कब्जी और आंतों को सिकोड़ने वाली होती है। यह अर्बुद, जलोदर, बवासीर और पेचिश में फायदा पहुंचाती है। इसके पत्ते सुस्वादु होते हैं। ये शीतल, विरेचक, उत्तेजक, पौष्टिक और कामोद्दीपक रहते हैं। इसके बीज गरम, तीक्ष्ण, शूलनाशक तथा अर्बुद नाशक होते हैं। ये खुजली, पेट की तकलीफ और चर्मरोगों को मिटाने वाले रहते हैं।

इस वनस्पति को कुछ देर पानी में गलाकर और मसल कर शांतिदायक औषधि के तौर पर काम में लेते हैं। इसके बीज कटु होते हैं और इन्हें ८० ग्रेन की मात्रा में ज्वर में, उदर की तकलीफों में और खास करके आंतों की पीड़ा में काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीज ज्वर में उपयोगी हैं।

कोपेबा

नाम—

अंग्रेजी—copiabea कोपायबा।

वर्णन—

यह वृक्ष ब्राजील, फजीरा और अमेरिका में पैदा होता है। इसके झाड़ के पिंड में चीरा देने से एक प्रकार की हलके पीले रंग की चिपचिपी राल निकलती है। इसमें एक प्रकार का तेल भी रहता है, जो कोपेबा आइल के नाम से मशहूर है।

गुण दोष और प्रभाव—

कोपेबा ऑइल का असर चमड़े के ऊपर खास तौर से होता है। इसके खाने से जी मिचलाता है और बहुत खराब डकारें आती हैं। अधिक मात्रा में इसको लेने से दस्त और उल्टियाँ होने लगती हैं। ज्यादा समय तक इसको लेने से हाजमा खराब हो जाता है। श्लेष्मिक झिल्लीपर इसका असर दूसरे मुलायम तेलों की तरह होता है। यह वस्तु खून में बहुत जल्दी प्रवेश कर जाती है और रक्तवाहिनी नाड़ियों को फैला देती है। गुर्दे के ऊपर इसका बहुत तेज असर होता है। यह मूत्र निस्सारक भी है। सुजाक में भी यह लाभ पहुँचाती है। गुर्दे और मसाने की सूजन, योनि की सूजन, श्वेत प्रदर और पुरानी खांसी में भी यह अच्छा लाभ करती है। सुजाक में जब कि उसके उपद्रव बहुत जोरों पर हों तब इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। बल्कि जब सूजन दूर हो जाय तब इसका प्रयोग करना चाहिये।

जिगर या दिल की खराबी से होने वाले जलोदर में भी यह बहुत मुफीद है।

कोपेबा बहुत बदजायका दवा है। इसके इस्तेमाल से हाजमा भी खराब होजाता है। इसलिये इस को सुजाक के सिवाय दूसरे रोगों में कम उपयोग में लेना चाहिये।

कोरंती

नाम—

संस्कृत—एकनायकम। मद्रास—कोरंती। सिंहली—हिम्बुटुवेल और कोजल हिम्बुटु। लेटिन—Salacia Reticulata (सेलेशिया रेटिक्यूलेटा)।

वर्णन—

यह वनस्पति भारतवर्ष के दक्षिण पश्चिम में और सीलोन में पैदा होती है। यह एक पराश्रयी लता है, इसका छिलटा हलके पीले रंग का होता है। इसके छोटे कोपल हिस्से मुलायम रहते हैं। इसके पत्ते अण्डाकार और बीट के तरह कम चौड़े होते हैं। इनकी नोक तीखी रहती है और रंग पीछे की बाजू हलका होता है। इसका फल फिकना, हलके गुलाबी रंग का व चमकीला होता है। इसमें बादाम सरीखे बीज निकलते हैं।

गुण, दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ का छिलटा आमवात, सुजाक और चर्मरोगों में काम में लिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ का छिलटा आमवात, सुजाक और चर्म रोगों में काम में लिया जाता है।

कोपाटा

नाम—

बंगाल—कोपाटा। लेटिन—Bryophyllum calycinum (ब्रियोफिलम केलिसिनम)।

वर्णन—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते घाव, फोड़े और कीड़ों के काटने पर उपयोग में लिये जाते हैं।

कुन्दश*

नाम—

यूनानी—कुन्दश।

वर्णन—

कुंदश के विषय में यूनानी हकीमों में बड़ा मत भेद है। कोई २ इसे, अकलबेर की जड़ मानते हैं। किसीने इसको चूक बतलाया है जो कि सत्यानाशी की जड़ को कहते हैं। किसी २ ने इसको नक छींकनी माना है। लेकिन खजाइनुल अदविया के लेखक ने इसे बेख गाजरान माना है।

* नोट—ये औषधियां अकारादि क्रम से पहले छपना चाहिये थीं, मगर गलती से छूट जाने से, यहां पर छापी जा रही हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह तीसरे दर्जे के आखिर में गरम और खुश्क है। यह प्यास लगाती है, कफ को छांटती है। पित्त, वात को दूर करती है। पेट के कृमियों को नष्ट करती है। तथा जलोदर, पीलिया, गठिया, लकवा, फालिज, मृगी, कुष्ठ, तिल्ली की सूजन और रतौंधी में लाभ पहुँचाती है। आवाज को साफ करती है और आंख की रोशनी को तेज करती है। इसको रोगन बनफशा में जोश देकर कान में टपकाने से कान का मैल, कान की भनभनाहट और बहिरेपन में लाभ होता है।

इसके तेल को नाक में सुंघाने से बहुत छींकें आती हैं और छींकों के जरिये दिमाग का सब कफ और विकार दूर हो जाते हैं। अगर छींके अपने आप न रुकें तो बनफशा के तेल को नाक में टपकाने से छींके रुक जाती हैं। यह औषधि मूत्र निस्सारक और रजावरोध को मिटाने वाला है। इसके सेवन से मासिक धर्म चालू हो जाता है। गर्भवती स्त्रियों को इसे नहीं देना चाहिये क्योंकि इसके सेवन से गर्भ पात हो जाता है।

इसको शहद के साथ लेप करने से चेहरे की झाई, श्वेत कुष्ठ के दाग और दूसरे चर्मरोग मिट जाते हैं। यह औषधि फेफड़े को नुकसान पहुँचाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिये कतीरा और दूध का प्रयोग करना चाहिये।

इसकी मात्रा वमन करने के लिये ६ रत्ती से १२ रत्ती तक की है और ताप, तिल्ली और पीलिया के लिये १२ जौ से २१ जौ तक है।

कुन्दुरी

नाम—

यूनानी—कुन्दरी।

वर्णन—

यह एक प्रकार की रोईदगी होती है। इसके पत्ते गाजर के पत्तों की तरह मगर उनसे कुछ चौड़े होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह औषधि मासिक धर्म को चालू करती है। (खजाईनुल अदविया)

खगफुलइ

नाम—

नेपाल—खगफुलइ व खफवालयो। लेटिन—Rhus Insignis हस इन सायनिस।

वर्णन—

यह वनस्पति सिक्किम और हिमालय में ३००० फीट से ६००० फीट की ऊँचाई तक और खासिया पहाड़ी पर ४००० फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है। यह एक छोटा सुन्दर वृक्ष रहता है। इसके पत्र वृंत मुलायम होते हैं। इसका फल गोल रहता है। इसकी गिरी कड़ी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका रस छाला उठा देता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह छाला उठा देने वाली है। इसे उदरशूल में देते हैं।

खजूर

नाम—

संस्कृत—दीप, मुदारिका, पिंडखर्जुरा, फलपुष्पा, पिंड खजूरिका, पिंडफला, स्वादुपिंडा। हिन्दी-खाजि, खजूर, छारक। अरबी—नखलेह। बंगाल-खजूर। बम्बई—खजूर। ब्रह्मा-सुनबलून। कनाड़ी—कजुरा, कारिका, कर्जुरा, खर्जुरा। गुजराती—कारेक, खजूर। मलायलम—इचपालम। मराठी—खजूर नसीराबाद—खाजि, खुरमा। पंजाब—खाजि, खजूर। सिंध—कुरमा, काजि, तार, पिंडचिर्दी। तामील—इचु, इञु, कर्चूर, कुर्व, पेरेंइञु, पेरिजुं, तिति। तेलगू-खर्जुरम्, मंजीइता, पेरिड, पेरिता। टर्की—करमा। उर्दू—खुरमा। उड़िया—खोर्जुरि। लेटिन—Phoenix Dactylifera (फोइनिक्स डेक्टिलिफेरा)।

वर्णन—

यह वनस्पति सिंध में और दक्षिण पंजाब में ज्यादा पैदा होती है। यह पश्चिमीय एशिया, उत्तरी अफ्रिका, स्पेन, इटली, ग्रीक और सिसली में भी होती है। इसका वृक्ष ऊँचा होता है। इसके प्रकाण्ड पर पत्र वृंत के डण्ठल लगे हुए रहते हैं। इसके पत्ते कुछ भूरापन लिये हुए रहते हैं और खजूरी के पत्तों से छोटे होते हैं। इसका फल २.५ से ७.५ सें० मी० तक लंबा रहता है। यह पकने पर कुछ लाल या हलके बदामी रंग का हो जाता है और मीठा रहता है। इसकी कई भिन्न भिन्न जातियों की खेती की जाती है। इसका बीज लंब गोल रहता है और इसके फल के बीच में खड़ी लकीर शुरु से आखिर तक रहती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसका फल मीठा और शीतल रहता है। यह पौष्टिक, मोटा करने वाला, कामोद्दीपक और विषहर होता है। यह कुष्ट, प्यास, श्वास, वायु नलियों का प्रदाह, थकान, क्षय, उदर रोग, ज्वर, वमन, मस्तिष्क विकार और चेतना नष्ट होने पर लाभदायी होता है। इस वृक्ष से तैयार की हुई मदिरा कामोद्दीपक, नशा लाने वाली, मोटा बनाने वाली और रुचि पैदा करने वाली होती है। यह वायु नलियों के प्रदाह में और वात में उपयोगी तथा पित्तकारक होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके पत्ते कामोद्दीपक होते हैं। ये यकृत में लाभदायी हैं। इसका फूल कटु, विरेचक, कफ निस्सारक और यकृत को पुष्ट करने वाला होता है। यह ज्वर और रक्त सम्बन्धी शिकायतों में फ़ायदा करने वाला होता है। इसका फल कामोद्दीपक और पौष्टिक होता है। यह गुर्दों को व मूत्राशय को मजबूत बनाता है और रक्तवर्धक है। यह पक्षाघात, सीना और फेफड़े की तकलीफों में लाभदायी है। इसका सूखा फल मीठा, मूत्रल, कामोद्दीपक और रक्तवर्द्धक है। यह वायु नलियों के प्रदाह में लाभदायक है। इसके बीज को चोट पर लगाने के काम में लेते हैं। यह प्रदाह को कम करता है।

खारकें या खजूर शान्तिदायक, कफ निस्सारक, विरेचक, कामोद्दीपक मानी जाती हैं। ये खांसी, श्वास व छाती की तकलीफों में लाभदायक हैं। ज्वर, सुजाक इत्यादि में भी ये फायदा पहुंचाती हैं। इसका गोंद अतिसार रोग की एक उत्तम औषधि मानी गई है। यह मूत्राशय व गर्भाशय के विकारों को दूर करती है। इस फल के अधिक उपयोग से मसूड़े फूल जाते हैं।

दक्षिण भारत के निवासी इसके बीजों की लुगदी तैयार करते हैं और चक्षु पटल की तकलीफ में पलक के ऊपर लगाने के काम में लेते हैं। इसका ताजा रस शीतल और विरेचक है। ठंड की मौसिम में यह रस नहीं बिगड़ता क्योंकि उस समय इस में खमीर नहीं उठता। अतएव यह एक उत्तम औषधि है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह शान्तिदायक, कफ निस्सारक, मृदु विरेचक और कामोद्दीपक है। यह श्वास में उपयोगी है।

खजूरी

नाम—

संस्कृत—भूमि खर्जूरिका, हरिप्रिया, काककर्कटी, कपिता, खर्जु, खर्जूरी, मृदुच्छदा, स्कन्धफला, स्वादुमुस्तका, इत्यादि। हिन्दी—केजूरखाजि, खजूर, खजूरि, सालमा, सेन्धि, थकिल, थलमा। बंगाली—काजूर, केजूर। बरार—सेन्दि। बम्बई—खजूर, खजूरा और सेन्दि। कनाड़ी—अन्ददईचञ्ज, पिचालु, ईचेला, कलिचालु। डेक्कन—सेंदोले कनार। कोकनी—कजूरी। मराठी—शिंदि, सेन्धि, सिंदी। मुंडारि—दरुकिता। पंजाब—खाजि, खजूर। सिंहाली—इन्दि। तामील—ईञ्जु, करवम, करिञ्जु। तेलगू—पेड्डईदा। उड़िया—खोजुरि और खोजिरो। लेटिन—Phoenix Sylvestris (फोइनिक्स सिलवेस्ट्रिस)

वर्णन—

यह एक बहुत सुन्दर वृक्ष रहता है। इसका प्रकांड खुदरा होता है क्योंकि इस पर पत्तों के डण्ठल मौजूद रहते हैं। इसका ऊपरी हिस्सा गोल, बहुत बड़ा और घना होता है। इसके पत्ते कुछ हरे रंग के होते हैं। यह प्रायः सारे ही भारतवर्ष में पैदा होती है। इसे लगाते भी हैं और जंगल में यह अपने आप भी लग जाती है। इसके नर पुष्प सफेद और सुगन्धित होते हैं। इसके ऊपर कांटे भी रहते हैं। इसके नारी पुष्प नर पुष्प ही की तरह होते हैं। इसके फल इसके लम्बे पत्रवन्तों पर लगे हुए रहते हैं। इसका फल

२.५ से ३.२ सेंटीमीटर लम्बा होता है। यह लम्बगोल होता है। इसका रंग नारंगी पीला होता है। इसकी गुठली पर एक सफेद झिल्ली रहती है। यह झिल्ली गूदे और गिरी को प्रथक २ करती है। इसके बीज की नोकें गोल रहती हैं। इसके एक बाजू पर गहरी लकीर रहती है और दूसरी बाजू पर भी हलकी व अधूरी लकीर रहती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसका फल मीठा, स्निग्ध, पौष्टिक, चर्बी बढ़ाने वाला, कब्जियत करने वाला और कामोद्दीपक होता है। यह हृदयरोग, उदररोग, ज्वर, वमन, और चेतना नष्ट होने पर लाभ पहुँचाता है।

इसके वृक्ष से प्राप्त किया हुआ रस शीतल होता है। यह एक उत्तेजक पेय है। इसके मध्य का कोमल हिस्सा सुजाक और प्रमेह में लाभदायक है। इसकी जड़ दांतों के दर्द में उपयोगी है।

इसका फल बादाम, पिश्ते, शक्कर और अन्य मसालों के साथ में मिलाकर पौष्टिक पदार्थ के रूप में काम में लिया जाता है इसके फल के गूदे की चूरदी बनाकर अपामार्ग के साथ में उसे मिलाकर पान के साथ खाने से जूड़ी बुखार में फायदा होता है।

कर्नल चोपरा के मत से यह पौष्टिक, उत्तेजक तथा शक्तिदायक पदार्थ है।

खजामा

नाम—

यूनानी—खजामा।

वर्णन—

इसका झाड़ बनफशा के झाड़ की तरह होता है। इसके फूल भी बनफशा के फूलों की तरह लेकिन कुछ नीलापन लिये हुए होते हैं। इन फूलों में सेव के फूलों की तरह खुशबू आती है। इसके बीज कुछ काले रंग के होते है। यह वनस्पति हिमालय पहाड़ में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसके फूल पत्तों से ज्यादा गरम होते हैं। इसके फूल गरमी पैदा करते हैं, जुकाम को दूर करते हैं, दिल और दिमाग को ताकत देते हैं। इनको पीस कर योनिमार्ग में रखने से सफेद प्रदर में लाभ होता है। मूत्रेन्द्रिय पर इनका लेप करने से कामशक्ति बढ़ती है। यह वनस्पति गरम मिजाज वालों में सिरदर्द पैदा करती है। इसके दर्प को नाश करने के लिये आस का प्रयोग करना चाहिये। इस वनस्पति का प्रतिनिधि अकलकरा है।

खतमी

नाम—

यूनानी—खतमी।

वर्णन—

यह एक पौधा होता है इसके पत्ते गोल, खुरदरे और फीके हरे रंग के होते हैं। इसके फूल बड़े, गोल. और सफेद, गुलाबी, लाल, पीले, इत्यादि कई रगों के होते हैं। अलग अलग रग के फूलों वाली खतमी के गुणों में भी कुछ अन्तर रहता है, सफेद रंग के फूलों वाली जाति सबसे अधिक गुणों वाली मानी जाति है। इसकी जामुनी फूल वाली जाति को भारतवर्ष में गुले खैरू कहते हैं। खतमी के बीज काले रग के और चपटे होते हैं। इसकी जड़ बहुत चिकनी और लुआबदार होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी चिकित्सा में खतमी एक बहुत महत्व पूर्ण औषधि मानी जाती है। गावजवान और बनफ़शा की तरह यह भी यूनानी हकीमों के रात दिन काम में आने वाली एक घरेलू औषधि है।

यूनानी मत के अनुसार यह औषधि सर्द और तर होती है। किसी किसी के मत से यह मौत दिल होती है। इसके पत्ते गर्मी से पैदा होने वाली सूजन, कठमाला, गठिया, लंगड़ी का दर्द (siatica) सधिवात और गुदा के वरम में बहुत लाभदायक माने जाते हैं। इन पत्तों को सिरके में पीसकर श्वेत कुष्ट के सफेद दागों पर लगाकर धूप में बैठने से लाभ पहुंचता है। गंधक के साथ मिलाकर इनका लेप करने से कठमाला और गठिया में अच्छा लाभ होता है। स्त्रियों के स्तनों पर अगर गरमी की वजह से सूजन आजाय तो इन पत्तों के लेप से वह बिखर जाती है। निमोनियां में दूसरी दवाओं के साथ इसको खिलाने से अच्छा लाभ होता हैं इसके पत्तों को चबाने से गरमी की वजह से पैदा हुआ पेट का दर्द और मरोड़ी के दस्त बन्द हो जाते हैं। आंतों की दाह और पेशाब की जलन को भी इसके पत्ते बन्द करते हैं। रोगन जैतून में इन पत्तों को पीसकर लगाने से जहरीले जानवरो के डङ्क की पीड़ा दूर होती है।

खतमी के फूल—इसके फूल गरमी से पैदा हुए सिरदर्द में मुफीद हैं। ये शरीर के अन्दर संचित हुए दोषों को फुलाकर दस्त की राह निकाल देते हैं, इसी लिए यूनानी हकीम इनको मुंजिशों में डालते हैं। दूसरी दवाओं के साथ इनका जोशांदा बनाकर उस जोशांदे की धार पैर की पिण्डलियों पर देने (पाशुंवा करने) से दिमाग़ की हर तरह की खराबी दूर होती है। खतमी के फूलों का काढा मसाने की पथरी और आंतों के जख्म को दूर करता है। यह गरमी से पैदा हुए लंगड़ी के दर्द, लकवा, और मिर्गी में भी लाभ पहुँचाता है तथा पेशाब और मासिक धर्म को साफ करता है।

खतमी के फूल मेदे को नुकसान पहुँचाते हैं, इनके दर्प को नाश करने के लिए शहद का प्रयोग करना चाहिये। इनके प्रतिनिधि खबाजी है।

खतमी के बीज—

खतमी के बीज शरीर में संचित हुई गन्दगी को मुलायम करके, फुलाकर दस्त की राह

निकाल देने में काफी प्रसिद्ध हैं। इनके सेवन से गुरदे की पथरी कट जाती है तथा गठिया, उदरशूल, और निमोनिया में भी अच्छा लाभ पहुँचता है। खांसी और कफ में खून जाने (Halmoptysis) की बीमारी में भी ये मुफीद हैं। सफ़ेद दाग पर इन बीजों का लेप कर धूप में बैठना अच्छा है। इन बीजों को समान भाग बबूल के गोंद के साथ पानी में पकाकर हाथ पैरों को धोने से खाल की फटन (बिवाई फटना) मिट जाती है।

शेख हकीम के मतानुसार, खतमी के बीजों का कुन-कुने पानी में लुआब निकालकर कुछ शक्कर मिलाकर पीने से कुछ ही दिनों में गरमी से पैदा हुई खांसी मिट जाती हैं तथा कफ में खून गिरना भी बन्द हो जाता है।

गर्भाशय की सूजन में इसके लुआब में कपड़े को तर करके गर्भाशय में रखने से सूजन मिट जाती है। यह प्रयोग तीन हफ्ते तक करना चाहिये।

पित्त के दस्त, कब्जियत और आंतों के फोड़े में भी इन बीजों के लेने से बहुत लाभ होता है। ये आंतो और पेशाब को जलन को दूर करते हैं। इनकी मात्रा चार माशे से नौ माशे तक की है।

मूत्रेन्द्रिय को कष्ट साध्य सूजन में इन बीजों को सिरके में पीस कर लेप करने से बड़ा लाभ होता है। खजाइनुल अदविया के ग्रंथकार का कथन है कि इस प्रयोग से कई रोगी आराम हुए हैं।

अगर वान्ध स्त्री के गर्भाशय का मुँह बन्द हो तो इन बीजों के काढ़े से टब को भरकर उस टब में उस स्त्री के नाभि के नीचे के भाग को रखने से गर्भाशय का मुँह खुल जाता है। इन बीजों को शराब में पकाकर बतम के गोंद और मुर्गाबी की चरबी के साथ मिलाकर गर्भाशय में रखने से गर्भाशय की वरम उतर जाता है और उसका मुंह खुल जाता है। मतलब यह कि यह वस्तु स्त्रियों का वंध्यत्व नष्ट करने में अच्छा काम करती है।

इसके काढ़े को पीने से प्रसव के समय का रुका हुआ खराब खून भी साफ होता है। इसको सिरके में पीस कर शहद की मक्खी के काटे हुए स्थान पर लगाने से जहर का जोर कम हो जाता है। इसको उबाल कर घोड़े के सुम (खुर) पर लगाने से सुम बढ़ने लगता है।

खतमी के बीज मेदा और फेफड़े को नुकसान पहुँचाते हैं। इनके दर्प को नाश करने के लिए शहद और जरेशक का प्रयोग करना चाहिये। इनका प्रतिनिधि नीलोफर और बबूल का गोंद है।

खतमी की जड़—खतमी जड़ कब्जियत को मिटाने वाली और पेचिश को दूर करने वाली होती है। पित्त के दस्त, पेशाब की जलन और आंतों की जलन तथा खुश्की में यह लाभ पहुँचाती है। गरमी की खांसी, मलद्वार की जलन, कफ में खून जाना इत्यादि रोगों में यह लाभदायक है। यह आंतों के सुद्दे खोलती है। इसको बारीक पीस कर सुअर या बकरी की चरबी और रोगन सोसन और बाकले के आटे में मिलाकर, पकाकर जोड़ों की सूजन और जोड़ों के दर्द पर लगाने से सख्त से सख्त सूजन बिखर जाता है और दर्द मिट जाता है। अगर कान के आस पास की जगह पर सूजन आ जाय तो इसके लेप से बिखर जाती है।

दांतों के दर्द में इसके काढ़े में सिरका मिलाकर कुल्ले करने से बड़ा लाभ होता है। किसी वजह से अगर पेशाब मे रुकावट आ जाय तो शराब के साथ इसका जोशांदा पीने से पेशाब खुल जाता है। अगर पथरी हो तो वह टूट कर निकल जाती है। मसाने को खराबी और गुरदे की पथरी भी इससे दूर हो जाती है।

खतमी का गोंद—

जब हवा मे गरमी आती है उस समय इसके पेड़ों मे गोंद फूटता है। यह गोंद पीला और सुर्ख होता है। इसकी प्रकृति सर्द और खुश्क होती है। यह प्यास का रोकता है, दस्त को बन्द करता है तथा पित्त की वमन को दूर करता है।

खपरा (खापरा)

नाम—

संस्कृत—वृश्चक, चित्रिका, भानसत्रा, कठिल्ला, श्वेतपुष्प, श्वेतरक्त, श्वेतपुनर्नवा, विशाखा, वर्षांगी। हिन्दी—खपरा, साठुनि, विषखपरा। बंगाल—ठाठुनि। बम्बई—विषखपरा, श्वेतपुनर्नवा। दक्षिण—वसुरतिरो, वळाइ मराठी—कुशरि, घेंटुलि, वसु। नसीराबाद—विशाख।

वर्णन—

यह क्षुद्र जाति की वनस्पति पुनर्नवा के पौधे की तरह ही दिखलाई देती है। इसीलिये इसका नाम श्वेत पुनर्नवा भी रक्खा गया है। मगर वास्तव में पुनर्नवा का और इसका वर्ग अलग २ है। यह Ficoidaceae (फिकोइडासीए) वर्ग की औषधि है और पुनर्नवा Nyctaginaceae (निक्टेजिनेसीई) वर्ग की औषधि है। रक्त पुनर्नवा का वर्णन पुनर्नवा के प्रकरण में दिया जायगा।

खपरा सारे भारतवर्ष, बिलुचिस्थान और सीलोन में पैदा होता है। इसका पौधा जमीन पर फैला हुआ रहता है। इसके पत्ते दो-दो के जोड़े में आते हैं। पर उस जोड़े में एक पत्ता बड़ा और गोल होता है और दूसरा छोटा और लम्बा होता है। पुनर्नवा के पत्तों की अपेक्षा इसके पत्ते दलदार होते हैं। यह वनस्पति वर्षाऋतु के प्रारंभ में सर्वत्र पैदा हो जाती है। औषधि के रूप में इसकी जड़ ही अधिक काम आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति कड़वी, उष्ण, विष नाशक, वेदना नाशक, अग्निवर्द्धक, मृदु विरेचक और खांसी, वायु नलियों के प्रदाह, हृदय रोग, रक्त रोग और पांडु रोग में लाभ पहुँचाने वाली होती है। यह वादी के बवासीर और जलोदर रोग में भी लाभदायक होती है। नेत्र शक्ति की कमजोरी और रतोंधी में भी यह उपयोगी है।

डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार यह एक तीव्र विरेचक औषधि है। इससे आंतों में ... होती है। इसके कोमल पत्तों की तरकारी दीपन, वात नाशक और कफ नाशक होती है।

जिन २ रोगों में तीव्र जुलाब की जरूरत होती है उन रोगों में यह औषधि दी जाती है। यकृत में रक्ताभिसरण होने की वजह से पैदा हुए यकृतोदर और जीर्ण मलावरोध की वजह से पैदा हुए कण्डु वगैरह चर्मरोगों में तथा पाण्डुरोगों में इस औषधि का प्रयोग किया जाता है। यकृत और तिल्ली की खराबी की वजह से पैदा हुए सूजन में तथा अजीर्ण की वजह से पैदा हुए सूजन युक्त दमे में तथा गर्भाशय की सूजन की वजह से पैदा हुए रजोरोध में इस औषधि को देने से लाभ होता है। इसकी पूरी मात्रा १५ से लेकर ६० रत्ती तक की है। मगर इन रोगों में इसकी पूरी मात्रा न देकर एक मात्रा के दो तीन भाग करके तीन २ घण्टे के अन्तर से देना चाहिये।

के० एल० दे० के मतानुसार इसके बीज भारतवर्ष में बहुत पहले से मशहूर हैं इसके विरेचक गुण जेलप (Jalup) के गुणों से मिलते जुलते हैं। यह एक उत्तम और तीव्र विरेचक है। इसके एक्स्ट्रेक्ट्स, टिंक्चर्स और रेजिन्स फरमाकोपिया आफ इण्डिया में सम्मत माने गये हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि विरेचक और गर्भस्रावक है। यह नष्टार्तव में लाभदायक है।

खपरिया

नाम—

संस्कृत—खर्पर। हिन्दी—खपरिया। गुजराती—खपरीयू। बंगाल—खापर। लेटिन—Zinci Carbonas.

वर्णन—

खपरिया एक उपधातु है। इसके विषय में वैद्यों के अन्दर बड़ा मतभेद है। इसके विषय में जैपुर के आयुर्वेद सम्मेलन में विशेष चर्चा चली थी और उसके पश्चात् वैद्यराज जादवजी त्रिकमजी ने भी इस विषय पर विवेचन किया था मगर इस पर कोई अन्तिम निर्णय नहीं होने पाया। बहुत से लोग इसको जस्त की एक उपधातु मानते हैं और जब तक इसका निर्णय न हो तब तक उसके बदले में जस्त के फूल लेने की सूचना देते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार खपरिया ज्ञान तन्तुओं को बल देने वाला तथा उपदंश, कण्ठमाला और चर्म रोगों में लाभदायक है।

आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध योग सुवर्ण वसन्त मालती के अन्दर खपरिया एक प्रधान अंग की तरह लिया जाता है और इसी से इसका इतना महत्व भी माना गया है।

बनावटें—

बृहद सुवर्ण मालती वसन्त—सोना १ तोला, प्रवाल ३ तोला, सिंगरफ ५ तोला, काली मिर्च ७ तोला, गोलोचन १ तोला, नागभस्म २ तोला, बंगभस्म १ तोला, अभ्रक ३ तोला, केशर १ तोला, मोती ७ तोला, पीपर १ तोला, खपरिया ११ ...

को मक्खन डालकर नींबू के रस में खूब खरल करना चाहिए यहां तक कि मक्खन का सब चिकना पन निकलजाय उसके बाद दो २ रत्ती की गोलियां बना लेना चाहिए।

यह सुवर्ण बसन्त मालती आयुर्वेद का एक बहुत सुप्रसिद्ध योग है। इसके नियमित सेवन से जीर्ण ज्वर, रक्त प्रमेह, मूत्र प्रमेह, पांडु रोग, कामला, श्वास, खासी, क्षय, सुजाक, पथरी, संग्रहणी, बवासीर, नपुंसकता, पित्तरोग, प्रसूत रोग, योनिशूल, रक्तप्रदर, मूत्रिका रोग, सोमरोग इत्यादि अनेकों प्रकार के रोग मिटते हैं। यह सारे शरीर के संगठन को सुधारती है और ओज को बढ़ाती है।

लघु मालती बसन्त—

स्वर्ण १ भाग, मोती २ भाग, शिंगरफ ३ भाग, मिर्ची ४ भाग और खपरिया ८ भाग इन वस्तुओं को मक्खन और नींबू के रस में खूब खरल करके दो २ रत्ती की गोलियां बना लेनी चाहिए। यह लघु बसन्त मालती भी उचित अनुपान में देने से अनेक रोगों को नष्ट करती है।

खबाजी

इसका पूरा वर्णन इस ग्रंथ के दूसरे भाग में "कुब्भि" के प्रकरण में दिया गया है।

खम

नाम—

संस्कृत – पिंडालु। हिन्दी—चुपरी, आलूबम। बंबई—चेना, चोपरि आलू, खनफल, म्यूक फल, सफेद कौफल। बंगाल—चुपरिआलु। तामील—कचलु। उड़िया—फोंकाआलु। लेटिन—Dioscorea Alata (डिसकोरिया एलेटा) D. globesa (डी० ग्लोबेसा)।

वर्णन—

इस वनस्पति की खेती होती है। इसकी आलू की तरह गठाने होती हैं। यह गठान लम्ब गोल और भीतर से सफेद होता है। इसका प्रकाण्ड नुकीला रहता है। इसके पत्ते एक दूसरे के आमने सामने आते हैं। ये चौड़े और अण्डाकार रहते हैं। और इनकी नोक तीखी होती है। इसकी डोड़ी २'५ सेंटीमीटर लम्बी और ३'८ से० मी० चौड़ी होती है। इसके पत्तों में चारों तरफ-हरा रंग होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका पिंड कृमिनाशक होता है। यह कुष्ठ, बवासीर और सुजाक में उपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मत से इसमें उपक्षार रहते हैं। यह विषैला होता है।

खमान

यह एक छोटी जाति का क्षुप होता है। इसकी दो जातियां होती है एक छोटी और दूसरी बड़ी, बड़ी जाति के पत्ते अखरोट के पत्तों के तरह होते हैं। फूल का रंग ललाई लिए हुए सफेद होता है। इसका फल बतम के फल की तरह होता है। इसमें शराब की सी बू आती है। दूसरी छोटी जाति एक घास

हैं जो कटी हुई किनारों के रहते हैं। इसके बीज राई के दाने की तरह और जड़ अंगुली की तरह मोटी होती हैं। कहीं २ बड़ी जाति को शहूब और छोटी जाति को थलका कहते हैं। औषधि के रूप में इसकी छोटी जाति विशेष काम में आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी बड़ी जाति गरम और खुश्क तथा छोटी सरद और खुश्क मानी जाती है। बड़ी जाति का लेप करने से सब प्रकार के जख्म भर जाते हैं। इसकी छोटी जाति के प्रयोग से शरीर के अन्दर संचित हुई गन्दगी दस्तों की राह बाहर निकल जाती हैं। इसके पके हुए फलों को पीसकर बालों पर लगाने से बालों का गिरना बन्द हो जाता है।

इसके ताजे पत्तों को कूटकर जौ के आटे के साथ मिलाकर आग से जले स्थान पर लेप करने से शान्ति मिलती है। इसकी जड़ को पीसकर टूटी हुई हड्डी पर लगाने से तथा मोच अथवा चोट पर लेप करने से बड़ा लाभ होता है।

इसकी जड़ को शराब में पकाकर सेवन करने से जलोदर में लाभ पहुँचता है। इसके पत्तों और जड़ का रस पीने से दूषित पित्त और कफ दस्त की राह बाहर निकल जाते हैं। इसके पानी से कुल्ले करने से दांतों के कीड़े मर जाते हैं। इसके रस को नाक में टपकाने से आंख की सुर्खी निकल जाती है। इसके काढ़े से टब को भर कर उस टब में स्त्री के नाभि के नीचे का भाग डुबोने से गर्भाशय का मुंह खुल जाता है और उसकी सूजन दूर हो जाती है। नासूर में इसकी बत्ती को रखने से लाभ होता है इसकी जड़ का काढ़ा गठिया के रोग में भी लाभ पहुँचाता है। (ख० अ०)

यह वनस्पति फेफड़े को और मेदे को नुकसान पहुँचाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिए शहद का प्रयोग करना चाहिये। इसकी मात्रा ७ माशे की है।

खमाहिन

खमाहिन—यह एक जाति का पत्थर है। इसको सुलतान मोहरा भी कहते हैं। इसकी दो दो जातियां होती है। एक सख्त और दूसरी मुलायम। सख्त जाति का पत्थर मैले रंग का होता है और पीसने पर पीला हो जाता है। मुलायम जाति का पत्थर पीसने पर लाल हो जाता है। इस पत्थर के नग बनाकर अगूठियों में रखे जाते हैं।

गुण दोष और भाव—

इस पत्थर का लेप करने से गरमी से पैदा हुई सूजन और उसकी जलन दूर होती है। इसके पीने से पित्त की वजह से पैदा हुआ पागलपन दूर हो जाता है। इसको घिस कर लगाने से आंखों का दुखना और आंखों की खुजली दूर होती है। इसके सेवन से शराब की आदत छूट जाती है।

इसकी मात्रा साधारण रूप से छः रत्ती की है और इसके दर्प को दूर करने के लिए शहद उपयोगी है। (ख० अ०)

खरेंटी

नाम—

संस्कृत—बला, बालिनि, भद्रबाला, जयन्ती, रक्ततन्दुला, सुवर्णा, खरयष्टिका, इत्यादि। हिन्दी—खरेंटी, बरियार। बम्बई—बला, बरीला। गुजराती—खरेंटी, बलदाना। पंजाब—खरेंटी। सिंध—बरियारा। मराठी—चिकना, खिरंती। तामील—नीलतुति। तेलगू—अन्तिस। लेटिन—sida cordifolia (सिडाकोर्डिफोलिया)।

वर्णन—

यह एक झाड़ीनुमा वर्ष जीवी वनस्पति है। इसके पत्ते १॥ से २ इंच तक लम्बे और लम्ब गोल होते हैं। ये हृदय की आकृति के होते हैं। इसके फूल हलके पीले रंग के होते हैं जो वर्षा ऋतु में आते हैं। इसके फल बहुत छोटे २ होते हैं जिनमें राई के समान बीज निकलते हैं। इसके बीज, पत्ते व जड़-औषधि के काम में आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत— आयुर्वेदिक मत से खरैटी कड़वी, मीठी, पित्तातिसार को नष्ट करने वाली, बलवीर्यवर्द्धक, कामोद्दीपक और वात तथा पित्त को नष्ट करती है। इसकी जड़ की छाल का चूर्ण मिश्री मिले हुए दूध में मिलाकर पीने से बहुमूत्र रोग दूर होता है। इसका फल कसैला, मधुर, शीतवीर्य और पचने मे स्वादिष्ट होता है। यह भारी, स्तम्भक, वात वर्धक, तथा पित्त, कफ, और रुधिर विकार को दूर करने वाला होता है। गले के रोग, खूनी बवासीर, क्षय और पागलपन में भी यह लाभदायक है।

पार्यायिक ज्वरों में इसका काढ़ा अदरख के रस के साथ दिया जाता है। कम्पन युक्त ज्वर में यह विशेष उपयोगी माना जाता है। इसकी जड़ को पीसकर दूध व शकर के साथ मिलाकर श्वेत प्रदर और बहु मूत्र रोग में देते हैं। स्नायु मण्डल के रोगों में भी इसे दूसरी औषधियों के साथ काम में लेते हैं।

कोमान के मतानुसार इसकी जड़ की छाल में तिल मिलाकर दूध के साथ देने से मुंह के पक्षाघात और जघा के स्नायु शूल में लाभ होता है।

स्टेवर्ट के मतानुसार इसके बीज कामोद्दीपक होते हैं और सुजाक में इनका उपयोग किया जाता है। उदरशूल और मरोड़ी के दस्तों में भी ये लाभदायक होते हैं।

डॉक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार नेत्राभिष्यन्द रोग में इसके पत्तों को पीसकर पलकों पर लगाते हैं। गर्मी के चट्टों और दूसरे जख्मों पर इसकी जड़ की छाल को पीसकर लगाते हैं और इसके पचांग के काढ़े से जख्मों को धोते हैं जिससे बहुत जल्दी आराम होता है। सुजाक और प्रदर रोग में इसकी जड़ की छाल को दूध और शहद के साथ देने से लाभ होता है।

पक्षाघात, अर्दित इत्यादि वात रोगों में मूंग के साथ इसकी जड़ का काढ़ा बनाकर देते हैं

और जड़ की छाल से बनाये हुए तेल से मालिश करते हैं, कारबंकल और प्रमेह पीटिका पर इसके पत्तों को पीसकर लेप करने से और उस पर तर कपड़ा बांधने से जलन और चटका बन्द हो जाता है।

पुर्तगाल और ईस्ट आफ्रिका में इसके पौधे को बच्चों की बीमारियों में काम में लेते हैं। कंबोडिया में इसकी जड़ें मूत्रल व मृदु विरेचक मानी जाती हैं और सुजाक तथा दाद में काम में ली जाती हैं।

संन्याल और घोष के मतानुसार इसके पत्तो का रस नेत्र शुक्ल रोग पर लगाने के काम में लिया जाता है। इसकी जड़ का रस खराब और बहुत धीरे भरने वाले घावों पर शीघ्र भरने के लिये लगाया जाता है।

सुजाक की बीमारी में इस सारे पौधे का शीत निर्यास एक २ औंस की मात्रा में दिन में दो बार दिया जाता है। इससे पसीना आता है और पेशाब साफ होकर रोग में लाभ होता है।

डॉ० मुहीन शरीफ के मतानुसार इसका तेज काढ़ा ज्वरनाशक, अग्नि दीपक और पौष्टिक होता है। अग्निमांद्य और किसी भी रोग के बाद की कमजोरी में यह लाभदायक है।

चरक के मतानुसार इसकी जड़ की छाल दूध और घी के साथ अत्यन्त बलवर्द्धक होती है। बुढ़ापे की कमजोरी को भी यह दूर करती हैं। फेफड़ों के क्षय में इसकी जड़ की छाल को दूध के साथ २ महीने तक देने से और रोगी को केवल दूध ही पर रखने से अच्छा लाभ होता है। खूनी बवासीर और भीतरी रक्तस्राव में इसकी जड़ की छाल का काढा उपयोगी होता है। सन्निपातिक ज्वर में इसका शीतनिर्यास बार २ पिलाया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार खरेंटी या बला आयुर्वेदिक और हिन्दू चिकित्सा में बहुत उपयोगी वस्तु मानी जाती है। हिन्दू वैद्य इसको बहुत उपयोगी वस्तु मानते हैं और इसको बहुत प्राचीन काल से उपयोग में लेते आ रहे हैं। तिब्बी या मुसलमानी औषधियों में यह इसके कामोद्दीपक गुणों के कारण उपयोग में ली जाती है। इसके रासायनिक विश्लेषण और चिकित्सा सम्बन्धी उपयोगिता के विषय में कलकत्ता स्कूल ऑफ ट्रापिकल मेडिसिन में पूरा अध्ययन किया गया है।

देशी औषधियों में इसका उपयोग—

इसकी जड़ें, पत्ते और बीज सब ही चिकित्सा में काम में आते हैं। ये स्वाद में कटु रहते हैं। इस जाति के सभी भेदों की जड़ें शीतल, संकोचक, अग्नि प्रवर्धक और पौष्टिक मानी जाती हैं। इनसे बनाया हुआ शीत निर्यास स्नायु मंडल व मूत्राशय सम्बंधी बीमारियों को दूर करता है। यह रक्त और पित्त के विकारों में भी लाभदायक है। इसके अंग सुगंधित और कटु होते हैं। ये ज्वर निवारक, शान्तिदायक और मूत्रल समझे जाते है। इसके बीज कामोद्दीपक माने जाते हैं और ये सुजाक और मूत्राशय के प्रदाह की बीमारी में उपयोग में लिये जाते हैं। उदरशूल और मरोड़ो भी ये लाभदाई है। इसके पत्ते चक्षु वेदना मे उपयोगी हैं। इसकी जड़ का रस घाव पूरता है और इस सारे वृक्ष का रस अनैच्छिक वीर्यस्राव और सन्धि वात रोग में उपयोग में लिया जाता है। इसे एरंड के रस के साथ मे श्लीपद रोग मे लगाने के काम मे लेते हैं। इसकी जड़ व सोंठ का काढ़ा पार्यायिक और अन्य ज्वरों में जिनमें कंपन ज्यादा रहती है दिया

जाता है। इसकी जड़ के छिलटे का चूर्ण दूध और शकर के साथ मिश्रण करके अनैच्छिक मूत्रस्राव और श्वेत प्रदर के रोगियों को दिया जाता है। बहुत सी स्नायुमंडल की बीमारियों में उदाहरणार्थ अर्द्धांङ्ग, सिरदर्द और मुंह के पक्षाघात में इसकी जड़ को हींग और सेंधे निमक के साथ में काम में लिया जाता है। इससे एक तेल प्राप्त किया जाता है। इस तेल को दूध और सरसों के तेल के साथ मे मिलाकर मालिश करने के काम में लेते हैं। इसे मकरध्वज और कस्तूरी के साथ में मिलाकर हृदय को मजबूत बनाने के लिये उपयोग में लेते हैं।

औपचारिक उपयोगिता के अतिरिक्त इसका व्यापारिक महत्व भी काफी है। इससे एक प्रकार का सफेद तन्तु प्राप्त होता है जिसमें सेल्यूलोस (cellulose) नामक तत्व ८३ प्र० श० पाया जाता है। यह सन में फक्त ७५ प्र० श० ही प्राप्त होता है। कुछ दक्ष लोगो का मत है कि इससे बढ़ कर सन का प्रतिनिधि और दूसरा वृक्ष नहीं हो सकता।

रासायनिक विश्लेषण—

आज से कई वर्ष पूर्व सन् १८६० में इसका विश्लेषण हुआ था। इसमें एस्पेरेगिन नामक पदार्थ पाया गया है और इसके साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि इसमें पाये जाने वाले तत्वों का गहरा अध्ययन नहीं किया गया। सन् १६३० मे घोष और दत्त ने भी इसका विश्लेषण किया जिसका सार.श नीचे दिया जाता है।

इसकी परीक्षा से इसमें उपक्षार पाये गये जिनकी तादाद ० ०८५ थी। इसके बीजों से इसके बाकी के अगों में ४ गुने अधिक उपक्षार हैं।

इसका रस निकाल कर उसका व्यवस्थित अध्ययन किया गया है जिसमें निम्न लिखित तत्व हैं।

(१) इसमें स्थायी तेल रहता है और पोटेशियम नाइट्रेट, रेजिन्स, रेजिन एसिडस, फिटा-स्टेराल और मुसिन्स रहते हैं। इसमें टेनिन और ग्लुकोसाइड नहीं रहते है।

(२) इसमें उपक्षार ०.०८५ प्र० श० की तादाद में रहते हैं। इसके उपक्षार जल में घुलन शील होते हैं लेकिन निखालिस मद्यसार में नहीं घुलते हैं। इसके उपक्षारों का खास तत्व "एफिड्राइन" से मिलता जुलता पाया गया गया है किन्तु एफेड्राइन दूसरी जातियों से प्राप्त की जाती है।

चूँकि इसके (एफेड्राइन) प्रभाव ज्ञात है इसलिये यहाँ विस्तृत वर्णन की आवश्यकता नहीं है। इतना यहां पर बताया जा सकता है कि औषधि विषयक गुणो की समानता से यह विचार पैदा हुआ कि ये दोनों उपक्षार एक ही हैं। बाद के रासायनिको ने भी इसी मत को पुष्ट किया। इसी वजह से यह हृदय को उत्तेजना देने के उपयोग में ली जाती है।

औषधि विषयी उपयोग—

इस वनस्पति में एफेड्राइन ०.०८५ प्र० श० रहता है और बीजों में .०.३ प्र० श० रहता है। यह बिलकुल संभव है कि अगर इसकी योग्य रूप से खेती की जाय और योग्य रूप से इसे

एकत्रित की जाय तो इसके उपक्षारीय तत्व बढ़ सकते हैं। यह वनस्पति भारतवर्ष में काफी मात्रा में पैदा होती है। इसलिये इससे एफेड्राइन भी काफी तादाद में प्राप्त किया जा सकता है। एफेड्राइन का वृक्ष भारतवर्ष में पहाड़ियों पर पैदा होता है। इसी वजह से उसे वहां से प्राप्त करने में काफी खर्चा बैठ जाता है। यही वजह है कि एफेड्राइन इतना मंहगा है। इस विषय में अन्वेषण अभी जारी है।

खरज़ाल (पीलू)

नाम—

संस्कृत—बृहत्पिलु, गौलि, लघुपिलु, मधुपिलु महाफल, महापिलु, महावृक्ष पिलु और राजपिलु। हिन्दी—बड़ापिलु, छोटापिलु, खरजाल, पिलु। अरेबिक—अरक, इरक, रकव्वार, खरदार, खरजाल, पिलु। बंगाल—छोटापिलु, जाल, पिंलु। बम्बई—करवन, पिलु। गुजराती—खारीजाल, खरीजार मोतीजलिया, पिलु, पिलुड़ि। उत्तर पश्चिमीय प्रान्त—जाल। परशियन—दरख्ते मिस्विक, मिसवक। पंजाब—कौरिजाल, कौरिवन, पिलु, झिन, झान, झार। राजपूताना—जाल, झाल,। सिंध—कब्बार, खारीदजई, पिलु। तामील—कलरवा, करगोल, करगोलि, ओगा, पेरंगोलि, कुरगनरवा, उवा। तेलगू—करुगोगु, गोनिया, पइवरगोगु, चिनवरगोगु। उर्दू—पिलु। उड़िया—कोट्ट गो। लेटिन—Salvadora Persica सेलवेडोरा परशिका।

वर्णन—

यह वृक्ष हिन्दुस्तान के सूखे हुए हिस्सों में, बलूचिस्तान में और सीलोन में पैदा होता है यह पश्चिमीय एशिया के शुष्क भागों में; इजिप्ट और अबीसीनिया में पैदा होता है। यह एक बहुशाखी हरी झाडी है इसकी डगालिया सफेद होती हैं। इसका प्रकांड खुरदरा होता है। इसके बहुत सी शाखाएँ रहती हैं। ये चमकीली और सफेद होती हैं। इसके पत्ते दलदार होते हैं। ये ३'८ से ६.३ सेंटीमेटर तक लम्बे और २ से ३'२ से० मी० तक चौड़े होते हैं। ये अण्डाकार और बरछीं के आकार के रहते हैं। इनके फूल हरे पीले रंग के होते हैं। इसका फल गोल और चिकना होता है। यह पकने पर लाल हो जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से इसका फल मीठा, कामोद्दीपक, विष नाशक, अग्नि प्रवर्द्धक और क्षुधोत्तेजक होता है। यह पित्त में उपयोगी है। इसका तेल पाचक और वात नाशक होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके पत्ते कड़वे, आंतों को सिकोड़ने वाले, यकृत को पुष्ट करने वाले, कृमिनाशक और तकलीफ को दूर करने वाले रहते हैं। ये पीठ और अन्य नाड़ की तकलीफों में उपयोगी हैं। बवासीर, खाज, धवल रोग और प्रदाह में ये लाभदायक हैं। ये दांतों को मजबूत करते हैं। इसका फल मधुर कामोद्दीपक [illegible] और कृमि नाशक होता। यह पेट का

इसके दर्प को नाश करने के लिये कतीरा मस्तगी, गाय का घी, बादाम का तेल इत्यादि वस्तुओं का उपयोग करना चाहिये। इसकी मात्रा १ माशे से ४ माशे तक की है। (ख० अ०)

खरबक स्याह

नाम—

यूनानी—खरबक स्याह। अरबी—रजज। फारसी—खातगंगी। हिन्दी—काला कुचला। (खजानुल अदविया)।

वर्णन—

यह एक रोइदगी की जड़ है। इसके लक्षण कुटकी से बहुत मिलते-जुलते हैं। यह वनस्पति रूम के खुश्क स्थानों में पैदा होती है। इसके पत्ते छोटे २ और खुरदरे होते हैं। इसकी डालियां छोटी नीली और फूल सुर्खी माइल सफेद होते हैं। इसके बीज खड़िया के बीज की तरह होते हैं। इसकी जड़ अंगुली के बराबर मोटी और काले रंग की होती है और कार गिरह होती है। इस जड़ के अन्दर बारीक २ रेशे निकलते हैं। इन रेशों को ही खरबक स्याह कहते हैं। खरबक स्याह, खरबक सफेद से कम कड़वा होता है, मगर तेजी ज्यादा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह तीसरे दर्जे में खुश्क और गरम होती है। यह वनस्पति बादी और कफ को दस्तों की राह तेजी के साथ निकाल देती है, यह सूजन को बिखेरती तथा सर्दी की बीमारियों और पुराने नजले में मुफीद है, बदन के स्याह दाग सफेद दाग और चर्म रोगों को नष्ट करती है, इसको मटर के साथ जोश करके कुल्लियां करने से दांतों का दर्द दूर होता है। इसकी धूनी से भी दांतों के दर्द में फायदा होता है। नासूर में इसकी बत्ती बनाकर रखने से लाभ पहुंचता है। सर्दी से होने वाली आधाशीशी और गठिया के लिए यह मुफीद है। यह वनस्पति चूहों और पक्षियों के लिये जहर है। इसके सिवाय जिन २ रोगों में खरबक सफेद काम आता है उन रोगों में भी यह औषधि उससे अधिक कारगर होती है। इसको सिरके में पीस कर कान में टपकाने से कान दर्द अच्छा होता है। इसके अन्दर कपड़े को तर करके उसकी बत्ती योनि मार्ग में रखने से पेशाब और मासिक धर्म होता है और यदि गर्भ हो तो गर्भ गिर जाता है। इसका लेप करने से जहरीले जानवर और पागल कुत्तों के काटने पर लाभ होता है। यह औषधि बहुत ही उग्र और जहरीली है, इसलिये इसका उपयोग बहुत सावधानी से करना चाहिये। गरम प्रकृति वालों को यह औषधि नहीं देना चाहिये। इसके दर्प को नाश करने के लिये कतीरा, पोदीना, गाय का घी और मस्तगी उपयोगी है। (ख० अ०)

इसकी मात्रा १ माशे से २ माशे तक है।

खरसिंग

नाम—

बम्बई—खरसिंग, बेरसिंग। मध्यप्रदेश—पारल। कनाड़ी—घनश्रियंग, हूलवे, अनितन्तु वलुक। मलयलम—पातिल, वेलन करन, पदन कोरना। मराठी—खरसिंग, कड़सिंग और बरसिंगे। तामील—अलम्बल, कड़लनि मलयपुदि, मधिकम्बु, पादिरी. पाथिरी। लेटिन—stereospermum xylocarpum दूसरा नाम Radermachera xyloearpa.

वनस्पति विवरण—

यह वनस्पति खानदेश, कोकन, दक्षिण और मद्रास प्रेसिडेन्सी के पश्चिमीय घाट में पैदा होती है। यह एक मध्यम आकार का वृक्ष होता है। इसका छिलटा हलके भूरे रंग का होता है। इसके पत्ते ५ से लगाकर ७.५ सेंटी मीटर लम्बे और २.५ से लगाकर ३.८ सेंटी मीटर तक चौड़े होते हैं। यह लम्ब गोल और तीखी नोक वाले रहते हैं। इसके पुष्प सुगन्धित रहते हैं। इसकी डोड़ी लम्बी और कुछ टेढ़ी होती हैं। डोड़ी पर कुछ गठाने रहती हैं। इसके बीजे ३.२ मीटर लम्बे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी लकड़ी का तेल चर्म रोगों में उपयोगी होता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह चर्म रोगों पर और खासकर विस्फोटक में (पपड़ीदार फुन्सियों में) अधिक उपयोगी है।

खरबूजा

नाम—

संस्कृत—दशांगुल, फलराज, खरबूज, मधुफला इत्यादि। हिन्दी—खरबूजा। बंगाल—खरबूजा। मराठी—खरबूज। गुजराती—खरबूजा। तेलगू—चिकड खरबूजम। अरबी—बित्िक। फारसी—खरबूजा। लेटिन—Cucumismelo क्यूक्यूमिस मेलो।

वर्णन—

खरबूजा सारे भारतवर्ष में एक मशहूर फल है। इसलिये इसके वर्णन की आवश्यकता नहीं। भिन्न २ प्रान्तों के भेद से इसकी कई जातियां होती है।

वर्णन—

आयुर्वेदिक मत से खरबूजा अमृत के समान तृप्ति कारक, मूत्रल, बल कारक, कोठे को शुद्ध करने वाला शीतल, वीर्य वर्द्धक स्निग्ध, पित्त और उन्माद को नाश करने वाला, कफ कारक और वीर्य जनक है।

इसके फूलों का तेल गठिया और थकावट के लिये फायदेमन्द है। इस वृक्ष के बुरादे के लेप से भी यही फ़ायदा होता है। इसके फूल और पत्तों का लेप करने से जहरीले कीड़े मकोड़ों का जहर मिट जाता है। इसके ४॥ माशे बीज शहद के साथ चाटने से जहरीले कीड़ो के जहर से दिल को सदमा नहीं पहुंचता इसकी लकड़ी का बर्तन बनाकर उसमें खाना खाने व पानी पीने से पागलपन मिटता है। इसका फूल काबिज है। इसका तेल तैयार करने की तरकीब यह है। इसके फूलों को तिल के तेल में डालकर ३ हफ्ते तक धूप में रखकर छान लेना चाहिए।

ख़ंशा

वर्णन—

यह एक घास है। इसके पत्ते गन्दना के पत्तों की तरह मगर उनसे नाज़ुक होते हैं। इसकी डण्डी चिकनी, नरम और एक हाथ के करीब लम्बी होती है। इस पर सफेद फूल आते हैं इसकी जड़ गोल और चिकनी होती है। स्वाद में यह तेज होती है। इसके बीज प्याज के बीजों की तरह होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसकी जड़ की भी यही तासीर है।

यह गरमी और खुश्की पैदा करती है। टूटी हुई हड्डी को जोड़ देती है। वादी को बिखेर देती है। मसाने के पथरी को और गुर्दे की पथरी को तोड़ती है। इसकी जड़ में इसके दूसरे अङ्गों से ज्यादा शक्ति है। इसकी जड़ को जलाकर किसी तेल में मिलाकर लगाने से सिर की फुन्सिया और बालों का खोरा मिट जाता है। सफेद दागों पर इसकी खाक मलकर धूप में बैठने से फायदा होता है। मुर्गी के अण्डे की सफेदी में मिलाकर इसको लगाने से आग से जले हुये स्थान पर फायदा होता है। गन्धक के साथ लगाने से दाद जाता रहता है। इसका काढ़ा कान में टपकाने से पीप बहना रुक जाता है। इसको दांत पर लगाने से दांत का दर्द जाता रहता है।

इसके फल और फूल कब्जियत को साफ करते हैं। इनको शराब के साथ खाने से बिच्छू और कन खजूरे का जहर उतर जाता है। इसके सिवाय इनके सेवन करने से दूसरे कीड़ो के जहर में भी फायदा होता है।

इसकी ज्यादा मात्रा गुर्दे को नुकसान पहुँचाती है। पित्त को बढ़ाती है। इससे तिल्ली को भी नुकसान है।

दर्प नाशक—इसके दर्प को नाश करने के लिये मस्तगी और इमली का प्रयोग करना चाहिये। इसके प्रतिनिधि मजीठ और शकाकुल है। इसकी मात्रा १०॥ माशे तक है।

पित्त रोग—इसके चूर्ण की फक्की देने से पित्त के उपद्रव मिटते हैं।

रुधिर विकार—इसके चूर्ण की शुद्ध गन्धक के साथ फक्की देने से रुधिर विकार मिटता है।

मूत्रावरोध—इसके चूर्ण में मिश्री मिलाकर देने से पेशाब की वृद्धि होती है।

तृषा—इसको मुनक्का के साथ घोटकर पिलाने से तृषा मिटती है।

कम्पवायु—सौंठ के साथ इसकी फक्की देने से हाथ पैरों की एँठन और कम्पन मिटती है।

हैजा—इसके इत्र की दो बून्द पोदीने के अर्क में डालकर पिलाने से हैजे की उल्टियां मिटती हैं।

मस्तक पीड़ा—इसको लोबान के साथ मिलाकर चिलम में रखकर धूम्र पान करने से मस्तक की पीड़ा मिटती है।

हृदय शूल—खस और पीपला मूल को बराबर लेकर घी में चटाने से तीव्र हृदय शूल मिटता है।

पित्तोन्माद—इसके रस में बूरा मिलाकर पिलाने से गरमी से होने वाले उन्माद में लाभ पहुँचता है।

खसखस

नाम—

संस्कृत—खसफल, खाखसफल। हिन्दी—पोस्त, खसखस, पोस्त दाना। बंगाली—पोस्त-दाना। मराठी—पोस्त। गुजराती—अफीण ना डोड़वा। फारसी—कोकनार। अरबी—अबुनास। लेटिन—Papaveris Capsulac।

वर्णन—

खसखस अफीम के बीजों को कहते हैं। अफीम का पूरा वर्णन इस ग्रन्थ के पहले भाग में विस्तार पूर्वक दिया गया है।

गुण दोष प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से खसखस शीतल, मलावरोधक, कड़वे, कसैले, वात कारक, कफ नाशक, कास निवारक, नशीले, वाणी को बढ़ाने वाले, रुचि कारक, और अधिक सेवन से पुरुषत्व को नाश करने वाले होते हैं।

इनका विस्तृत वर्णन और प्रयोग इस ग्रन्थ के पहले भाग में अफीम के प्रकरण में देखना चाहिये।

खस खास मकरन

नाम—

यूनानी-खस खास मकरन।

वर्णन—

इसके पत्ते सफेद और सेज वाले होते हैं। इसके फूल पीले और लाल होते हैं। कोई २ गुलाब के फूल की तरह होता है। इसकी फली मेथी की फली की तरह और बीज भी मेथी के बीज की तरह होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह औषधि जैतून के तेल के साथ मिला कर लगाने से खराब जख्म गांठ और मवाद को साफ करती है। इसके फूल आंख में लगाने से आंख की फुंसियां मिटती है। इसके बीज चौपाये जानवरों की आंखों में लगाने से उनकी आंखो का जाला कट जाता है। इसकी जड़ को जोश देकर पीने से सरदी की वजह से पैदा हुई जिगर की बिमारियां आराम होती है। (ख० अ०)

ख़सख़ास ज़बेदी

नाम—

यूनानी—खसखास जबैदी।

वर्णन—

यह एक रोइदगी है। यह बहुत सफेद और झाग की तरह हलकी होती है। इसकी डालियों में दूध भरा रहता है। इसके पत्ते कम चौड़े और लम्बे होते हैं। इसका पेड़ जमीन पर बिछा हुआ रहता है। इसकी जड़ पतली और इसका डोड़ा खशखश के डोड़े से छोटा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह तीसरे दर्जे में गर्म और खुश्क होती है। इसके सेवन से बहुत जोर से दस्त और उल्टियां होती हैं। यह कफ और पित्त को नष्ट करती है, दिमाग को साफ करतो है। इसको ज्यादा मात्रा में लेने से शरीर में जहरीले असर दिखलाई पड़ने लगते हैं। ऐसी हालत में इसका असर दूर करने के लिये ईसबगोल के लुआब को कुछ शकर डाल कर पिलाना चाहिये। गरम पानी के टब में बैठाना चाहिये तथा घी, जीरा, अनीसून, ताजा दूध इत्यादि वस्तुएँ देना चाहिये। (ख० अ०)

ख़सी-अल-कलब

नाम—

अरबी—खसीअल कलब। फारसी—खायसग।

वर्णन—

यह एक वनसपति होती है। जो जमीन पर फैली हुई रहती है। इसके पत्ते जैतून के पत्तों की

तरह मगर उनसे कुछ नरम रहते हैं। इसकी जड़ जंगली प्याज की तरह होती है। जड़ में दो गाठें रहती है। एक नर और एक मादा। मादा जाति में एक चिकना पदार्थ पाया जाता है। नर जाति की गठान पर धारियां पड़ी रहता हैं। इसकी दो जातियां होती हैं, एक बागी और दूसरी जंगली।

गुण दोष और प्रभाव—

यह औषधि तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क होती है। यह कफ की सूजन को बिखेरती है। हरी हालत में इसकी जड़ कामेन्द्रिय को ताकत देती है। मगर सूखी हालत मे खाने से कामेन्द्रिय की ताकत को नष्ट करती है। इसकी बड़ी अर्थात् जङ्गली जाति दस्तों को बन्द करती है। खराब किस्म के जखमों में लाभ पहुँचाती हैं। बवासीर के मसो पर लगाने से लाभ पहुँचाती हैं। यह अधिक मात्रा में लेने से अपना विषैला प्रभाव दिखाती हैं इसलिये इसको छोटी मात्रा में ही लेना चाहिये। इसकी मात्रा ४ माशे से ६ माशे तक की है। इसके दर्प को नाश करने के लिये बबूल के गोंद का उपयोग करना चाहिये।

ख़सी-अल-दीअक

नाम—

अरबी—खसी अल-दीअक।

वर्णन—

यह एक रोइदगी है। इसका पेड़ मकोय के पेड़ की तरह मगर उससे कुछ लम्बा होता है। इसका दाना गोल और सफेद होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह औषधि जमे हुए कफ को दस्तों की राह बाहर निकाल देती है। गठिया को फायदा पहुँचाती है। इसके लेप से बादी का सख्त वरम दूर हो जाता हैं। यह अधिक मात्रा में लेने से सिरदर्द और बैचेनी पैदा करती हैं। इसके दर्प को नाश करने के लिये बनफशा देना चाहिये। इसकी मात्रा १ माशे से ४ माशे तक है। (ख० अ०)

ख़ंकाली (बस्फ़ेज़)

नाम—

हिंदी—खंकाली। अरबी—बस्फेज। बम्बई—बस्फेज, बिचवा। लेटिन—Polypodium Vulgare (पोलीपोडियम व्हलगेर)

वर्णन—

यह एक छोटी जाति की वनस्पति होती है। इसके पत्ते कटी हुई किनारों के होते हैं। इसकी जड़ें बहुत घनी होती है। यह वनस्पति बम्बई के बाजार में बस्फेज के नाम से बिकती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति कसैली और कुछ कड़वी होती है। यह वेदना नाशक और सूजन को नष्ट करने वाली होती है। पित्त और कफ को यह बाहर निकाल देती है। अधिक मात्रा में अधिक दिनों तक सेवन करने से यह आमाशय में दाह करती है। पित्त के प्रकोप में इसको पित्त पापड़ा और हर्रे के साथ देने से अच्छा लाभ होता है। गौमूत्र में इसे उबाल कर देने से तथा इसका लेप करने से संधियों की सूजन में और पीड़ा युक्त गठान में अच्छा लाभ होता है।

खटखटी

नाम—

गुजराती—पड़ेकड़ो। मराठी—खटखटी, पांढरी धमन। कनाड़ी—दरसुख, कडु कड़ली। देहादून—गुरमेली। तामील—क ट्ठकड़ली, पुनई पिदुकन। तेलगू—वनकचन। लेटिन—Crewia Scabrophylly ग्रीविआ स्केब्रोफिला।

वनस्पति विवरण—

यह वनस्पति हिमालय के प्रदेश में और कुमाऊँ की बाहरी पहाड़ी पर ३५०० फीट की ऊंचाई पर पैदा होती है। यह सिकिम, आसाम, और चितगाव में भी पैदा होती है। यह एक प्रकार की झाड़ी है। इसके पत्ते १०.५ से लगाकर १५ सेंटीमीटर तक लम्बे और ७.५ से लगाकर १५ सेंटी-मीटर चौड़े होते हैं। इनके किनारे कुछ कटे हुए रहते हैं। इसके फूल सफेद होते हैं। हर एक पुष्प वृन्त पर दो २ तीन ३ के गुच्छों में रहते हैं। इसका फल १.७ से २.५ सेंटीमीटर के आकार का और लम्बा और गोल होता है। इसका रंग बैंगनी होता है। यह रुएंदार रहता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ खांसी में और आंत और मूत्राशय की जलन में दी जाती है। इसका काढ़ा एनिमा देने के काम में लिया जाता है। यह स्निग्ध होता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह अलथई का प्रतिनिधि है।

खड़िया

नाम—

संस्कृत—पाक शुक्ला, शिलाधातु, धवलमृत्तिका, वर्णलेखा, खड़ी इत्यादि। हिन्दी—खड़िया मिट्टी, खड़िया, गोरखड़ी। बंगाल—खड़ी माटी। मराठी—खडू। गुजराती—खड़ी। कर्नाटक—वेलेवडु। फारसी—गिले खरिया। अरबी—तिने अर्वायब। लेटिन—carbonate of calcium, कारबोनेट आफ केलसियम।

वर्णन—

यह एक प्रकार की सफेद मिट्टी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से खड़िया मधुर, कड़वी, शीतल, व्रण नाशक तथा पित्त दाह, रुधिर विकार और नेत्र रोग को दूर करती है। इसका एक भेद पाषाण खड़िया होती है। यह व्रण, पित्त और रक्त विकार को दूर करती है। यह सब गुण इसके लेप में ही समझना चाहिये।

खामासूकी

वर्णन—

यह एक रोइदगी है। इसमें न डण्डी लगती है, न फूल लगते हैं। इसकी जड़ से छोटी २ शाखाएं चार २ अंगुल निकल कर जमीन पर फैल जाती है। शाखा में दूध भरा रहता है। पत्ते मसूर के पत्तों की तरह होते हैं और शाखों के नीचे लगते है। पत्तों के नीचे फल आते हैं। जो कि गोल होते हैं। इसकी जड़ पतली होती है। यह पथरीली और खुश्क जमीनों में पैदा होती है। यह मिश्र में बहुत होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह तीसरे दर्जे के अव्वल में गरम और खुश्क है।

यह निहायत तेज और चरपरी होती है। इसको पीस कर आख मे लगाने से आंख का जाला, फूला और फुन्सियों के निशान मिट जाते है। यह नजले को भी फायदा पहुँचाती है। इससे आंख की धुंध भी जाती रहती है। थोड़ी सी खामासूकी रोटी के साथ खाने से बवासीर के दाने कट कर गिर जाते हैं। इसके पत्ते शराब के साथ पीस कर गर्भाशय में रखने से गर्भाशय का दर्द मिटता है। इसकी शाखा और पत्तों के दूध के लगाने से हर किस्म के तिल व मस कट जाते हैं। इसका दूध बिच्छू के जहर को भी आराम पहुँचाता है। इससे कफ की सूजन भी दूर हो जाती है और शरीर पर किसी चोट का दाग पड़ जाय तो इसके लेप से साफ हो जाता है।

यह सीने को नुकसान पहुंचाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिये कतीरा अच्छा है। इसकी मात्रा ४ जौ के बराबर है। (ख० अ०)

खानिक अनमर

वर्णन—

यह एक वनस्पति है। इसकी शाखे १ बालिश्त की होती है। इसके पत्ते ककड़ी के पत्तों की तरह होते हैं। मगर उनसे छोटे और खुरदरे होते हैं। इस वनस्पति के तीन-चार पत्तो से अधिक नहीं लगते। इसकी जड़ बिच्छू की दुम की तरह चमक दार, चिकनी और काच की तरह होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह चौथे दर्जे में सर्द और खुश्क है।

इसके खाने से प्राणी फौरन मर जाता है। खास करके तेन्दुआ तो इससे बच ही

नहीं सकता। इसीसे इसको खनिक अनमर कहते हैं। अगर बिच्छू इसके पास पहुँच जाय तो फौरन मर जाता है। इसको गरमी की सूजन पर लगाने से फायदा होता है। आंख के दर्द में भी इससे फायदा होता है। इससे बवासीर के दाने गिर जाते हैं। मनुष्य को इसे नहीं खाना चाहिये। क्योंकि यह तेज जहर है। इसकी जड़ में इसके दूसरे अंगों से अधिक जहर रहता है। इसे पौने दो माशे खा लेने से ही सिर में जोरों का दर्द होता है। गले में सूजन आ जाती है। हाथ पाव खिंचने लगते हैं। जबान लड़खड़ा जाती है। शरीर का रंग काला पड़ जाता है। अगर ऐसा इत्तिफाक हो तो कमाफितूस अफसनतीन, ज़र जीरा, कैसून और शराब का प्रयोग करना चाहिए तथा दस्त और वमन करना चाहिए केह करावें और एनिमा लगावें।

ख़ार शतर

वर्णन—

इसको अस्तर खार भी कहते हैं क्योंकि इसे ऊंट खाता है। इसके कांटे बहुत नोंकदार होते हैं। इसका फूल सफेद और पीला होता है। इसके अन्दर बालों की तरह तार होते हैं। इसके बीज गोल होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह सर्द और खुश्क है। कोई इसे गरम भी कहते हैं और निहायत खुश्क मानते हैं। इसके पत्तों को पानी में पीस कर भूखे पेट पर तीन बूंद नाक में टपकाने से और बनफ़शा का तेल १ घण्टे के बाद नाक में खींचने से गर्मी का पुराना सिर का दर्द जाता रहता है। इसके आंख में लगाने से धुंध आराम हो जाती है और आंख का पतला जाला कट जाता है। इसके पञ्चांग के जोशांदे (काढ़े) से धोने से बवासीर में लाभ होता है। इसके ताजे पत्तों को कुचल कर और उन्हें तेल में जलाकर उस तेल को गठिया पर लगाने से फायदा होता है सर्दी के दर्दों में भी यह फायदा करती है।

यह गुर्दे को नुकसान करती है। इसका दर्पनाशक कतीरा है और प्रतिनिधि बिस खपरा है।

खावी

नाम—

संस्कृत—लामज्जक, गर्दभप्रिय, उष्ट्रप्रिय, दीर्घमूल, जलाशय, इत्यादि। हिन्दी—खावी, लामज्जक घटयरि, गन्धवेना, कर्णाङ्कुशा, इवरङ्कुशा। बम्बई—मफ़ब्रिर, पिंवलावाला। गुजराती—पीलोवालो, जलवलो, खटजलो। मराठी—पिवलावाला। फारसी—गुर्गियाह। अरबी—इदख़िर। तामील—कामाटचिपिल्लु। तेलगू—धासनगड्डि। लेटिन—Andropogon Iwarancusa (एण्ड्रोपोगान इवरन् कुसा)।

वर्णन—

यह एक बहुवर्ष जीवी सुगन्धित घास है। यह खस की तरह दिखाई देता है और उसी की तरह उपयोग में आता है। यह वनस्पति कुमाऊ, गढ़वाल, सीमाप्रान्त मे पेशावर तथा राजपूताने में जोधपुर और जेसलमीर में तथा सिंध और पंजाब में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मतानुसार यह घास शीतल, कटु, पाचक, विष नाशक, क्षुधा वर्धक, अग्नि-दीपक और संकोचक होता है। यह रक्तविकार, चर्मरोग, पथरी, पसीना, जलन,कोढ़, त्रिदोष, पित्त, प्यास वमन, मूर्छा और ज्वर में लाभ दायक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह गरम और खुश्की लाने वाला होता है। यह ऋतुश्राव नियामक और पेट के आफरे को दूर करने वाला व पथरी को नष्ट करने वाला है। यह पेट के भीतर की गठानों को फायदा पहुँचाता है। इसके फूल रक्तश्राव को रोकने वाले होते हैं।

यह वस्तु एक सुगन्धित और पौष्टिक वस्तु की तरह अग्निमांद्य रोग में दी जाती है। खून को साफ करने और हैजा, संधिवात गठिया तथा ज्वर को दूर करने के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है।

रक्तश्राव बन्द करने के लिये इसके फूलों को जख्म पर बांधते हैं। सूजन को दूर करने के लिये इसके पंचांग को पीसकर उसका लेप किया जाता है। ज्वर में इसके पंचांग के काढ़े से शरीर को धोते हैं। पेशाब साफ होने के लिये इसके पंचाग को द्राक्षासव के साथ गरम करके देते हैं। आमवात को मिटाने के लिये इसको जुलाब की औषधियों के साथ देते हैं। यह औषधि गर्भाशय का संकोचन करती है। इसलिये इसे प्रसूति ज्वर में भी देते हैं। वातरक्त के अन्दर भी यह लाभदायक है। बच्चों के अजीर्ण को दूर करने के लिये यह एक अच्छी औषधि है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति शान्तिदायक और ऋतुश्राव नियामक है। इसमें उड़नशील तेल रहता है।

खापर कद्दू [पातल तुम्बी]

नाम—

हिन्दी—खापर कद्दू, पाताल तुम्बी। मराठी—खापर कद्दू। गुजराती—कुटेर, कुंढेर, खापर कद्दू। बम्बई—पातालतुम्बी। कच्छ—कुढेर। पंजाब—गालोत। तामील—मन्द। तेलगू—पलतिकि, मगडी। लेटिन—*Ceropegia Bulbosa* सेरोपेजिया बलबोसा।

वर्णन—

यह एक लता होती है। इसकी बेलें २ से ५ फीट तक लम्बी होती हैं। इसके नीचे आलू की तरह छोटी २ गठानें लगती हैं। इसके पत्ते एक दूसरे के आमने सामने लगते हैं। ये लम्ब गोल होते हैं। इसके फूल जामूनी रंग की झलक लिये हुए रहते हैं। इसके ३ इंच लम्बी फलियां लगती हैं।

औषधि में इसका कन्द ही उपयोग में लिया जाता है। इसकी एक जाति कच्छ में दूधिया कुंडेर के नाम से मशहूर है। यह बहुत कम और कहीं २ मिलती है। इसके लिये कहा जाता है कि अगर इसका कन्द बरसात के दिनों में खालिया जाय तो बारह मास तक कोई रोग नहीं होता।

रासायनिक विश्लेषण—

इसके कन्द के रासायनिक विश्लेषण में चर्बी जनक पदार्थ ३'३ प्र० सैं०, शक्कर २३'३ प्र० सैं० और मांस जनक द्रव्य ३'५ प्र० सै० रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति पौष्टिक और पाचक होती है। बिहार में यह आंव की बीमारियों में काम में ली जाती है। इसकी खुराक आधे ग्रेन से लगाकर १ ग्रेन तक होती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह पौष्टिक और पाचक है। इसमें सेटोमिगाइन नामक उपक्षार पाया जाता है।

खिन्ना

नाम—

हिन्दी—खिन्ना, खिन्न्रा, लेन्दवा। बम्बई—दुदला। मराठी—दुदला, हूरि। पंजाब—बिलोजा, दुदला, करला। तेलगू—गर्भसूला। लेटिन—Sapium Insigne. सेपियम इनसाइन।

वर्णन—

यह वनस्पति हिमालय के नीचे के हिस्से में, आसाम में तथा सिलोन और पश्चिमी प्रायःद्वीप में पैदा होती है। यह एक मध्यम आकार का वृक्ष होता है। इसमें से एक प्रकार का दूधिया रस निकलता है, जोकि जहरीला होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका दूध जहरीला होता है। इसे शरीर पर लगाने से छाला उठ जाता है।

खिउनउ

नाम—

संस्कृत—खरपत्र। हिन्दी—खिउनाऊ, खिर्णी, खुनिया, जहरफली, कस, खेन, गोई और खेनल। मराठी—पोरोइमेर। बंगाल—जड़ोमुर, डुंडुर, कुरलो। देहरादून—जैना। मलयालम—पेरिना, पेरिन तरेकम, पोरो। पंजाब—कथे जुरार, कुरी, नुम्बल। तामील—उरगादि। तेलगू—बोनमदी दुब, जेऊ। लेटिन—Fievscunia। फाइकस कनिया।

वर्णन—

यह वनस्पति हिमालय की तलहटी में चिनाव से पूर्व की ओर, छोटा नागपुर, पूर्वीय सतपुड़ा पहाड़ियां, खसिया पहाड़िया, चिटगाव और ब्रह्मा में होती हैं। यह एक मध्यम कद का वृक्ष है। इसका छिलटा गहरे भूरे रंग का होता है। इसके पत्ते भिन्न आकार के होते हैं। इनके पीछे के बाजू रुंए रहते हैं। इसके फल अंजीर के समान होते हैं। ये तने पर और शाखाओं पर लगते हैं। पकने पर इनका रंग लाल और बादामी हो जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका फल मुखक्षत सम्बन्धी शिकायतों में दिया जाता है। इसके फल और छिलटे को उबालकर उस जल से स्नान करने से कुष्ट रोग में फायदा होता है।

इसकी जड़ों का रस मूत्राशय की शिकायतों में दिया जाता है। इसे दूध में उबाल कर छाले हो जाने पर भी काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार कुष्ट और मूत्र नली की शिकायतों में यह उपयोगी है।

खिरनी

नाम—

संस्कृत—क्षपिष्ट, क्षीरशुक्र, क्षीरिका, खिरनी, मधुफल। हिन्दी—खिरनी, रेण, रंजन क्षीरि। बंगाल—खीरखजूर। बंबई—खिरनी, रेण, राजन। गुजराती—रायण, रेण, रण कोकिरि, खिरनी, कैरा। मराठी—रेंखि, राजन, रजन, रायण। तामील—पाला, पलाई, खिरन्नी, खिरानी। तेलगू-मजिपल, नेमि। उर्दू—खिरनी। लेटिन –Mimasops Hexandra (मिमेसोप्स हेक्सेन्ड्रा)

वर्णन—

खिरनी अथवा रेण का वृक्ष भारतवर्ष में सब दूर प्रसिद्ध है, इसलिये इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से खिरनी का फल मीठा, चिकना, शीतल, मुश्किल से पचने वाला, पौष्टिक और कामोद्दीपक होता है। यह प्यास को बुझाता है, हृदय को ताकत देता है, पित्त को नाश करता है और त्रिदोष, क्षय, भ्रम तथा कुष्ट में लाभ दायक है। इसके पत्तों का रस योनि सम्बन्धी बीमारियों में उपयोगी होता है।

इसकी छाल कामोत्तेजक है। इसका फल वृद्ध लोगों के लिये लाभ दायक है। यह शरीर और हृदय को पुष्ट करता है। भूख और काम शक्ति को बढ़ाता है। प्यास और सिर के भारीपन को कम करता है। चेतना शक्ति को पुनर्जीवित करता है और उल्टी, वायु नलियों का प्रदाह, जीर्ण प्रमेह और मूत्र

सम्बन्धी विकारों में लाभ दायक है। इसके बीज घावों में भी फायदा पहुँचाते हैं। इसके बीजों में एक प्रकार का तेल पाया जाता है। इसकी छाल का उपयोग मौलसरी की छाल की तरह होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह शान्ति दायक, स्निग्ध, पौष्टिक और धातु परिवर्तक है।

कामला रोग पर इस वनस्पति की अन्दर छाल बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। इसकी ताजा अन्दर छाल को ५ तोला लेकर, कुचल कर इतने ही पानी में डाल कर खूब अच्छी तरह मसलकर उस पानी को छानकर सबेरे के टाइम में पीने से और पथ्य में केवल बाजरी की रोटी खाने से १०। १५ दिन में कामले का रोग फिर चाहे वह कितना ही पुराना क्यों न हो, मिट जाता है। इस दवा को प्रारम्भ करने से २। ४ दिन तक तबियत में बैचेनी और उल्टी होने सरीखी घबराहट पैदा होती है, मगर उससे घबराना नहीं चाहिये। ४। ५ रोज में यह घबराहट बन्द हो जाती है।

आँख की फूली पर भी रेयण के बीजों की मगज अच्छा काम करती है। इसके लिये रेयण के बीजों की मगज और काली सरसों के बीज समान भाग लेकर उनका महीन चूर्ण करके उस चूर्ण को तीन दिन तक रेयण के पत्तों के रस में, ३ दिन तक काली सरसों के पत्तों के रस में और तीन दिन तक बड़ के दूध में खरल करके गोलिया बनाकर छाया में सुखा लेना चाहिये। इन गोलियों को स्त्री के दूध में घिसकर आंख में आंजने से १५। २० दिन में आंख की फूली कट जाती है।

अनार्तव अथवा मासिक धर्म के रुकने पर भी रेयण के बीजों के मगज अच्छा काम करते हैं। इसके लिये रेयण के बीजों के मगज, एलुवा, इन्द्रायण की जड़ और गाजर के बीज तीन २ माशे और एक लहसन की गुली लेकर, बारीक पीसकर शहद में मिलाकर, उसकी लम्बी बत्ती बनाकर स्त्री के गर्भाशय में रखने से बहुत दिनों का रुका हुआ मासिक धर्म चालू हो जाता है। मगर यह प्रयोग अनुभवी वैद्यों के सिवाय दूसरों को नहीं करना चाहिये। गर्भवती स्त्रियों पर इस प्रयोग को नहीं करना चाहिये क्योंकि इससे गर्भपात होने का डर रहता है।

खिरनी

नाम—

संस्कृत—तालवृक्ष, वसन्तदूति। हिन्दी—खिरनी। बम्बई—खिरनी। मराठी—ककी। कनाड़ी—दाखी, हदारी, नेमि। तामील—पलइ। मलयालम—मणिलकार। लेटिन—Mimasops Kanki मिमेसोप्स कंकी।

वर्णन—

यह खिरनी की एक दूसरी जाति है जो प्रायः मलाया प्राय द्वीप में पैदा होती है। इसके वृक्ष बहुत बड़े और फैलने वाले होते हैं। इसके पत्ते अण्डाकार होते हैं। इसके फल १ इंच लम्बे, नारंगी रंग के बड़े मनोहर होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ और इसका छिलका दोनों ही संकोचक होते हैं। ये बच्चों के अतिसार को रोकने

के लिये दिये जाते हैं। इसके पत्तों को तिल के तेल के साथ उबालकर और उस तेल में इसकी अन्तर छाल का चूर्ण मिलाकर बेरी बेरी रोग को दूर करने के लिये काम में लेते हैं। इसके पत्तों को हलदी और अदरक के साथ पीसकर सूजन पर बांधने से सूजन बिखर जाती है। इसके वृक्ष का दूध कान के प्रदाह, और नेत्राभिष्यन्द रोग में उपयोग में लिया जाता है।

इसके बीज पौष्टिक और ज्वर निवारक होते हैं। ये कोढ़, प्यास, मूर्च्छा और ग्रन्थि रसों के अन्य विकारों में काम में लिये जाते हैं। ये कृमि नाशक भी माने जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह पौष्टिक, ज्वर निवारक और कृमिनाशक है। इसे बच्चों के अतिसार और चक्षु वेदना में काम में लेते हैं।

खुर बनरी

पंजाब—खुरबनरी। झेलम—कोरीबोटी। सतलज—नीलकण्ठी। कुमाऊ—रठपाथा। लेटिन—Ajuga Bracteosa (अजुगा ब्रेकटोसा)

वर्णन—यह वनस्पति कश्मीर से पंजाब तक पश्चिमी हिमालय में ७००० फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

बेडनपॉवेल के मतानुसार यह एक कड़वा, संकोचक, सुगन्धित और पौष्टिक पदार्थ है। यह मलेरिया ज्वर में उपयोगी होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह कड़वी, संकोचक, मूत्रल और विरेचक होती है। बुखार में यह सिनकोना के स्थान पर उपयोगी होती है।

खुबानी

नाम—

हिन्दी—खुबानी, जर्दालु, जलदारू, चिलू। अरबी—किशनिश, बिंकुक, तुफोरमेना। अफगानिस्तान—जर्दालू। पंजाब—आलूकश्मीरी, किश्वा, गर्दालु। उर्दू—खुबानी। काश्मीर—गर्दालू, चेरकिश। लेटिन—Prunus Armeniaca (प्रूनस आरमेनिएका)

वर्णन—

यह वनस्पति कॉकेशस में पैदा होती है। पश्चिमीय एशिया, मध्य एशिया, योरप और बलूचिस्थान में ८००० फीट की ऊँचाई तक और उत्तर पश्चिम हिमालय में १२००० फीट की ऊंचाई पर और पंजाब के मैदानों में भी पैदा होती है। यह मध्यम आकार का एक वृक्ष होता है। इसके पत्ते गोल और तीखी नोक वाले होते हैं। ये पीछे से दर्दार होते हैं। इसके फूल शुरू में हलके गुलाबी रंग के होते हैं। मगर बाद में सफेद हो जाते हैं। इसका फल गोल व चिपटा होता है। इसकी गुठली में छोटी बादाम की तरह एक मगज निकलता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका फल मीठा, अतिसार नाशक और ज्वर दूर करने वाला होता है। यह प्यास को बुझाता है। इसके बीज पौष्टिक और कृमि नाशक होते हैं। यकृत के रोग, बवासीर और कान के बहरेपन में यह लाभ दायक है। ऐसा कहा जाता है कि खुबानी पहाड़ों पर होने वाली बीमारियों में बड़ा लाभ पहुँचाती है। तिब्बत के लोग इसे चबा कर आंख के रोग में लगाते हैं।

यूनानीमत से यह खून के जोश को शान्त करती है, दस्त साफ लाती है, जमे हुए हुए मुद्दों को खोलती है, पित्त ज्वर में लाभ पहुँचाती हैं। मेदे की जलन को दूर करती है, पेट के कीड़ों को मारती है। शरीर में ताकत लाती है। बुड्ढे और सर्द मिजाज वालों को नुकसान पहुँचाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिए अजवायन, मस्तगी, अनीसून और शक्कर मुफीद है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह विरेचक, ज्वर में शान्ति देने वाली और प्यास को बुझाने वाली है।

खूब कला

हिन्दी—खूबकला। अरबी—खाकसी, खूबा। फारसी—खाकसी। पंजाब—जंगली सरसों, मकत्रुस। सिन्ध—जंगली सरसों। उर्दू—खूबकला। लेटिन—Sisymbrium Irio (सिसिम्ब्रिम आयरियो)

वर्णन—

यह वनस्पति राजपूताना, पंजाब, पेशावर, बिलूचिस्तान, कोहाट, मध्य एशिया, अरब अफगानिस्तान और भूमध्य सागर के किनारे पैदा होती है। मगर ईरान में पैदा होनेवाली वनस्पति उत्तम मानी जाती है और वहीं से इसके बीज हिन्दुस्थान में बिकने आते हैं। इसके बीज राई के बीजों की तरह होते हैं। सबसे अच्छे बीज वे माने जाते हैं जो लाल और केसरिया रंग के हों। ये बीज अधिक दिनों तक पड़े रहने से खराब हो जाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी चिकित्सा के अन्दर यह वस्तु अत्यन्त महत्व पूर्ण मानी गई है। खास करके ज्वर को नष्ट करने वाले नुस्खों में इसका विशेष उपयोग होता है।

खजानुइल अदविया के मतानुसार यह दूसरे दर्जे में गरम और तर है। यह कामेन्द्रिय को ताकत देती है। भूख बढाती है, सूजन और खराब बादी को बिखेरती है। मेदे को कूवत देती है। हाजमें को बढाती है। चेहरे की कान्ति को निखारती है। बेहोशी में लाभ दायक है। इसके लेप से स्त्रियों के स्तनों की सूजन, पुरुषों के अण्डकोषों की सूजन और गठिया की सूजन में लाभ पहुँचाता है। इसके लेप से गर्भाशय के फोड़े फुन्सी भी मिटते हैं।

खूबकला फेफड़े के रोग, पुरानी खांसी और बुखार में बहुत लाभ पहुँचाती है। इसको

गुलाब जल में खूब औटाकर हैजे के रोगी को पिलाने से भी लाभ होता है। इसको ४ माशे की मात्रा में प्रतिदिन खाने से सीने और फेफड़े की खराबियाँ कफ की राह निकल जाती है।

एक यूनानी हकीम का कथन है कि जिसकी चेचक (माता) बिगड़ गई हो, उसको यदि इसके काढ़े में कुरता रंग कर पहिना दे तो सब दाने ब दस्तूर निकल कर आराम होजाते हैं।

हकीम अजमलखा का कहना है कि मोती जरे के बीमार के पीने के पानी के बर्तन में खूब कला के बीजों की पोटली बना कर डालने से और उसके बिस्तर पर खूबकला के बीजों को बिखेर देने से बीमार की घबराहट और बेचेनी दूर होकर दाने आराम से निकल जाते हैं।

इसकी खुराक ४ से ६ माशे तक है। इसके अधिक सेवन से सिरदर्द पैदा हो जाता है। इसके दर्प को नाश करने के लिये कतीरे का प्रयोग करना चाहिये।

डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार कफ से पैदा हुई खांसी,श्वास इत्यादि रोगों में खूब-कला का पाक बनाकर देना चाहिये। इससे कफ जल्दी पड़ता है, श्वासावरोध में कमी हो जाती है और आवाज सुधरती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार खूबकला उत्तेजक, कफ निस्सारक और शक्ति वर्द्धक है। यह दमे की बीमारी में लाभ पहुँचाती है।

उपयोग—

चेचक (*माता*)—खूबकला ३ माशे, उन्नाव तीन दाने, मुनक्का ५ दाने, अंजीर जर्द ३ दाने, शक्कर १ तोला इन सब को आधा पाव पानी में जोश दे, जब छटांक भर पानी रह जाय तब छान कर पिलाने से चेचक के रोगी को लाभ होता है।

मोतीज्वर—(टायफाइड फीवर)—खूबकला, गावजवान, बनफशा, तुलसी, ब्राह्मी, सोंठ, मिर्च पीपर, मुलेठी थे सब तीन २ माशे और अमलतास, का गूदा ६ माशे। इन सब चीजों को पाव भर पानी में उबाल कर छटांक भर पानी रहने पर छान कर शहद मिला कर पिलाने से मोतीज्वर में बहुत लाभ होता है। कभी-कभी तो इस औषधि से यह ज्वर मियाद के पहले भी उतरता देखा गया है।

खेतकी

नाम—

संस्कृत—कंटाला। अवध—खेतकी, हाथी चिमगार। तामील—मलई कटलई। तेलगू-अमराखसी, किटनटा। लेटिन—Agave Augustifolia अगेवा अगस्टि फोलिया। A. vivipera, अगेवा विवीपेरा।

वर्णन—

यह एक छोटे तने वाला वृक्ष होता है। इसके पत्ते छुरी या तलवार की शकल के होते हैं। ये भूरे और हरे रंग के होते हैं। इनके किनारों पर कुछ काटे होते हैं। इसके फूल बड़े और हरे रहते हैं। इनमें बदबू आती है। इसकी डोंडी लम्बी और गोल होती है। यह वनस्पति अमेरिका में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ मूत्रल और ज्वर निवारक होती है। इसके पत्तों का ताजा रस रगड़ या चोट के काम में लिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि जानवरों के घावों पर या शस्त्र के कारण हुए जख्मों पर लगाने के काम में आती है।

खेत पापड़ा

नाम—

हिन्दी—दमन पापड़ा। बंगाल—खेत पापड़ा। लेटिन—Oldenlandia Biglora.

वर्णन—

यह वनस्पति कर्नाटक, सीलोन, पूर्वी बंगाल, शिकिम, आसाम, सिलहट, पेगू, मलाया प्रायद्वीप फिलीपाइन द्वीप समूह और चीन में पैदा होती है। यह एक वर्षजीवी वनस्पति है। इसकी शाखाएं चौकोर होती है। इसके पत्ते अण्डाकार और पतले होते हैं। इसके फूल सफेद रहते हैं। और इसके डोड़िया लगती है।

कर्नल चौपड़ा के मतानुसार इसे पार्यायिक ज्वरों में, पाक स्थली की पीड़ा में और स्नायु मण्डल की अवसन्नता में उपयोग में लेते हैं।

खेन

नाम—

मनीपुर--खेन, खेड़। बरमा—थिउसी। लेटिन—Melanorrhoea Usitata (मेलेनोरिया यूसिटाटा)

वर्णन--

यह वनस्पति उत्तरी और दक्षिणी बरमा तथा श्याम में पैदा होती है। यह एक जंगली वृक्ष है। इसके पत्ते लम्बगोल और रुएँदार होते हैं। फूल सफेद और फल बेर के आकार का बैंगनी रंग का होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका रस जो कि इस वनस्पति के हर एक हिस्से में पाया जाता है, कृमि नाशक होता है। इसके अन्दर पाया जाने वाला मुख्य तत्व यूरोशिक एसिड है जो उसमें ८५ प्र० सै० तक पाया जाता है। यह वारनिश बनाने के काम में आता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह कृमि नाशक और चर्म रोगों में लाभ दायक होती है।

खैर

नाम—

संस्कृत—खदिर, श्वेतसार, सोमसार, सोमवल्क, इत्यादि। हिन्दी—खैर। बंगाल—खदे गाछ। मराठी—खैर। गुजराती—खेरियो, गोरल। कर्नाटकी—केंपिनखैर। तेलगू—चण्ड चेट्टु। लेटिन—Acacia Catechu (अकेशिया कटेचू)

वर्णन—

यह एक बड़ा वृक्ष होता है। इसका तना छोटा और टेढ़ा मेढा होता है। इसकी डालियां कांटेदार होती हैं। पत्ते इमली के पत्तों से भी छोटे होते हैं। इसकी फलियां २। ३ इंच लंबी पतली, भूरी और चमकदार होती हैं। इनमें ३ से १० तक बीज निकलते हैं। इसकी लकड़ी से कत्था तैयार किया जाता है। कत्थे का वर्णन इस ग्रंथ के दूसरे भाग में पृष्ठ ३६३ पर दिया गया है। इसकी सफेद और काली दो जातियां होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से खैर शीतल, दांतों को दृढ़ करनेवाला, कड़वा, कसैला तथा चर्मरोग, खांसी, अरुचि, मेद कृमि, प्रमेह, ज्वर, व्रण, श्वेत कुष्ठ, रक्तपित्त, पांडुरोग, कुष्ठ और कफ को दूर करने वाला होता है।

सफेद खैर व्रण को हितकारी तथा मुख रोग, कफ, रुधिर दोष, विष, कृमि, कोढ़ और ग्रहबाधा को दूर करने वाला होता है।

खैर का गोंद मधुर, बलकारक, शुक्र वर्धक, व्रण को हितकारी तथा मुखरोग, कफ और रुधिर के दोष को दूर करने वाला होता है।

खैर के अन्दर से उसकी लकड़ी को उबाल कर कत्था प्राप्त किया जाता है। मगर एक सत्व जिसे खैरसार बोलते हैं वह इस वृक्ष में अपने आप बनता है। यह सत्व औषधि प्रयोग में अच्छा काम करता है। यह कफ रोगों को दूर करने के लिये बड़ी प्रभाव शाली औषधि है।

जीर्ण ज्वर में खैर सार और चिरायता इन दोनों का काढ़ा देने से बढ़ी हुई तिल्ली कट जाती है और शरीर में बल आता है। रक्त-पित्त में खैर की छाल का काढ़ा देने से दांतों के द्वारा बहता हुआ रक्त बन्द हो जाता है। चर्म रोगों में इसकी छाल का काढा पिलाने से और उससे घावों को धोने से बड़ा लाभ होता है। कुष्ट रोग के अन्दर काम आने वाली औषधियों में खैर श्रेष्ठ माना जाता है। संग्रहणी, अतिसार और दूसरी दस्तों में इसका कत्था या खैर सार बहुत गुणकारी होता है। गर्भाशय की शिथिलता से पैदा हुए विकारों में भी अच्छा काम करता है। सूक्ष्म ज्वर और शरीर के ढीलेपन में यह एक मूल्यवान औषधि है। मतलब यह कि इससे सारे शरीर की शिथिलता कम होती है। यह संग्राही, कफ नाशक, रक्तपित्त नाशक, पार्यायिक ज्वर प्रतिबन्धक, कुष्ठ नाशक और खांसी को दूर करने वाला है।

खेरी

नाम—

यूनानी—खेरी।

वर्णन—

यह एक छोटासा पेड़ होता है कि इसकी छाल का रंग सफेदी लिये हुए होता है। इसके पत्तों पर हलका रुआ होता है। इसके फूल सफेद, लाल, नीले, पीले, कई रंगों के लगते हैं। औषधि के उपयोग में पीले और लाल फूल ज्यादा आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसका फूल मेदे और आंतों में इकठी हुई वायु को बिखेरता है। हिचकी को रोकता है। इसे आखों में लगाने से आखों का जाला कटता है। इसके सूंघने से दिमाग साफ हो जाता है। इसके काढ़े को टब में भरकर उसमें बैठने से रुका हुआ मासिक धर्म और रुका हुआ पेशाब जारी हो जाता है। इसके काढ़े में कपड़े को तर करके उसकी बत्ती बनाकर योनि में रखने से मरा हुआ बच्चा निकल जाता है। इसे १ माशा पीसकर पीने से रुका हुआ मासिक धर्म चालू हो जाता है और यदि गर्भ हो तो गिर पड़ता है। इसे ककड़ी के बीजों के साथ पीने से गुर्दे और मसाने की पथरी गलकर निकल जाती हैं। इसका लेप करने से जोड़ों की सूजन में लाभ होता है।

अधिक मात्रा में खाने से यह सिर दर्द पैदा करता है। इसके दर्प को नाश करने के लिये अर्क गुलाब मुफीद है। इसकी मात्रा ४ माशे तक है। (ख० अ०)

खोजा

नाम—

बंगाल—खोजा। आसाम—खोजा। कच्छ—त्रिगला। लेटिन-Callicarpa Arboria (केलिकारपा आरबोरिया)

वर्णन—

यह वनस्पति गंगा के उत्तरी मैदान में और कुमाऊं से सिक्किम तक की पहाड़ियों में तथा खासिया पहाड़ी और बरमा में पैदा होती है। यह एक छोटा वृक्ष होता है। इस पर भूरे रंग का हलका छिलका होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी छाल सुगन्धित, कड़वी, पौष्टिक, पेट के आफरे को दूर करने वाली और चर्म रोग नाशक होता है।

खोर [सफेद खैर]

नाम—

हिन्दी—खोर, सफेद खैर। संस्कृत—खदिरा, खदिरोपर्ण, कुंजकंटक। गुजराती—कांटी, खेगर। बम्बई—कैगर,कैर। मराठी—गांदरा खैर। तेलगू—चनेसंद। तामील—पेकरूंगलो। लेटिन-Acacia Ferruginea (एकेशिया फेरूगेनिया)

वर्णन—

यह खैर की एक जाति है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसका छिलटा कड़वा और चिरचिरा होता है। यह गरम, कृमिनाशक और खुजली, धवल रोग, व्रण, मुखशोध, कफ, वात और रक्तरोगों में लाभदायक है।

युनानी मत—यूनानी मत से इसके पत्तों का सार सकोचक, रक्तश्राव रोधक और पौष्टिक होग है। इसके प्रयोग से घावों से मवाद आना बन्द हो जाता है। यह रक्तवर्द्धक और यकृत की तकलीफों में उपयोगी होता है। नेत्र रोग, पेचिश, सुज़ाक, पुराना प्रमेह, जलन, खाज, अन्न प्रणाली की विकृति और मूत्रमार्ग की बीमारियों में यह लाभ दायक है।

इसकी छाल के काढ़े से कुल्ले करने से मुंह के छाले मिट जाते हैं। ऐसा डाक्टर मुडीन शरीफ का मत है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी छाल संकोचक होती है।

गंगेरन

नाम—

संस्कृत—नागबला, खरगंधा, खर वल्लिका, महागंधा। हिन्दी—गंगेरन, हड़जुगे, गुलसकरी। मराठी—गगेटी, तुपकड़ी। गुजराती—वला, डुंगराउवला, गंगेटी, कांटलोबाल। बंगाल—बोनमेथी, गोरकचोलिया। लेटिन—sida spinosa (सिडा स्पिनोसा)

वर्णन—

यह वनस्पति सारे हिन्दुस्तान के उष्ण भागों में पैदा होती है। इसके पत्ते अण्डाकार रहते हैं। इसके फूल हलके गुलाबी रग के रहते हैं। इसके पौधे ३ से १० फीट तक ऊँचे होते हैं। इसमें बहुत बांकी टेढ़ी डालियां लगती हैं। इसके पत्ते चौड़े और छोटे होते हैं। ये कटी हुई किनारों के रहते हैं। इसके फूल जेठ आषाढ़ में आते हैं जो सफेद रंग के होते हैं। इसके फल पकने पर नारंगी रंग के हो जाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार गंगेरन मधुर, अम्ल, कसैली, गरम, भारी, चरपरी,

कफ, वात नाशक, व्रण निवारक और पित्त को नाश करने वाली है। इसकी जड़ें शक्ति नाशक बीमारियों में पौष्टिक वस्तु की तौर पर काम में ली जा सकती है। व्रण, पित्त, मूत्र सम्बन्धी बीमारियां कुष्ट और चर्म-रोग में भी ये लाभदायक हैं। इसका फल संकोचक और शीतल है। इसके पत्ते शान्तिदायक और ज्वरो-पशामक हैं। ये सुजाक, जीर्ण प्रमेह और पेशाब की गरमी को नष्ट करने वाले हैं।

मालवे के लोग हड्डी टूटने पर या मोच आने पर इसकी जड़ के रस को या उसके काढ़े को पिलाते हैं। यह जानवरों को पिलाने के काम में भी ली जाती है।

इसकी जड़ की छाल का काढ़ा सुजाक और मूत्राशय की जलन में शान्तिदायक वस्तु की और पर दिया जाता है।

डाक्टर वामन गणेश देशाई ने इस औषधि का लेटिन नाम "sida Carpinifolia" लिखा है। उनके मत से बम्बई की तरफ इसकी जड़ का चूर्ण अजीर्ण रोग में दिया जाता है। इसका काढ़ा आमवात को दूर करने वाला माना जाता है। ज्वर में सोंठ के साथ इसका काढ़ा देने से गर्मी कम होता है, पेशाब अधिक होता है और भूख लगती है। सुजाक में इसकी जड़ का चूर्ण दूध के साथ देने से लाभ होता है। इसके पत्तों का रस पुरानी आंतों के रोग में पौष्टिक वस्तु की बतौर दिया जाता है। इसके पत्ते को तिल के साथ पीस कर गरम करके सूजन पर लेप करने से सूजन बिखर जाती है।

उपयोग—

सुजाक—इसके पत्तों को कालीमिर्च के साथ पीसकर देने से पुराना और नया सुजाक मिटता है।

ज्वर—इसकी जड़ का काढ़ा बनाकर देने से पसीना देकर ज्वर उतर जाता है।

धातु की कमजोरी—इसकी जड़ की छाल के चूर्ण मे समान भाग मिश्री मिलाकर १ तोले की मात्रा में दूध के साथ लेने से वीर्य की कमजोरी मिटती है और काम शक्ति बढ़ती है।

स्थनों का ढीलापन—इसकी जड़ को पानी में पीस कर स्थनों पर लेप करने से स्थन कठोर हो जाते हैं।

दमा और खाँसी—इसकी जड़ को दूध में जोश देकर पीने से अथवा इसकी जड़ के चूर्ण को दूध के साथ लेने से दमा और खासी में लाभ पहुँचाता है।

गज पीपल

नाम—

संस्कृत—चव्यफल, दीर्घग्रंथि, गजकृष्ण, गजपीपलि, कपिवलि, इत्यादि। हिन्दी—गज-पीपल, फंका। बंगाल—गजपीपल। गुजराती—मोटी पीपर। उर्दू—गजपीपली। तेलगू—गजपीपली लेटिन—seindapsus Officinalis (सिंडेपसस ऑफिसिनेलिस)

वर्णन—

यह एक बड़ी बेल होती है। जो आर्द्र जमीनों मे सपाट मैदानों में पैदा होती है। यह हिमालय

प्रदेश में सिकिम के पूर्व, तथा बंगाल में मिदनापुर जिले के अन्दर पैदा होती है। इसका तना छोटी अंगुलि के बराबर होता है। इसकी शाखाएं सूखने पर भुरींदार हो जाती हैं। इसके पत्ते गहरे हरे रंग के और अण्डाकार होते हैं। इसके बीज छोटी पीपल से बड़े व करीब डेढ़ इंच लम्बे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से गजपीपल तेज, तीक्ष्ण, गरम, क्षुधा वर्धक, कामोद्दीपक, श्रवण शक्ति को तेज करने वाली और दस्त को नियमित करने वाली होती है। पेचिश, श्वास, और गले की तकलीफों में यह लाभ दायक है।

कफ प्रधान, पेचिश दमा और खांसी में यह अच्छा लाभ करती है। संधिवात पर इसका लेप करने से अच्छा लाभ होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह गरम और खुश्क है। यह भूख बढ़ाती है। दस्त बन्द करती है। श्वास सम्बन्धी बीमारियों में लाभ पहुँचाती है। पेट के कीड़े, दाद, और कफ को निकालती है। कामेंद्रिय को ताकत देती है। इसकी बेल का हर एक अंग मेदा और जिगर को ताक़त देता है। यह वीर्य को स्तम्भन करती है। पेट के दर्द और बवासीर में लाभदायक है, तथा पुराने बुखार को निकालती है।

कोमान के मतानुसार इसके फल की फांकों का काढ़ा दमें में दिये जाने पर कफ को ढीला करके निकाल देता है। किन्तु उसके दौरे की तकलीफ को कम नहीं करता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह सुगन्धित, पेट के आफरे को दूर करने वाली और उत्तेजक होती है। इसमें उपक्षार रहते हैं।

नोट—राज निघण्टु और मदनपाल निघण्टु के रचयिताओं ने "चव्य" के फलों को "गजपीपली माना है।

उपयोग—

श्वास—इसके चूर्ण को पान में रखकर खाने से श्वास मिटता है।

बादी का उदरशूल—इसके चूर्ण की फक्की देने से बादी का उदर शूल मिटता है।

गठिया—इसे घिस कर गरम करके लेप करने से गठिया में लाभ होता है।

गजाचीनी

नाम—

संस्कृत—बहुफला, कण्टकारि, श्रुद्रुम, वर्कंकसा,। हिन्दी—गजचीनी, वेकल, किंगनी, कंटाइ, वुंज, किंकिणि। अजमेर—काकरा। बंगाली—बेचगच्छा। बम्बई—हुरमचा, माल कांगनी। मध्यप्रान्त—बेकल, गजाचीनी। गुजराती—विकलो, विकारो। पंजाब—दजकर, खरई। तामील—कंडज; कंडजि, बलुलुअई। तेलगू—गजचीनी। लेटिन—Gelastrus senegalensis (सेलेस्ट्रस सेनेगेलेन्सिस) Gymnosporia spinosa (जिम्नोस्पोरिया स्पिनोसा)।

वर्णन—

यह एक प्रकार की ऊंची झाड़ी होती है। इसके पत्ते लम्ब गोल, शाखाएं फांटेदार, फलियां छोटी मटर की फली के समान और बीज बादामी रंग के होते हैं। यह वनस्पति पंजाब, सिंध, पश्चिम राजपुताना, गुजरात, बिहार, खानदेश, दक्षिण, मध्यप्रान्त,इत्यादि हिन्दुस्तान के सभी भागों में पैदा होती है। किसी २ के मत से यह माल कागनी की ही एक उपजाति है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से इसका फल खट्टा, मीठा, कसैला पाचक, अग्नि दीपक, ज्वर नाशक और रक्त शोधक होता है। यह बवासीर, फोड़े, कफ, पित्त, प्रदाह, जलन, प्यास और कनीनिका की अस्वच्छता को मिटाता है।

सुश्रुत के मतानुसार इसका पंचांग सर्प दंश में दूसरी दवाइयों के साथ उपयोग में लिया जाता है।

आंख की फूली—इसके पत्तों का रस आंख में आंजने से आंख की फूली बहुत जल्दी नष्ट हो जाती है।

पाण्डु और कामला—इसके पत्तों को पानी में उबाल कर उस पानी को छानकर, उसमें शक्कर मिलाकर पीने से पाण्डु, कामला, सूजन, रक्तविकार, बवासीर इत्यादि रोगों में बहुत लाभ होता है।

केस और महस्कर के मतानुसार इस वनस्पति का कोई भी हिस्सा सर्पदंश में उपयोगी नहीं है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति सर्पदंश के अन्दर काम में ली जाती है।

गदाकल्ह

नाम—

बम्बई--काटा, करवी। मुंडारि – हिन्दुदारू,मरगतिद। संथाली--गदाकल्ह, हरनापकोर। तामील--कुरिज, सिन्ना गुरिजा। लैटिन—strobilnthes Auriculatus. (स्ट्रॉबिलेन्थस एरिक्यूलेटस)।

वर्णन—

यह वनस्पति मध्यभारत, गंगा के उत्तरी मैदान और मध्यप्रदेश में पैदा होती है। यह एक झाड़ी होती है जिसकी शाखाएं आड़ी टेढ़ी फैल जाती हैं। इसकी फली फिसलनी होती है। जिसमें चार २ बीज निकलते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों को पीसकर बदन पर लगाने से पार्यायिक ज्वरों में लाभ होता है।

गदाबानी [विष खपरा]

नाम—

संस्कृत—रक्तवसुक। हिन्दी—गदाबानी। बंगाली—गदकनी। दक्षिण—विष खापरा। तामील—वल्लेशरुन्ने। तेलगू—तेलगलिजेरु। लेटिन—Trianthema Decandra (ट्रिएन्थेमा डिकेंड्रा)

वर्णन—

यह वनस्पति दक्षिण और कर्नाटक में पैदा होती है। यह सड़कों के किनारे शुष्क जमीनों पर फैलती है। इसका तना जमीन पर फैलने वाला होता है। इसके फूल गुच्छों में लगते हैं। इसके बीज काले होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ का काढ़ा दमा, यकृत की सूजन और मासिक धर्म की रुकावट में बहुत लाभ दायक होता है। इसकी जड़ को दूध के साथ पीस कर पिलाने से अण्डकोष की सूजन और जलन में लाभ देता है। इसके पत्तों का रस नाक में टपकाने से आधाशीशी बन्द होती है। इसकी जड़ विरेचक वस्तु की तौर पर भी काम में ली जाती है।

गदाभिकंद

नाम—

संस्कृत—चक्रांगी, चक्रोहर, मधुपर्णिका। हिंदी—सुखदर्शन, गदाभिकन्द। बंगाल—सुखदर्शन। मराठी—गदाभिकन्द। तामील—विषमुगील। लेटिन—Crinumlatifolium क्रिनम लेटिफोलियम C. Zeylanicum (क्रिनम जेलेनिकम)।

वर्णन—

यह वनस्पति सारे भारतवर्ष में पैदा होती है। इसके फूल सुगन्धित और सफेद रहते हैं। इसकी जड़ में एक कन्द रहता है जो बहुत तीक्ष्ण होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसका कन्द बहुत चरपरा, सुगन्धित और गरम होता है। इसको लगाने से बहुत खुजली होती है और छाला उठ जाता है। यह जानवरों के छाले उठाने के काम में लिया जाता है। यह चर्म दाहक है। इसे भूंजकर संधिवात में चर्मदाहक औषधि के रूप में काम में लेते हैं। इसके पत्तों का रस कान के दर्द में लाभदायक है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि वमन कारक, ज्वर निवारक और विरेचक होती है।

गंगो

नाम—

राजपूताना—गगेरन, गंगो। बिलोचिस्तान—गूंगि, कांगो। तेलगू—कद्दारि, कलड़ी, कटेकोलु। लेटिन—Grewia Tenax (ग्रेविया टीनेक्स)।

वर्णन—

यह वनस्पति पंजाब, पूर्वी राजपुताना, सिन्ध, बिलोचिस्तान, कच्छ, दक्षिण और कर्नाटक में पैदा होती है। यह एक बहुत नाजुक झाड़ी होती है। इसके पत्ते कुछ गोल, तीखी नोक वाले, फूल सफेद रंग के और फल नारंगी रंग के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

हुक्सबूलर के मतानुसार इसकी लकड़ी का काढ़ा खांसी को दूर करता है। इसे पार्श्वशूल को दूर करने के उपयोग में भी लिया जाता है।

गंजनि

नाम—

संस्कृत—कुत्रण। हिन्दी—गंजनि, गजनिकावास। मराठी—उषाषन, सुगंधितृण। बंगाल—कमाखेर। मलयालम—कामाक्षिपुल्ल। तामील—कावट्टम्पुल। तेलगू—कामाक्षिस्सु। लेटिन—Andropogon Nardus (एण्ड्रोपोगान नारडस)

वर्णन—

यह एक प्रकार का सुगन्धित घास होता है। यह त्रावणकोर, पजाब, सिंगापुर और सीलोन में ज्यादा पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका तेल उत्तेजक, पेट का आफरा दूर करने वाला, आक्षेप निवारक और ज्वर नाशक होता है। इसके पत्तों का शीत निर्यास, अग्नि दीपक और पेट का आफरा दूर करने वाला होता है। इसकी जड़ें मूत्रल, पसीना लाने वाली और ज्वर निवारक होती है। इसके फूल ज्वर निवारक माने जाते हैं। इसके तेल को सिट्रोनिला (Citronella) कहते हैं।

कर्नल चौपरा के मतानुसार यह ज्वर और प्याम को शान्त करने वाली, मूत्रल और ऋतुस्राव नियामक होती है। इसमें एक प्रकार का उड़नशील तेल पाया जाता है।

गटा परचा

वर्णन—

यह एक वृक्ष का सुखाया हुआ रस रहता है। इसका रंग ललाई लिये हुए भूरा होता है।

एलोपैथिक इलाज में इस वस्तु की बारीक २ चादरें बनाई जाती है। इसके ऊपर लोशन लगाकर के जख्मों पर लगाने से वह लोशन नहीं सूखता है। इसके अलावा मोटा गटापारचा टूटी हड्डी को मिली रखने के लिए प्रयोग में लिया जाता है।

गट्टूरना

वर्णन -

मराठी में इसको वाघाटी कहते हैं। यह एक बड़ी बेल होती है। इसके कांटे मुड़े हुए होते हैं। इसके सफेद फूल लगते हैं जो बाद में गुलाबी रंग के हो जाते हैं। इसके फल १ इञ्च या १॥ इञ्च के होते हैं। इसका फल पक जाने पर लाल रंग का हो जाता है। यह बेल अक्सर गांव के पास खारी जमीन या पहाड़ी जमीन में होती है। इसके फल का अचार बनाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह बेल चरपरी, कड़वी, ठण्डी और पित्त को मिटाने वाली है। इसके फल कड़वे और गरम होते हैं। यह हैजा, वात और कफ को दूर करती है। गरमी की जलन व खुजली मिटाने के लिये इसके पत्तों का लेप करते हैं। इसके पत्तों के लेप से सूजन दूर हो जाती है। बवासीर के मस्सों का फुलाव और सूजन मिटाने के लिये इसके पत्तों का लेप फायदे मन्द है। इसके पत्तों का जोशांदा पिलाने से उपदंश में लाभ होता है। (ख० अ०)

गड़पाल

वर्णन--

यह एक जंगली बूंटी है। यह सर्द मिजाज वाले लोगों के लिए कामेन्द्रिय की ताकत को बढ़ाने में बहुत फायदे मन्द है।

उपयोग --

अंजीर ३० दाने, अदरख २७ तोले, लौंग ३० दाने, दालचीनी १ तोला, मिश्री ४ तोले, शकर आधा सेर, गड़पाल पाव भर। इसका माजून बनाकर हाजमा शक्ति के अनुसार प्रतिदिन खाने से काम शक्ति बहुत बढ़ती है। (ख० अ०)

गडगबेल

नाम—

मराठी—गडगबेल। लेटिन—Vandellia Pendunculata (वेंडेलिया पेंडनक्यूलेटा)

वर्णन—

यह लता सारे भारतवर्ष में वर्षाऋतु में पैदा होती है। यह एक छोटी जाति की भड़भाकी लता होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति घी के साथ देने से सुजाक में लाभ पहुँचाती है। इसका रस बच्चों के हरे दस्त में लाभ दायक होता है।

बुखार के अन्दर शरीर की गरमी को दूर करने के लिए इसके पत्तों व नीम के पत्तों को पीस कर उनका रस सारे शरीर पर मसला जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके गुण रासना से मिलते जुलते हैं। यह स्नायु मण्डल की बीमारियों में, गठिया में और बिच्छू के विष पर उपयोग में ली जाती है।

गंडलिया

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति का स्वाद कड़वा होता है इसकी जड़ से दूध निकलता है। यह तप और पेट के दर्द को मिटाती है। इसके पत्तों का रस कान के दर्द में मुफीद है। यह बवासीर को भी मिटाता है। (खजाइनुल अदविया)

गंडपर

वर्णन—

इसके पत्ते कनेर के पत्तों की तरह लम्बे होते हैं। बहते हुए पानी के किनारे पर और नदी के अन्दर इसके पेड़ होते हैं। इसकी लम्बाई डेढ़ गज तक की होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

जो सूजन फोड़े और जोड़ों पर निकलता है और ईंट की तरह सख्त होता है उसको गंबीरा रोग कहते हैं। उस सूजन व जोड़ों पर इसका लेप फायदेमन्द है। ऐसे फोड़ों पर जिनमें पीव न पड़ा हो उन पर कालीमिर्च के साथ इसका लेप करने से वे बैठ जाते हैं। (ख० अ०)

गंडल

नाम—

पंजाब—गंडल, गनहुल, गुंआखिश, मुरिकनरा, रिचकाव, खिसकी, तवार। लेटिन—Sambucus Ebulus (सेबूकस एबूलस)

वर्णन—

यह वनस्पति चिनाब और झेलम में ४००० फीट से ११००० फीट तक की ऊँचाई में होती है। यह यूरोप, उत्तरी आफ्रीका और पश्चिमी एशिया में भी पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते कफ निस्सारक, मूत्रल, ज्वर निवारक और विरेचक होते हैं। ये जलोदर के अन्दर

बहुत लाभ दायक हैं। इसके फल भी जलोदर में लाभ दायक हैं। इंग्लैंड और यूरोप के कई भागों में इस वनस्पति की जड़, पत्ते और फल जलोदर रोग की एक अच्छी औषधि मानी जाती है। इसकी अन्दर छाल का काढ़ा बहुत मूत्रवर्द्धक है। इसके पत्तों का पुल्टिश बना कर सूजन पर लगाने से सूजन बिखर जाती है।

डानिक्सगर के मतानुसार यह वनस्पति विरेचक होती है। जलोदर रोग में यह अच्छा लाभ पहुँचाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ें विरेचक होती हैं। ये जलोदर के काम में ली जाती हैं। इनमें सीरानोजनेटिक ग्लुकोसाइड्स और इसेंशिअल ऑइल पाये जाते हैं।

गंडूकेपला

नाम—

कनारी—बंदिक्य, गंडूकेपला, नेमारू। कुर्ग—आंशेकोदी। मलायलम—कनाऊ, कदु। तामील—पदंगन, वानि। तुलू—अंजेंगोरी। लेटिन—Memecylon Amplexicaule (मेमीसिलोन एम्प्लेक्सीकोलि)।

वर्णन—

यह वनस्पति मलाया प्रायद्वीप के दक्षिण के पहाड़ों में पैदा होती है। इसका एक छोटा झाड़ होता है। इसके पत्ते शाखाओं पर ही लगनेवाले और कटी हुई किनारों के होते हैं। ये अण्डाकार रहते हैं। इनके फूल छोटे होते हैं। पत्तों की लंबाई ८·२ से १२·५ सेंटिमीटर तक होती है और चौड़ाई ३·३ से ५ सें० मी० तक रहती है। फूल रंग में सफेद होते हैं। इनकी पंखड़िया छोटी और लंब गोल होती हैं। फल गोल होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ शीघ्र प्रसवकारी है। इसके फूल और कोमल डालियों का काढ़ा चर्म रोगों में उपयोगी होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके फूलों का काढ़ा व इसकी कोमल शाखाओं का काढ़ा चर्म रोगों में उपयोगी है। इसकी जड़ शीघ्र प्रसवकारी है।

गणेशकांदा

नाम—

मराठी—गणेशकांदा। मलयालम—अनचुकिरी। लेटिन—Rhaphidophora Partesa. (रेफिडोफोरा परटेसा)।

वर्णन—

यह वनस्पति दक्षिण कोंकण मण्डल, मलाबार और उसके दक्षिण में सीलोन तक पैदा होती है।

यह मलाया द्वीप में भी पैदा होती है। इसकी बेल पराश्रयी होती है। यह हरी और मुलायम रहती है। इसके पत्ते हरे रंग के और फूल मोटे और खूबसूरत होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति का रस काली मिरच के साथ में जहरीले सांप के विष को दूर करने के लिये पिलाया जाता है और इसे करेले के साथ में पीसकर काटे हुए स्थान पर लगाने के काम में भी लेते है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्पदंश में निरुपयोगी है। कर्नल चोपरा के मतानुसार इसे साप और बिच्छू के जहर पर काम में लेते हैं।

गदम्बल

नाम—

पंजाब—गदम्बल, हरकु, अरकोल, कम्बज, लोहाया। गढ़वाल—कोकि। नेपाल—भालय्यो, कोसी। सीमान्तप्रदेश—कबनिकि, गालियम, अकोरिया। लेटिन—Rhus wallichu (रस वेलिचि)।

वर्णन—

यह वनस्पति उत्तर पश्चिमी हिमालय में काश्मीर से लगाकर नेपाल तक २००० फीट से ७००० फीट तक होती है। यह एक छोटे कद का जंगली वृक्ष होता है। इसकी छाल गहरे बदामी रंग की होती है। यह खुरदरी और तड़कने वाली होती है। इसके पत्ते र एदार, फूल हलके पीले रंग के और फल गोल और हरे रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्तों का रस चमड़े के ऊपर छाला पैदा कर देता है।

गदरू

नाम—

गढ़वाल—गदरू, अरिया। अलमोड़ा—अरुवा। लेटिन—Prunus Undulata. (प्रूनस अन्डुलेटा)।

वर्णन—

यह एक मध्यम कद का जंगली वृक्ष है। इसकी छाल खरदरी गहरे भूरे और काले रंग की होती है। इसके फूल सफेद और फल लाल रंग के रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके फल के गूदे में कड़वी बादाम की तरह एक तेल पाया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके फल और पत्ते औषधि में उपयोगी हैं।

नोट—अभी इसके विशेष गुणों का पता नहीं लगा है।

गदा

नाम—

यूनानी—गदा।

वर्णन—

यह एक वृक्ष होता है, जिसकी लम्बाई २ या ३ गज होती है। इसके पत्ते शाव के पत्तों की तरह मगर उससे नरम होते हैं। इन पत्तों की नोकों पर बालों की तरह एक नीली वस्तु लिपटी हुई रहती है। इसकी जड़ सफेद, लम्बी, और सकरकन्द की तरह होती है। इसका स्वाद तेज़, तुरा और कुछ कड़वा पन लिये होता है। इसका फूल लाल रंग का छोटा और खूबसूरत होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

खज़ाइनुल अदविया के मतानुसार यह औषधि सर्प विष को नष्ट करने में बड़ी अक्सीर है। सांप के काटे हुए को, इसकी ४ माशे जड़ चबाने से जहर उतर जाता है। रोगी पर अगर जहर का असर अधिक हो जाय और उसे दवा की तेजी मालूम न हो तो इसको अधिक मात्रा में खिलाना चाहिये। जब उसको दवा की तेजी मालूम होने लगे तब समझना चाहिये की जहर का असर कम हो रहा है। उस समय दवा देना बन्द कर देना चाहिये। अगर बीमार में दवा चबाने की शक्ति न हो तो उसे इसकी गोलिया बनाकर उन गोलियों को घी में चिकनी करके निगलवा देनी चाहिये। अगर उससे गोली भी न निगली जाय तो इन गोलियों को पीसकर पिला देना चाहिये। इसे खाने या सूंघने से जहर वमन द्वारा निकल जाता है।

अगर जहर की शंका से औषधि दे दी गई हो तो इस औषधि का असर नष्ट करने के लिये मट्ठा पिलाना चाहिये।

गंधतृण

नोट—इस वनस्पति का पूरा वर्णन इस ग्रंथ के प्रथम भाग के पृष्ट २५ पर 'अग्नि घास' के प्रकरण में दिया गया है।

गन्ध प्रसारिणी

नाम—

संस्कृत—प्रसारिणी, भद्रबाला, भद्रपर्णी, गन्धपर्णा, प्रसारिणी, राजबला। हिन्दी—गन्धप्रसारिणी, गन्धारी, पसरन। मराठी—हिरणवेल, प्रसारणी। बंगाली—गन्धभादुली। गुजराती—गन्धन। आसाम—वेधेलीलुत। नेपाल—पायदेविरी। तेलगू—सविरेला। उर्दू—गन्धन। लेटिन—Paederia Foetida. (पिडेरिया फोइटिडा)।

वर्णन—

यह एक बड़ी जाति की लता होती है। यह हिमालय, बंगाल तथा दक्षिण कोकण में बहुत

पैदा होती है। इसे हिमालय और बंगाल में हिरणबेल कहते हैं। यह वर्षा ऋतु में पैदा होती है। इसके तन्तु बहुत लम्बे और मजबूत होते हैं। इन तन्तुओं को सन की जगह भी काम में लेते हैं। इस बेल का तना गोल और कोमल रहता है। इसके पत्ते बरछी के आकार के और तीखे होते हैं। इसके फूल हलके बैंगनी रंग के होते हैं। इसका फल लम्ब गोल होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से यह वनस्पति कड़वी, बलदायक, कामोत्तेजक, टूटी हुई हड्डी को जोड़ने वाली, वातविध्वंसक और बवासीर, सूजन तथा कफ को दूर करने वाली है। यह मृदु विरेचक होती है।

राज निघटु के मतानुसार "प्रसारणी" भारी, गरम, कड़वी, तथा वात, सूजन, बवासीर और कब्जियत को दूर करने वाली है।

प्रसारणी की जड़ वातनाशक, शोधक, मूत्रल और आनुलोमिक है। यह अधिक मात्रा में लेने से वमन पैदा करती है। इसका प्रधान उपयोग, रक्तदोष और वात प्रधान रोगों में किया जाता है। आमवात और रक्त वात में यह एक हुक्मी औषधि मानी जाती है। इन रोगों में इसको खाने से और सन्धियों पर लेप करने से अच्छा लाभ होता है। इसको सोंठ, मिर्च और पीपल के साथ खाया जाता है और चित्रक मूल के साथ इसका लेप किया जाता है।

कर्तिकर और वसु के मतानुसार इसकी दो जातियां होती हैं। एक जाति जो कड़वी होती है वह लेप के काम में ली जाती है और दूसरी खाने के काम में ली जाती है।

खाने के काम में ली जाने वाली जाति पौष्टिक, मूत्रल, ऋतुस्राव नियामक और कामोद्दीपक होती है। यह नकसीर, सीने का दर्द, बवासीर, यकृत और तिल्ली के प्रदाह में लाभदायक है। इसके पत्ते पौष्टिक, रक्तस्रावरोधक, और घाव को पूरने वाले होते हैं। यह कान के दर्द में उपयोग मे ली जाती हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह वनस्पति ऋतुस्राव नियामक, विरेचक और रक्तस्राव रोधक होती है। इसके बीज विषनाशक होते हैं। यह श्वेत कुष्ट में लाभदायक है। सन्धिवात में यह वनस्पति अंत: प्रयोग और बाह्य प्रयोग दोनों काम में आती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह स्निग्ध, पेट के आफरे को दूर करने वाली और संधिवात में बहुत फायदे मन्द है।

नोट—कर्तिकर और वसु ने इसका मराठी नाम "चादवेल" और गुजराती नाम "नारी" लिखा है। मगर "प्रसारिणी" और "चादवेल" अलग २ चीजें हैं। "चादवेल" कब्जियत करती है और "प्रसारिणी" मृदु विरेचक है।

गन्धना

नाम—

यूनानी—गन्धना।

वर्णन—

इसके पत्ते प्याज के पत्तों की तरह होते हैं। ये तेज और बदबूदार होते है। यह एक वर्ष जीवी वनस्पति है जब इसका पौधा बढ़ जाता है। तब उसके बीच में से एक शाखा निकलती है। उस शाखा के सिरे पर फूल और बीज लगते हैं। इसके बीज और फूल प्याज की तरह होते हैं। इसकी दो जातियां होती हैं। एक शामी और एक नफ्ती, इसकी जड़ में एक प्रकार की गांठ निकलती है जो प्याज की तरह होती है। (ख० अ०)

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी नफ्ती जाति तीसरे दर्जे मे गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क होती है। शामी जाति दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क होती है।

यह वनस्पति शरीर की सूजन और बादी को बिखेरती है। पाचन शक्ति को सुधारती है। पेशाब और मासिक धर्म को साफ करती है। पेट के कीड़ों को मारती है। बवासीर में फायदे मन्द है। मृदु विरेचक है। इसके पानी में तलवार, छुरी इत्यादि धारदार चीजें बुझाने से उनमें अच्छी तेजी आती है।

शामी गन्धना देर से पचने वाली, खून में तेजी पैदा करने वाली और आंखों के लिये हानिकारक है। इसे पीसकर आग मे जले हुए स्थान पर लगाने से शांति मिलती है। इसे कुन्दर और सिरके के साथ नाक में टपकाने से नकसीर बन्द होता है। इसके रस को शहद के साथ चटाने से कफ के जमाव से पैदा हुआ दमा दूर होता है।

यह औषधि गुर्दे और मसाने के जख्मों को नुकसान पहुँचाती है। इसके काढ़े से टब को भरकर उस टब में बैठने से गर्भाशय का रुका हुआ मुँह खुल जाता है। इसका एनेमा लगाने से उदर शूल (cholic) दूर होता है। इसके रस को एक तोले, सवा तोले की मात्रा मे पीने से बवासीर का खून रुक जाता है।

इसकी दोनों जातियां नपुंसकता को दूर करने के लिये बहुत मुफीद है। खजाइनुल अदविया के मतानुसार चाहे जिस कारण से पैदा हुई नपुँसकता इस औषधि के सेवन से दूर हो जाती है और कामेंद्रिय को ताकत मिलती है।

जहरीले जानवरों के विष को दूर करने के लिये भी यह औषधि मुफीद है। इसको खाने से और काटे हुए स्थान पर लेप करने से जहर के उपद्रवों में लाभ होता है। इसको अजमोद के साथ पानी में औटाकर, उस पानी को कमरे में छिड़कने से मच्छर भाग जाते हैं।

गन्धना के बीज—इसके बीज दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। ये शरीर की सूजन और बादी को बिखेरते हैं। मूत्र खोलते हैं, कफ की बीमारियों में लाभ दायक हैं, गुर्दे, मसाने और कामेंद्रिय को ताकत देते हैं, पथरी को तोड़ते हैं, सरदी की बीमारियों में लाभ दायक हैं। मुँह, नाक, बवासीर, इत्यादि किसी भी अंग से होने वाले रक्तस्राव को रोकते हैं। इसकी शामी जाति के बीजों को भूनकर खाने से

पेचिश बन्द होता है। शराब के साथ इन बीजों को पीसकर लेने से बवासीर में लाभ होता है। इनको पीसकर मुँह पर लेप करने से मुँह की फाँई और पागलपन नष्ट होकर कांति बढ़ती है।

यह औषधि गरम प्रकृति वालों को नुकसान पहुँचाती है, पेट में फुलाव पैदा करती है। इसके खाने से खराब सपने आते हैं। यह आंखो और दातों को नुकसान पहुँचाती है, इसके दर्प को नाश करने के लिये धनिया, सौंफ और शहद मुफीद है। इसका प्रतिनिधि प्याज है। इसके बीजों की मात्रा ७ माशे तक की है। औषधि प्रयोग में इसके बीज और गठाने काम में आती हैं।

गंधहिल

वर्णन—

इसका पेड़ सरकंडा के पेड़ की तरह मगर उससे छोटा गज भर तक लम्बा होता है। इसकी जड़ और फूलों में से अजखर की सी खुशबू निकलती है। गन्धाहिल का स्वाद कड़वा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका स्वभाव गर्म है। यह गले का मर्ज मिटाती है; दिल की बीमारी को फायदा करती है। पित्त, खून और कफ के उपद्रव को मिटाती है और श्वास की तंगी को दूर करती है। (ख० अ०)

गन्धक

नाम—

संस्कृत—गौरीबीज, बलि, गन्धपाषाण, गन्धक, कीटघ्न, क्रूरगन्ध। हिन्दी—गन्धक। बंगाल—गन्धक। मराठी—गन्धक। गुजराती—गन्धक। तेलगू—गन्धकमु। फारसी—गोगिर्द। अरबी—कीवृत। अंग्रेजी—Brimstone ब्रिमस्टोन, Sulpher सलफर।

वर्णन—

इतिहास—आर्य औषधि शास्त्र के अन्दर गन्धक की महत्ता और उसके गुण धर्म प्राचीन काल से वर्णन किये हुए हैं। पुराणों में इसके सम्बन्ध में ऐसा कहा गया है कि पूर्व काल में श्वेत द्वीप में क्रीड़ा करती हुई भगवती पार्वती देवी रजस्वला हुई तब उस रज के सने हुए कपड़े से भगवती क्षीर समुद्र में नहाई। वह रज समुद्र में गिरी और उससे गन्धक की उत्पत्ति हुई।

आर्य औषधि शास्त्र के मतानुसार शरीर में अग्नि पैदा करके उस अग्नि की सहायता से एक धातु को दूसरी धातु में परिवर्तित करने के लिये गन्धक एक आवश्यक पदार्थ है। इसके अतिरिक्त आर्य औषधि शास्त्र की प्रधान वस्तु पारद को औषधि रूप में तयार करने के लिये भी गन्धक की पद पद पर आवश्यकता होती है। जो पारद सम्पूर्ण रोगों को नाश करने वाला है, वह पारद गन्धक के योग के बिना कुछ भी उपयोग का नहीं है। इससे गन्धक की महत्ता आसानी से समझ में आ सकती है। पारद यदि भगवान शिव का वीर्य है तो गन्धक भगवती पार्वती का रज है। इन दोनों के संयोग के बिना चिकित्सा शास्त्र में कोई महत्व का रसायन नहीं बन सकता।

अरब और ग्रीक चिकित्सकों के अन्दर भी गंधक बहुत प्राचीनकाल से चिकित्साशास्त्र में काम में लिया जाता है। ऐलोपैथीक चिकित्साशास्त्र मे भी इस वस्तु की महत्ता को स्वीकार कर लिया गया है।

गन्धक की उत्पत्ति और व्यापकता —

गंधक स्थावर और जंगम सभी स्थानों में पाया जाता है। मनुष्य शरीर के अंदर वनस्पतियों के अंदर तथा पार्थिव द्रव्यों के अन्दर सभी स्थानों पर यह वस्तु पाई जाती है।

(१) शरीर के अन्दर रक्त और दूध में यह छोटी मात्रा में रहता है। पित्त के अन्दर यह २५ प्रतिशत पाया जाता है। यह गंधसारिका के रूप में रहता है।

(२) वनस्पतियों के अन्दर राई वर्ग, गाजरवर्ग, लहसन, छत्रकवर्ग, झाड़ों के रस और बीजों के तेल में भी यह पाया जाता है। यह सलफेट (Sulphate) के रूप में रहता है।

(३) पार्थिव द्रव्यों में यह विशेष करके गरम पानी के झरनों के आसपास जो थर बन जाता है उसमें जिप्सम नामक पत्थर के अन्दर यह पाया जाता है।

(४) गधक की सबसे बड़ी उत्पत्ति ज्वालामुखी पर्वतो से होती है यह उनके आस पास पड़े हुए थरों में मिलता है। इटली और सिस्ली (श्वेतद्वीप) में गधक बहुत मिलता है और वहीं से यह दूर दूर जाता भी है।

इसके अतिरिक्त डेरागाजीखान के नजदीक सुलेमान पहाड में, उत्तर अफगानिस्थान के हजारा जाट नामक स्थान में, बलूचिस्तान के सन्नी नामक स्थान में, बिहार उड़ीसा के मयूरभंज और सिंगभूमि में, कराची के नजदीक घीसी नाम बन्दर में तथा ब्रह्म देश, हैदराबाद, दक्षिण, मद्रास, पंजाब, नेपाल इत्यादि स्थानो में भी यह कहीं कम कहीं ज्यादा मात्रा में मिलता है।

गन्धक का रासायनिक प्रभाव—

गधक एक मूल तत्व होने की वजह से रसशास्त्र के अन्दर बहुत महत्व की वस्तु मानी जाती है। यह जीवित प्राणियों के चमड़े पर लगाने से हाइड्रोजन सलफाइड को बाहर करता है। इस कारण किसी तेल के साथ इसे चमड़ी के ऊपर लगाने से चमड़ी में जलन होती है और अगर चमड़ी नाजुक हो तो कभी २ फुन्सिया भी निकल आती हैं, मगर इसके लेप से चमड़ी पर के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं और यह गीली खुजली के कीड़ों को जल्दी मार देता है।

पेट के अन्दर यह दो ड्राम की मात्रा में लेने से आमाशय में जैसा का तैसा रहता है। लेकिन पित्त और अग्निरस (पॅक्रियाटिकज्युस) में कुछ २ घुल जाता है। वहा से जब यह आंतों में पहुँचता है तब इसका कुछ हिस्सा सलफ्यूरेटेड हाइड्रोजन में बदल जाता है। इसके कारण आँतों में कुछ सुरसुराहट सी पैदा होती है और आंतों की काम करने की क्रियात्मक शक्ति बढ़ जाती है। आंतों पर इसका विरेचक असर भी होता है। जिससे १।२ दस्त भी हो जाते हैं। गन्धक के ज्यादा सेवन से आंतों में सल्फ्यूरेटेड हाइड्रोजन गैस पैदा होकर अक्सर बदबूदार अपान वायु गुदा मार्ग के द्वारा निकलने लगती है। इसलिये इसको ज्यादा दिन तक सेवन करना हानिकारक है।

कहा जाता है कि गंधक स्वस्थ मनुष्यों के वायु यन्त्र की श्लेष्मिक झिल्ली के सार तत्व को बढ़ाता है और उसके स्पन्दन को ज्यादा करता है। मगर यह संदिग्ध है। इसके अधिक सेवन से खून में सलफाइड्स और सलफ्यूरेटेड हाइड्रोजन मिलते रहते हैं ये प्रभावशाली जहर हैं। इनके बढ़ने से खून की सुर्खी कम हो जाती है। सांस आने में रुकावट पैदा होती है। पट्ठे कमजोर हो जाते हैं। इसलिये इसको नियमित मात्रा से कभी ज्यादा नहीं लेना चाहिये।

रक्त में अपना प्रभाव दिखलाने के बाद इसका कुछ हिस्सा सलफेट के रूप में मूत्र मार्ग की तरफ निकलता है। कुछ हिस्सा श्वासोच्छ्वास नली की श्लेष्म त्वचा के जरिये सल्फ्यूरेटेड हाइड्रोजन के रूप में बाहर निकलता है, उस समय यह श्वास नली को उत्तेजित करता है। इसका कुछ हिस्सा मोटी अंतड़ी के रस्ते गुदा की तरफ जाकर वहां कुछ दाह पैदा करके विरेचक प्रभाव बतलाता है, जिससे मल नरम होकर दस्त साफ हो जाता है। इसका यह विरेचक धर्म बवासीर के रोग में बड़ा लाभदायक होता है, क्योंकि यह गुदा मार्ग की शिरा को संकुचित कर देता है।

चर्मरोगों में यह एक उत्तम और विरेचक औषधि है। श्लेष्म निस्सारक होने की वजह से यह श्वास नलिका की पुरानी सूजन पर भी बहुत उपयोगी होता है। इस रोग में गंधक के सेवन के साथ पथ्य रूप में प्याज खिलाने से इसके गुण बहुत अच्छे दृष्टिगोचर होते हैं। प्याज को फाड़ कर बरतन में बन्द करके आग पर पकाकर खाने से श्लेष्म निस्सारण क्रिया बहुत उत्तम होती है।

जीर्ण आमवात में गन्धक खाने से और लेप करने से लाभ होता है। अधरंगी रोग में यह एक उत्तम औषधि है। जिगर की खराबी से पैदा हुई कब्जियत में भी इसकी गोलियों से लाभ होता है। पुरानी गठिया और पुराने जिगर के रोगों के लिये गंधक के सोते का पानी पीने से अच्छा लाभ होता है। पुरानी खांसी और जमे हुए कफ को निकालने में भी गन्धक मदद करता है। पुराने चर्मरोग व गठिया रोग में गन्धक के झरनों में स्नान करने से अच्छा लाभ होता है। गन्धक के अन्दर पीप पड़ने को रोकने की अच्छी ताकत है। श्लेष्मिक झिल्लियों के लिये भी यह एक पौष्टिक वस्तु है।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से गन्धक रक्त शोधक, धातु परिवर्तक तथा २० प्रकार के प्रमेह, १८ प्रकार के कोढ़, मन्दाग्नि, वायुरोग, कफ रोग इत्यादि में बहुत फायदा पहुँचाता है और शरीर को नवीन रूप देने वाला होता है। आयुर्वेद की यह एक प्रधान वस्तु है। आयुर्वेद में इसकी ४ जातियां मानी गई हैं। एक लोनिया गन्धक एक पीला आंवला सार, एक लाल और एक काला। लोनिया, गंधक खाली लेप करने के काम में और धूनी देने के काम में आता है। आंवला सार गन्धक बहुत चिकना, चमक दार, पीले रंग का और कुछ हरी झाईं लिये हुए होता है। यह गंधक सभी औषधियों में और पारद को सिद्ध करने के काम में लिया जाता है। लाल गन्धक तोते की चोंच के समान लाल रंग का होता है। ऐसा कहा जाता है कि यह सोने बनाने की क्रिया में काम में आता है मगर यह बहुत दुर्लभ होता है। अत्तार लोग लाल गन्धक के बदले में लाल कसीस दे दिया करते हैं जो किसी काम में नहीं आती।

गंधक शुद्धि की आवश्यकता—आयुर्वेद के मत से अशुद्ध गन्धक के सेवन करने से या

किसी योग में डालने से ताप, भ्रम, कोढ़ आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं और शरीर की कान्ति, ताकत शुक्र तथा उत्साह नष्ट होते हैं। इसलिये गन्धक को शुद्धि अवश्य करना चाहिये।

गंधक शोधन की विधियां —

(१) लोहे की कढ़ाही में पाव भर गाय के घी को तपा कर उसमें एक सेर आंवलासार गंधक के चूर्ण को डालकर हलकी आंच देना चाहिये। जब सब गंधक का चूर्ण घी में घुल जाय, तब एक मिट्टी के पात्र में दो सेर मट्ठा भरकर उस पात्र के ऊपर एक बारीक, गीला और नवीन कपड़ा ढक कर मज़बूत बाध दें। उस कपड़े के ऊपर कढ़ाही में पिघली हुई गंधक को धीरे २ डालना चाहिये जिससे सब गंधक उस कपडे में से छनकर मट्ठे में चला जाय। जब सब गंधक कपड़े से निकल कर मट्ठे में पहुँच जाय तब कपड़े को खोलकर पात्र के पेंदे में जमे हुए गंधक के ढेले को निकाल लेना चाहिये। इस प्रकार ५ या ७ बार शुद्धि करने से गंधक अच्छा शुद्ध हो जाता है।

(२) *गंधक रसायन*-जिस मनुष्य को गंधक रसायन सेवन करना हो उसको इस दूसरी विधि से गंधक शोधन करना चाहिये। अच्छे उत्तम भिलावों का आधापाव तेल लेकर उसमें आधा सेर आंवलासार गंधक का चूर्ण डालकर, लोहे की कढ़ाही में रखकर, हलकी आंच दें। जब गंधक पिघलकर तेल में मिलजाय तब उस कढ़ाई में त्रिफले का काढा और गिलोय का स्वरस डालकर कलछी से चलावे। जब गंधक ठंडी पड़कर जमजाय तब उसे निकालकर दूसरी बार फिर से नये भिलावें का तेल डालकर इसी प्रकार शुद्ध करें। इस प्रकार तीन बार करने से गंधक शुद्ध होता है। इस गंधक को गाय का दूध, दालचीनी, काली मिरच, पत्रज, छोटी इलायची के दाने, बड़ी हर्र की छाल, गिलोय, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पीपल, अदरक, भागरा इन १४ औषधियों के स्वरस या क्वाथ की आठ २ भावनायें देना चाहिये। जब सब भावनाएं लग चुके तब उस गंधक में समान भाग मिश्री मिलाकर पीसकर किसी पात्र में रखदें इसी को गंधक रसायन कहते हैं।

इस गंधक रसायन को अपनी प्रकृति के अनुसार एक तोले तक की मात्रा में गाय के धारोष्ण दूध के साथ लेने से २० प्रकार के प्रमेह, १८ प्रकार के कोढ़, सब प्रकार के वात रोग, मंदाग्नि, शूल, तथा रक्त विकार से होने वाले सब रोग नष्ट होते हैं। यह गंधक रसायन परम वाजीकरण है। यह विषम धातुओं को सम करता है।

इस गंधक रसायन में भिलावें से होनेवाले सब विकार नष्ट हो जाते हैं।

(३) गंधक शोधन की तीसरी विधि—सिंदूर रस आदि बनाने के लिये या किसी योग में गंधक को डालने के लिये इस विधि से गन्धक को शुद्ध करना अच्छा है। लोहे की कढ़ाई में सेरभर गंधक और पाव भर घी डालकर हलकी आंच पर गलाले। उसके बाद पहली शुद्धि के अनुसार मिट्टी की नांद में गंधक से दूना दूध भर कर उसके मुँह पर पतला, नवीन और गीला कपड़ा बांध कर उस गंधक को कपड़े के ऊपर छोड़ दें और कलछी से हिलावें। जब सब गंधक दूध में गिर जाय तब

उसको नांद के पैंदे से निकाल कर फिर नये घी और नये दूध में शुद्ध करना चाहिये। इस प्रकार तीन बार करने से गंधक शुद्ध हो जाता है। यह गंधक रक्त शुद्धि के लिये खाने के काम में आता है।

इस गंधक की शुद्धि में दूध के ऊपर जो घी तिरकर आता है उसको इकट्ठा करके एक पात्र में भरकर रखलेना चाहिये। इस घी को खाज, खुजली, चर्म रोग पर मालिश करने से अच्छा लाभ होता है।

(४) चौथी विधि—दो सेर आवलासार गंधक को आधा सेर गाय के घी में मिलाकर लोहे की कढ़ाई में डालकर हलकी आंच से गलाना चाहिये। गलने के बाद उपरोक्त विधि से मिट्टी के बरतन में ४ सेर प्याज का रस भरकर उपरोक्त विधि से छान लेना चाहिये। इस प्रकार ५० बार करने से गंधक शुद्ध हो जाता है। यह गंधक रक्तविकार, कफ विकार और वात व्याधि में बहुत मुफीद है इस गंधक के योग से यह गुण गंधक जारित स्वर्ण सिंदूर बनाया जाय तो वह चंद्रोदय के समान गुणकारी होता है तथा और भी दूसरे योग में अगर इस गंधक को डाला जाय तो वह योग बहुत प्रभावशाली हो जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह कोढ़, तिल्ली, कफ के रोग और आमाशय के रोगों में लाभदायक है। गंधक कामेंद्रिय को ताकत देता है। पीलिया को मिटाता है, मासिक धर्म को चालू करता है। इसकी धूनी से जुकाम और नजले में फायदा होता है। इसको पीस कर सूंघने से मिरगी, संन्यास रोग और आधा शीशी में लाभ होता है। बबूल का गोंद १ भाग और गंधक आधा भाग को मिलाकर दही के साथ लगाने से सिर की गंज फोड़े फुंसियां और दर खुजली आराम होती है। अकरकरा, शहद, और सिरके के साथ इसको लगाने से कोढ़ और वात की बीमारियों पर अच्छा असर होता है। चेहरे की झाईं और दाग पर भी इसको सिरके के साथ लगाने से लाभ होता है। इसको २ माशे से ६ माशे तक की मात्रा में खाने से यह भूख पैदा करता है, वायु को बिखेरता है तथा आमाशय और कमर को ताकत देता है। लौंग, दालचीनी या जायफल को गंधक के अर्क में तर करके छाया में सुखाकर पीस कर खाने से कामेन्द्रिय की ताकत और पाचन शक्ति बढती है। हकीम अजअली का कथन है कि उनके पास एक ऐसा अमीर रोगी आया जिसके मेदे में एक दर्द पैदा होता था और वह पीठ से लगाकर मसाने तक पहुँच जाता था। उसी वक्त उस रोगी में पीलिया के लक्षण भी दिखाई देने लग गये थे, बदन का रंग आंखें और चेहरा पीला पड़ जाता और कभी कंपन भी पैदा हो जाता था। इस रोग को दूर करने के लिये कई इलाज किये गये मगर कोई लाभ नहीं हुआ। अन्त में उसको गंधक का चूर्ण खिलाना शुरू किया और एलुआ, केशर, गुलाब के फूल, तथा अफसतीन को गुलाब के अर्क मे पीसकर मेदे पर लेप करवाया। इस प्रयोग से वह रोगी कुछ ही दिनों मे अच्छा हो गया।

हकीम जालीनूस का कहना है कि एक आदमी को यरकान स्याह (कामला) का रोग हो

गया। वह ५ साल तक रहा तब किसी ने उसको कड़वी बादाम के साथ गन्धक खाने के लिये कहा। बीमार ने ऐसा ही किया और उसको आराम हो गया। गुदा भ्रंश रोग में गंधक की धूनी देने से बड़ा लाभ होता है।

गन्धक को ऊपर बतलाई हुई विधि से दूध और घी में शुद्ध करके उसमें से ६ रत्ती की मात्रा में, गाय के २। तोले घी और पाव भर दूध के साथ निहार मुँह (भूखे पेट) लेने से २० दिन में सफेद दाग खुजली और फोड़े मिट जाते हैं। दो माह तक इसका लगातार सेवन करने से शरीर तन्दुरुस्त हो जाता है। साल भर तक इसका सेवन करने से बुढ़ापे के आसार मिट जाते हैं। इसी गन्धक को ६ रत्ती की मात्रा में लेकर ६ रत्ती उत्तम हरड़ के साथ बारीक पीस कर बैंगन के बीजों के तेल में चिकना करके खाने से और ऊपर से ४ घड़ी के बाद तरावट वस्तु खाने से कोढ़, फालिज, क्षय, पुरानी खांसी और बवासीर में आश्चर्यजनक लाभ होता है। इससे सफेद बाल काले पड़ जाते हैं और फिर कभी सफेद नहीं आते। स्मरण शक्ति में ताकत आती है। मगर इसके सेवन करने से पहले विरेचन इत्यादि से शरीर की शुद्धि कर लेना बहुत जरूरी है। जिन दिनों में इसको सेवन किया जाय उन दिनों खटाई, नमक, गरम चीजें, स्त्री सम्भोग और अधिक मेहनत के कामों से परहेज करना चाहिये।

नारू के अन्दर शुद्ध गन्धक को ५ माशे की मात्रा में लेकर घी का काफी सेवन करने से ३ दिन में नारू बिलकुल गल जाता है।

यह औषधि अधिक मात्रा में सेवन करने से मेदा, दिमाग और जिगर को नुकसान पहुँचाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिए कतीरा, दूध और तरबूज का सेवन करना चाहिये। इसकी साधारण मात्रा १॥ माशे से ४ माशे तक की है।

उपयोग और बनावटें—

खुजली—(१) ३ माशे शुद्ध गन्धक को ३ माशा त्रिफला के चूर्ण के साथ प्रातःकाल लेकर ठण्डा पानी पीने से २ सप्ताह में खुजली नष्ट हो जाती है। मगर इसका सेवन करते समय नमक, खटाई, और गरम चीजों से परहेज करना चाहिये।

(२) ३ माशे शुद्ध गन्धक को आटे की बाटी में रख कर उस बाटी को आग पर सेक कर खाने से तर और सूखी खुजली मिटती है।

(३) गन्धक को सरसों के तेल में पीस कर मलने से फोड़े, फुंसी आराम हो जाते हैं।

बिच्छू का जहर—गन्धक को पीस कर बिच्छू के डङ्क पर लगाने से बिच्छू का जहर उतर जाता है।

प्रमेह—४ माशे गन्धक को ८ माशा गुड़ के साथ खिला कर ऊपर से दूध पिलाने से बीसों प्रकार के प्रमेह मिटते हैं।

हैजा—गन्धक को कागजी नींबू के रस में मिलाकर पिलाने से हैजे में लाभ होता है।

सफेद दाग—गन्धक और जौखार को कड़वे तेल में पीस करके लेप करने से सफेदादाग मिटता है।

कुष्ट—इसको गाय के मूत्र में पीस कर लेप करने से कुष्ठ में लाभ होता है।

दन्त रोग—गन्धक को सिरके में पीस कर उसमें रुई की बत्ती को तर करके कीड़े से खाये हुए दांत में रखने से दांत का दर्द मिट जाता है।

खुजली—सुअर की चर्बी १ पौंड लेकर खौलते हुए गरम पानी की भाप पर पिघला कर उसमें २०० ग्रेन लोमान का सत मिला कर १ औंस गंधक घोट कर मलहम बना लेना चाहिये। खुजली के रोगी को रात को सोते वक्त इसकी मालिश करवा कर फलालेन के कपड़े पहिना कर सुला देना चाहिये। सवेरे उसको गरम पानी और साबन से स्नान करा देना चाहिये। इस प्रकार कुछ ही दिनों के सेवन से खुजली बिलकुल आराम हो जाती है।

गंधक के तेल निकालने की विधि—

एक सेर हलदी की गाठों को दो सेर गाय के दूध में रात भर भिगोदें और सवेरे उनको निकाल कर धूप में सुखाले। इस प्रकार ७ दिन तक रात भर हलदी को दूध में भिगोना और दिन में सुखाना चाहिये। इन ७ भावनाओं के बाद हलदी की गाठों को चाकू से कतर कतर कर धूप में खूब सुखालें। इस शुद्ध हल्दी में से आठ तोला हलदी लेकर ४ तोला गंधक के साथ पीस कर एक कांच की बोतल में भरकर उस बोतल पर लोहे के बारीक तारों से गुंथी हुई डाट लगादे जिससे उसमें से वह चूर्ण नीचे न गिरने पावे, मगर तेल टपकने में कोई रुकावट न हो। उसके पश्चात् बालुकागर्भ पाताल यन्त्र की नाद के बीच में जो छिद्र किया हुआ रहता है उस छिद्र में बोतल का मुंह उल्टा करके उस बोतल के मुख के नीचे पत्थर या चीनी का प्याला रख दें, जिससे वह टपका हुआ तेल उसमें इकट्ठा हो जाय। फिर उस बोटल के ऊपर लोहे का एक चौड़ा नल ढक कर उसमें बालू रेत भर दें, जिससे वह बोतल चारों तरफ बालू से दबी रहे। फिर उस नल के चारों तरफ उपले कंडे भरकर आग लगादे। आग लगाने के बाद जब अग्नि निर्धूम हो जावे, तब जितने उपले कंडे और अंट सकें उतने और भरदें। इस प्रकार करने से तीन घंटे के बाद तेल चूने लगता है और ५।६ घंटे में सब तेल निकल जाता है।

हलदी की तरह धतूरे के बीजों में दूध की सात भावना देकर उन बीजों के साथ भी गन्धक का उपरोक्त विधि से तेल निकाला जा सकता है। इस तेल को एक बून्द की मात्रा में पान में लगाकर खाने से तथा शरीर पर मालिश करने से दाद, खाज और गलित कुष्ट में अच्छा लाभ होता है।

बनावटें —

गन्धकवटी-शुद्ध गन्धक ३ तोले, काली मिर्च ३ तोले, वायविडङ्ग ३ तोले, अजमोद ३ तोला काला नमक १॥ तोला, पीपर १॥ तोला, समुद्र नमक १॥ तोला, सेंधा नमक ४॥ तोला, काबुली हरड़ ६ तोला, चित्रक १॥ तोला, सोंठ ३ तोला। इन सब चीजों का बारीक चूर्ण करके २४ घण्टे तक नींबू

के रस में खरल करना चाहिए। ज्यों ज्यों रस सूखता जावे नया रस डालना चाहिए। उसके बाद जंगली बेर के बराबर गोलिया बना लेना चाहिए।

इन गोलियो को खाने से अजीर्ण, मन्दाग्नि, उदरशूल, वायुगोला इत्यादि तमाम उदर-रोग मिटते हैं।

गंदना (बिरंजसिफ़ा)

नाम—

हिन्दी—गंदना। काश्मीर—मोमाद्रू, चोपदिका। फारसी—बुइमेदरान। अरबी—बुई-लव। उर्दू—बिरंजशिफ़ा। लेटिन—Achillea Millefolium (एचीलिया मिलेफोलियम)।

वर्णन—

यह वनस्पति पश्चिमी हिमालय में काशमीर से कुमाऊ तक ६००० फीट से ६००० फीट की ऊँचाई तक होती है। यह एक काटेदार सीधा वृक्ष है। इसका तना १५ से लेकर ६० सेंटीमीटर तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते बरछी के आकार के रहते हैं। इसकी मजरी चमकीली और मोटी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

युनानी मत—यूनानी मत से इसका फूल कडुआ, मृदु विरेचक, ऋतुश्राव नियामक, घाव को पूरनेवाला, मूत्र निस्सारक, कृमिनाशक, वेदना को दूर करनेवाला, ज्वर निवारक, और उत्तेजक होता है। यह मस्तिष्क को पुष्ट करनेवाला और कामेंद्रिय को उत्तेजित करनेवाला एक पौष्टिक पदार्थ है। पुरातन प्रमेह, मूत्रसम्बन्धी रोग, यकृत के रोग, सीने के रोग और मूर्छा में यह लाभदायक है।

यह सारी वनस्पति ज्वर निवारक, उत्तेजक और पौष्टिक होती है। ज्वर के प्रारम्भ में और पसीने की रुकावट पर यह अच्छा काम करती है। रोम छिद्रों को खोलकर पसीना साफ लाती है और रक्त को शुद्ध करती है। कब्ज़ियत, हृदय की जलन, शूल और मृगी में भी यह लाभदायक है।

नार्वे में यह वनस्पति सधिवात की चिकित्सा में उपयोगी मानी जाती है। दाँतो के दर्द में इसको चूसने के उपयोग में लिया जाता है।

इग्लैण्ड में घाव को पूरने और भीतर का रक्तश्राव बन्द करने के लिये इसे काम में लेते हैं। फ्रांस में इसका काढ़ा ऋतुश्राव नियामक वस्तु की तौर पर काम में लिया जाता है। ऐसे ज्वरों में जिनमें कि विस्फोटकों की पीड़ा अधिक होती है, यह एक बहुत उपयोगी वस्तु है।

इसके शीत निर्यास से सूजन को बार बार धोने से सूजन उतरजाती है। इसके पत्तों का शीत निर्यास कान के रोग में भी लाभदायक है।

केलिफोर्निया में इसके बीजों को गरम पानी में गलाकर उस पानी से घाव को धोते हैं जिससे घाव जल्दी भर जाता है। वहा के निवासी इसके ताजा पत्तों को अथवा इसके पंचांग को घावों का रक्त बहाव बन्द करने के लिये काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह एक उत्तेजक और पौष्टिक पदार्थ है। इसमें उड़न शील तेल ग्लुकोसाइड्स और एचिलेन नामक पदार्थ पाये जाते हैं।

गंधराज

नाम—

संस्कृत—गंधराज। हिन्दी—गंधराज। उड़िया—गोंधोराजो। बरमा—यांगशीपन। लेटिन—Gardenia Florida (गार्डिनिया फ्लोरिडा)

वर्णन—

इस वनस्पति का मूल उत्पत्ति स्थान चीन और जापान है। यह भारत के बगीचों में भी बोई जाती है। यह एक प्रकार की बिना शाखी वाली वनस्पति है। इसके पत्ते अण्डाकार रहते हैं। इनके दोनों किनारे तीखे होते हैं। इसके फूल बड़े और बहुत सुगन्धित होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति विरेचक, कृमि नाशक, ज्वर निवारक और आक्षेप निवारक है। विशेष कर यह कृमियों को नष्ट करने के काम में आती है। इसकी जड़ अग्निमांद्य और स्नायु मण्डल के विकारों में उपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह ज्वर नाशक, कृमि नाशक और विरेचक है। इसकी जड़ अग्निमांद्य, स्नायु मण्डल के विकार और कीटाणु जनित रोगों में उपयोगी है। इसमें गार्डेनिन नामक कटु तत्व पाया जाता है।

गंधपूर्णा

नाम—

संस्कृत—हेमंतहरित, गंधपूर्णा, तैलपत्र, चर्मपर्णा, श्वेतपुष्प, नीलफल, आमवातघ्न। नेपाल-मछिनो। दक्षिण—गन्धपूरो। अंग्रेजी—Winter Green। लेटिन—Gaultheria Fragrantissima (गेलथेरिया फ्रेग्रैंटीसिमा)

वर्णन—

यह वृक्ष ब्रह्मदेश, सिंहल द्वीप और हिन्दुस्तान में नीलगिरी पहाड़ पर बहुत होता है। यह एक जमीन पर फैलने वाली सुगन्धित झाड़ी है। इसके पत्ते मोटे चमड़े के समान, अण्डाकार, तिकोने; फूल सफेद और फल करोंदे की तरह होते हैं। इसके पत्तों में से एक प्रकार का तेल निकलता है जो बाजार में गालथेरिया तेल के नाम से बिकता है।

गन्धपूर्णा के तेल (Oil of Winter green) में मनोहर और तीव्र गन्ध होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

गन्धपूर्णा का तेल सुगन्धित, वायु नाशक, उत्तेजक, ज्वर को नष्ट करने वाला, पसीना लाने

वाला, मूत्रल, वेदना नाशक और हृदय को बल देने वाला होता है। इसकी क्रिया सेलीसिलिकएसिड की क्रिया की तरह होती है। इसकी मात्रा ५ से लेकर १५ बूंद तक दी जाती है।

यह तेल तीव्र और नूतन आम वात के लिये बहुत उत्तम औषधि है। इसको पिलाने से और जोड़ों की सूजन पर लेप करने से बहुत लाभ होता है।

इसका तेल सुगन्धित, उत्तेजक, शान्ति दायक और पेट के अफरे को दूर करने वाला होता है। यह तीव्र आमवात और अध्रुसी या जांघिक स्नायुशूल (Sciatica) में बहुत सफलता के साथ उपयोग में लिया जाता है। इसका तेल बाह्य प्रयोग के लिये भी बहुत अच्छी वस्तु है। इसमें बहुत शक्ति शाली कृमि नाशक तत्व रहते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि आमवात और स्नायुशूल में बहुत लाभ दायक है।

गन्धगिरी

नाम—

कनाड़ी—गन्धगिरि, देवदारु, जीवदेन कुरुन्दकुमारा, दक्षिण—नटश देवदार। तामील—दसाडरम, देव्दारम, देवदारी। इंग्लिश—Bastard sandal. Deecny Deodar। लेटिन—Erythroxylon Monogynum (एरीथ्रोक्सीलोन मोनोगायनम)।

वर्णन—

यह एक कोका (कोकिन) की जाति का वृक्ष है। यह दक्षिण के पर्वतीय प्रांत, कर्नाटक, सीलोन और मद्रास प्रेसीडेन्सी में पैदा होता है। ऊपर इसके नामों में देवदारू का नाम आया है मगर जो चीज सब दूर देवदारू के नाम से प्रसिद्ध है वह दूसरी है और उसका वर्ग भी दूसरा है। उसका वर्णन देवदारू के प्रकरण में यथास्थान दिया जायगा।

गुण दोष और प्रभाव—

डॉक्टर मुडीन शरीफ के मतानुसार इसकी लकड़ी और छाल का शीत निर्यास जठराग्नि को बढ़ाने वाला, पसीना लाने वाला, उत्तेजक और मूत्रल है। यह अग्निमांद्य के साधारण केसों में और अविराम ज्वर में भी लाभदायक है। जलोदर के केसों में यह दूसरी तेज औषधियों के साथ में उपयोग में ला जाती है। इसके पत्ते ज्वर और प्यास को शमन करने वाले होते हैं। इसके पत्तों में थोड़ी मात्रा में उपक्षार पाये जाते हैं।

डॉक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार जीर्ण ज्वर और अजीर्ण रोगों में इसकी छाल का शीत निर्यास दिया जाता है। इससे भूख लगती है और पेशाब साफ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वस्तु बलदायक है। इसमें इसे शिअल ऑइल पाया जाता है।

गंधाबिरोज़ा

नाम—

संस्कृत—श्रीवास, सरलश्राव, श्रीवेष्ट। हिन्दी—गंधा बिरोजा, सरल का गोंद, चीड़ का गोंद। लेटिन—Ferula Galbaniflua (फेरुला गल्बेनिफ्लुआ)

वर्णन—

यह चीड़ के वृक्ष का गोंद है। किसी यूनानी हकीम का कहना है कि यह ऐसे वृक्ष का गोंद है जिसके पत्ते चिनार के पत्तों तरह होते हैं। यह वृक्ष हिन्दुस्थान और टर्की में पैदा होता है। इसका रंग प्रारंभ में सफेद होता है, उसके बाद पीला और लाल रंग का होकर सख्त हो जाता है और आग पर डालने से पिघल जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह तीसरे दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क है। पुराना गंधाबिरोजा ज्यादा खुश्क होता है।

पुरानी खांसी, दमा, हिस्टीरिया, मिरगी, बवासीर, कफ की बीमारियां तथा जिगर और तिल्ली की बीमारियों में यह लाभदायक होता है। यह गुर्दे और जिगर के जमाव (सुद्दे) को बिखेरता है; पथरी को तोड़ कर बहा देता है। गुलाब के तेल में इसको घोट कर कान में टपकाने से सिर का दर्द और कफ से पैदा हुआ कान का दर्द मिटता है।

धनुष्टंकार (Tetanus), कमर का दर्द और जोड़ों के दर्द में तथा कण्ठमाला और फोड़ों पर इसका लेप करने से लाभ होता है। मुँह की झाईं भी इससे मिट जाती है। इसको मरहम के साथ मिलाकर फोड़ों पर लगाने से फोड़े मिट जाते हैं और उन पर बद गोश्त आ गया हो तो वह साफ होकर घाव भर जाता है।

हकीम बूअलीसेन का कहना है कि ७ माशे गंधाबिरोजा पानी के साथ लेने से कुछ दिनों में बवासीर मिट जाता है। इस नुसखे को उक्त हकीम साहब अपना आजमूदा बतलाते हैं।

सुजाक के अन्दर भी गंधाबिरोजा अच्छा काम करता है। गंधाबिरोजा को समान भाग भुने हुए और छिले हुए चनों के साथ पीस कर झड़ बेर के समान गोलियां बना लेना चाहिये। इसमें से एक गोली गोखरू के काढ़े के साथ खिलाने से यह सुजाक नष्ट कर देती है। गंधाबिरोजा के तेल को २,३ बूँद की मात्रा में दूध के साथ पिलाने से भी सुजाक में बहुत लाभ होता है।

गंधा बिरोजा फोड़े और जखमों को दूर करने के वास्ते बहुत प्रभावशाली वस्तु है। पके हुए फोड़े, गांठ और जखमों पर इसका लेप करने से बहुत लाभ होता है।

यह वस्तु गरम प्रकृति वालों को गरमी की मौसम में और गरम जगह में नुकसान दायक होती है। यह तिल्ली और दिमाग को नुकसान पहुँचाती है। इसका दर्पनाशक बनफशा का तेल और कपूर है।

गंधाबिरोजा का तेल गरम और खुश्क है। यह योनि की सूजन और हिस्टीरिया में लाभदायक है। रुके हुए मासिक धर्म को यह जारी करता है। इसकी मालिश से सर्दी और वादी का दर्द आराम होता है। यह पुराने सुजाक, फोड़े, फुन्सी, गठिया, खुजली और कोढ़ में फायदा करता है।

कर्नल चौपड़ा के मतानुसार गंधाबिरोजा कफ निस्सारक, कृमि नाशक और उत्तेजक होता है। यह पुरानी वायु नलियों के प्रदाह और श्वास रोग में उपयोगी है। गर्भाशय के लिये यह एक पौष्टिक द्रव्य है।

गनसराय

नाम—

आसाम—गनसराय। नेपाल—मल्लिगिरी, मरिश्गिरी। बम्बई—मरसोय। अंग्रेजी—Nepal Sassafras (नेपाल सासाफ्रास)। लेटिन—Cinnamomum Glanduliferum. (सिनेमोमम ग्लेंड्यूलीफेरम)।

वर्णन—

यह वृक्ष नेपाल, भूटान, खासिया पहाड़ और सिक्किम में पैदा होता है। इसकी छाल हलकी, नरम और पोची होती है। इसकी बाह्य त्वचा भूरी और अन्तरछाल लाल होती है। इसका स्वाद काली मिरच के समान और गन्ध जायफल की तरह होती है। यह छाल देखने और सूंघने में सासा फ्रास की तरह होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस औषधि के सब गुण धर्म सासाफ्रास की तरह उत्तेजक ज्वरनाशक, स्वेद जनक, रोचक और पौष्टिक होते हैं। इसकी छाल में तेल और एक उड़नशील द्रव्य रहता है। इसका रासायनिक विश्लेषण सासाफ्रास के समान ही है।

गनफोड़ा

वर्णन—

इसको धन वेल कहते हैं। यह एक रोइदगी है। इसमें शाखा नहीं होती। इसकी बेल अंगूर की बेल की तरह होती है। इसकी शाखाएँ लंबी और जमीन पर फैली हुई होती है। इसकी डंडी पर तीन पत्ते और हर पत्ते में पांच कांगरे और कटे हुए रहते हैं। इसका फूल लाल मिरच के फूल सरीखा होता है और फल अखरोट के फल के बराबर तिकोना होता है। इसके बीज कालीमिरच के दानों की तरह होते हैं। यह पेड़ नरम जमीन में होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह गरम और खुश्क है। शरीर का शोधन करती है। इसके बीज गुर्दे की और मसाने की

पथरी को दूर करते हैं; पागलपन को मिटाते हैं; कमर के दर्द में फायदेमन्द हैं; पेशाब जारी करते हैं; गर्भाशय का मुंह बन्द हो जाय तो उसे खोल देते हैं; कामेन्द्रिय को ताकत देते हैं और वीर्य को गाढ़ा करते हैं। इसके पत्ते शस्त्र के जखम पर बांधे जाते हैं। अगर शरीर के अन्दर बन्दूक की गोली वगैरह भी रह गई हो तो उस पर इसके पत्तो का लेप करने से गोली खिंची जा सकती है।

गबला

नाम—

संस्कृत—प्रयंगर, प्रियंगू। बम्बई—गलबा, गौला। सिन्ध—महाबिंब। फारसी—उर्दू—खेबटी। मराठी—गावल, गडुला। लेटिन—Prunus Mahalib (प्रूनस महालिब)।

यह वनस्पति बलूचिस्तान, पश्चिमी एशिया और यूरोप में पैदा होती है। यह एक बहु शाखी झाड़ी है। इसकी शाखाएँ सीधी और फैलनेवाली होती हैं। इसके बीज छोटे २ होते हैं जो बाजार में बिकते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके पत्ते और शाखाएँ कृमिनाशक होती हैं। यह पसीने की बदबू को दूर करती है। इसका फल कड़वा और तीव्र गन्ध वाला होता है। यह मस्तिष्क को पुष्ट करता है। सीने को मजबूत बनाता है। यह वेदना नाशक और कामोद्दीपक होता है; फेंफड़ों के लिये लाभदायक है तथा ऋतुस्राव नियामक, कृमिनाशक, श्वास और खुजली में लाभदायक और प्रदाह को दूर करनेवाला होता है।

चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट के मतानुसार इसका फल सर्प व बिच्छू के विष में लाभदायक है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्प और बिच्छू के विष पर बिलकुल निरुपयोगी हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह पौष्टिक, अग्निवर्द्धक और मूत्रल है। बिच्छू के जहर पर भी यह उपयोग में लिया जाता है। इसमें कोमेरिन (Coumarin) सेलेसाइलिक एसिड (Salicylic Acid) और एमिगडेलिन (Amygdalin) नामक पदार्थ पाये जाते हैं।

डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार यह पौष्टिक और वेदना नाशक होता है। कष्टयुक्त अजीर्ण, आमाशय के घाव और आमाशय के अर्बुद रोग में यह दिया जाता है। इसकी मात्रा दो से पांच रत्ती तक की है।

गरजन

नाम—

संस्कृत—यक्षद्रुम। बंगाल—गरजन, श्वेत गरजन, वेतीसाल। बरमा—केनइनब्यू। सिंहाली—होरागहा। मलयालम—चरूंगू। लेटिन—Dipterocarpus Alatus (डिप्टेरोकारपस एलेटस)।

वर्णन—

यह वृक्ष पूर्वी बंगाल, चिटगांव, बरमा, आसाम, सिंगापुर, इत्यादि स्थानों में होता है। इसका तेल मोलमीन और अण्डमान से जहाजों के द्वारा कलकत्ते में आता है और वहां बिकता है। इसका झाड़ ४० फीट से लेकर १५० फीट तक ऊंचा होता है। इस पेड़ के तने में जमीन के नजदीक सुराख करके नीचे से आग जलाते हैं। आग की गरमी से उसमें से एक प्रकार का तैल टपकता है। इस तैल का रंग भूरापन लिये हुए पतला होता है। इस तैल को भभके में रखकर उड़ाने से एक प्रकार का उड़न शील तैल प्राप्त होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से इसका फल खांसी, जिगर की बीमारियां और पेशाब की रुकावट में लाभदायक है। इसके पत्तों को सिरके में जोश देकर उस जोशांदे से कुल्ले करने से दांत का दर्द मिट जाता है। इसके पत्तों और शाखों का काढ़ा पीने से फोड़े, फुन्सी, मेदे की कमजोरी, जिगर की कमजोरी और पेट की खराबी में लाभ होता है।

इसके तेल के सम्बन्ध के सन् १८७४ में एक नवीन खोज हुई, उसके अनुसार ऐसे कुष्ट में—जिसमें शरीर सुन्न पड़ जाता है, हाथ पैरों में जखम हो जाते हैं, चमड़ा मोटा हो जाता है, और शरीर पर गठाने सी पड़ जाती है—यह तैल अच्छा लाभ पहुँचाता है। इस रोग में इस तेल को खाने और लगाने दोनों कामों में लेते हैं। इसको व्यवहार करने की तरकीब इस प्रकार है, पहले रोगी को साबुन, मिट्टी और पानी से अच्छी तरह नहला कर साफ कर लेना चाहिये। उसके बाद गरजन के तैल और चूने के नितारे हुए पानी को समान भाग लेकर को खूब अच्छी तरह से एक दिल करके ४ ड्राम सवेरे और ४ ड्राम शाम को पिलाना चाहिए और मालिश के लिए तीन भाग चूने का निथरा पानी और एक भाग गरजन का तैल अच्छी तरह मिलाकर २ घण्टे सुबह शाम शरीर पर खूब मालिश करके जखमों पर भी लगा देना चाहिए। इस प्रयोग को कुछ दिनों तक धैर्य्य के साथ करने से जखम अच्छे हो जाते हैं, सुन्नता जाती रहती है और गाठें बिखर जाती हैं। रोगी तन्दुरुस्त और बलिष्ट होता जाता है। (ख० अ०)

कम्बोडिया में इसकी छाल बलदायक और शोधक मानी जाती है और गठिया के अन्दर उपयोग में ली जाती है इसके नये वृक्ष की छाल गठिया, सन्निपात और यकृत के रोगों में लेप करने के काम में ली जाती है। इसका तैल व्रणों पर लगाने के काम में लिया जाता है। इसकी राल सुजाक में बाह्य प्रयोग के काम में आती है।

डा० वामन गणेश देसाई के मतानुसार गरजन के तेल की क्रिया कोपेवा के तैल के समान ही होती है। यह श्लेष्मिक त्वचा को उत्तेजना देता है। खास कर के मूत्रेन्द्रिय की श्लेष्मिक झिल्लियों को यह बहुत उत्तेजना देता है। इसका कफ निस्सारक गुण विश्वसनीय है। इसकी मात्रा आधे से लेकर एक ड्राम तक है जो दूध के साथ दिन में तीन बार दी जाती है।

पुराने सुजाक में गरजन का तेल कोपेवा ऑइल के बदले में दिया जा सकता है। त्वचा के रोग, रक्त पित्त और कफ रोगों में यह चूने के निथारे हुए पानी के साथ मिलाकर दिया जाता है।

उपयोग—

मूत्र कृच्छ्र—नये पुराने मूत्र कृच्छ्र में इसके तेल की दस से लेकर तीस बून्दे दूध अथवा चांवलो के माड में मिलाकर देने से लाभ होता है।

दाद—इसके तैल में रस कपूर और गन्धक मिलाकर मर्दन करने से दाद मिटता है।

कुष्ट—में इसका प्रयोग करने की विधि ऊपर लिख दी गई है।

त्वचा के अन्य रोग—वैसे तो त्वचा के सब रोगों में इस तेल के मर्दन से लाभ होता है। पर खास करके त्वचा के जिन लाल चट्ठों में सफेद छिलकों के पर्त जम जाते हैं। उनमें इस तेल के मालिश से बहुत लाभ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार गर्जन का तेल कोपेवा आइल का प्रतिनिधि है, यह कुष्ट रोग में भी लाभ पहुँचाता है। इसमें इसेंशियल ऑइल, रेजिन और क्राइस्ट एसिड (Cryst Acid) पाये जाते हैं।

गरज़ा

यह एक हिन्दुस्थानी दवा है। इसका रंग लाल, और स्वाद कड़वा तथा तीखा होता है। इसकी किस्में सफेद, लाल और छोटी, बड़ी है। यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह बद हजमी को दूर करती व हाजमा शक्ति को बढाती है। (ख० अ०)

गग्घन

नाम—

पंजाब—गरघन, गुड़लई, फगोरा, फूला, रंगटेका। अलमोड़ा—गंटा। देहरादून—गाट। सीमाप्रदेश—घाट, गोक्सा। लेटिन—Rhamnus Triqueter (रेमनस ट्रिक्वेटर)।

वर्णन—

यह वनस्पति हिमालय की तलहटी, कुमाऊं, बम्बई और दक्षिण की कुछ पहाड़ियों पर पैदा होती है। यह हमेशा हरी रहने वाली एक वनस्पति है। इसका छिलटा गहरे बादामी रंग का या काला होता है। इसके पत्ते अण्डाकार, फूल पीले और हरे रंग के तथा फल काले और बैगनी रंग के होते हैं। इन फलों में दो से चार तक बीज निकलते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति पौष्टिक, सकोचक और पीड़ा निवारक होती है।

गरनक कायल

वर्णन—

यह एक बड़े वृक्ष का फल है। इस पेड़ के पत्ते बड़े होते हैं, इन पत्तों पर कांगरे और नोकें होती हैं। ये दो अंगुल के बराबर चौड़े और नरम होते हैं। इनके एक तरफ का हिस्सा हरा होता है। और दूसरी तरफ का हिस्सा सफेदी लिए हुए होता है। गरमी की शुरू फसल में इसके फूल आकर फल आते हैं। फल आंवला और हड़ से मिलता-जुलता होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके फल का अचार डालते हैं। इसके फल की तबियत हड़ और आंवलों की तरह है। इसके फायदे दोनों के बराबर हैं। (ख० अ०)

गरीफल

गुण दोष और प्रभाव—

यह एक फल है। यह स्वाद में खट्टा होता है। इससे दस्त साफ आते हैं और यह वायु, तप और जहर को दूर करता है।

गरोवी

वर्णन—

यह एक बूंटी है। जो जमीन पर बिछी हुई रहती है। यह झील और तालाब के किनारे उगती है। इसके पत्ते जल नीम के पत्तों की तरह होते हैं। इसका फूल रंग में सफेद व गोल होता है। इसके बीज बारीक होते हैं। गरीब लोग प्याज के साथ इसका शाक बनाकर खाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते पीस कर जोरों से ठण्ड देकर आने वाले बुखार में बीमार के हाथों पर कोहिनी तक और पैर पर जाघों तक लेपकर दें तो बुखार का जोर कम हो जाता है। हथेलियों और पावों के तलवों पर भी इसका लेप करना चाहिये।

गनगीर

गुण दोष और प्रभाव—

यह एक खारदार वृक्ष है। इसकी तबियत सर्द व खुश्क है। इसके बीज पुरानी दस्तों को बंद करते हैं। पीलिया मे भी ये फायदा करते हैं। इसकी आधपाव जड़ का काढ़ा पीने से उछली हुई पित्ती फौरन दूर हो जाती है।

गंदिरा

नाम—

संस्कृत—गन्दिरा, विदारि, पाठि। मध्यप्रदेश—चिचोरा। देहरादून—वनतमाखू। मराठी—कुत्री। तामील—मलयचुन्दई। तेलगू—बुष्य। फारसी—तगरग। अरबी—जलीद। उर्दू—श्रोला। लेटिन—Solanum Varbascifolium (सोलेनम व्हरबेसिफोलियम)।

वर्णन—

यह वनस्पति सारे भारतवर्ष के उष्ण और समशीतोष्ण प्रदेशों में पैदा होती है। यह एक बिना शाखा का झाड़ीनुमा छोटा पौधा होता है। इस सारे पौधे पर पीला या भूरा रुआ रहता है। इसके पत्ते लम्ब गोल, फल गोल और पीले तथा बीज कुछ खुरदरे रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके सूखे पौधे को गरम पानी के साथ पीसकर देने से प्रदाह, जलन और शूल में लाभ होता है। यह आग से जल जाने के कारण पैदा हुई तकलीफ में भी लाभदायक है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसमें सोलेनाइन और सेपानिन नामक पदार्थ और उपक्षार पाये जाते हैं।

गर्भदा

नाम—

संस्कृत—चन्द्रपुष्पा, चन्द्रि, चन्द्रिका, गर्भदा, गर्दभि, नेत्रदुनि, महौषधि, नकुलि, निशनेह पुष्पा, श्वेत कण्टकारि। बंगाल—रामबैंगन। ब्रह्मा—सिकादि। मलयालम—अनच्चुन्ना। तेगलाग—तरबोंलो। तामील—अनेइचुन्दि। तेलगू—मुलक। तुलु—गुलवादने। उड़िया—रामोबेगनो। लेटिन—Solanum Ferox सोलनेम फेरोक्स।

वर्णन—

यह वनस्पति आसाम, ब्रह्मा, कोकन, पश्चिमीय घाट, सीलोन और चीन में होती है। इसका मकाण्ड मोटा और खुरदरा होता है। इसके ऊपर नाजुक कांटे रहते हैं। इसके पत्ते १५ से लगाकर २८ सें० मी० तक लम्बे और १० से २० सें० मीटर तक चौड़े होते हैं। इसका फल गोल और रुएंदार होता है। इसके बीज कुछ खुरदरे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसकी जड़, और इसका फल गरम और तीक्ष्ण रहता है। यह भूख और रुचि को बढ़ाता है। वात कफ में फायदा पहुंचाता है। चक्षुरोग में लाभदायी है। यह गर्भवती स्त्री के गर्भ को शांति पहुंचाने वाला होता है। प्रायः इस के गुण कटेली का सत्यानाशी के गुणों से मिलते जुलते हैं।

कोमान के मतानुसार इसके पंचाग का काढ़ा कई प्रकार के ज्वर से पीड़ित लोगों को दिया गया था मगर इस वनस्पति में किसी प्रकार के ज्वर नाशक या ज्वर निवारक गुण नहीं पाये गये।

गरब

नाम—

यूनानी—गरब। फारसी—नाज़बन।

वर्णन—

यह एक बड़ा झाड़ होता है। इसके पत्ते और छाल सफेद होते हैं। इसलिये इसको सफेद झाड़ भी कहते हैं। इसके फल नहीं आते। इसके पत्ते उन के पत्तों की तरह होते हैं। जिन दिनो इस झाड़ पर कलिया आती है उन दिनों इसके तने और डालियों पर एक नोकदार औजार से चीरें लगा देते हैं जिससे उस स्थान पर इसका गोंद जमा हो जाता है। उस गोंद को इकट्ठा कर लिया जाता है। औषधि के काम में इसके पत्ते, छाल, और गोंद ही विशेष रूप से उपयोग में लिये जाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से यह पहले दर्जे में सर्द और खुश्क है। इसकी राख को अथवा इसके गोंद को सिरके में मिलाकर बवासीर के मस्सों पर लगाने से मस्से कट जाते हैं। फोड़ो पर भी इसकी छाल या गोंद का लेप करने से फायदा होता है। इसकी जड़ की छाल बालों पर खिजाब करने के काम में आती है। इसके ताजा पत्तों को पीसकर जखम या कटे हुए स्थान पर लगाने से कैसा ही खराब जखम हो लाभ होता है। इसके सूखे पत्ते पीसकर घाव पर छिड़कने से घाव भर जाता है। इसके काढ़े से सिर धोने से सिर की गज में लाभ होता है। इसके पत्तों का लेप करने से गरमी से पैदा हुआ सिर दर्द मिट जाता है। इसके रस को आख में टपकाने से आख के जाले और धुन्द में फायदा होता है। इसके पत्तों के अथवा जड़ के रस को गुलाब के तेल के साथ जोश देकर कान में टपकाने से कान का दर्द और कान का पीब मिट जाता है। इसके रस को अथवा छाल के काढ़े को पीने से मुँह के रास्ते से खून का आना बन्द हो जाता है। इसके पत्तो को कालीमिर्च के साथ पीसकर पीने से मरोड़ी के दस्तो मे लाभ होता है। इसकी छाल को पानी के साथ पीने से गर्भ का रहना रुक जाता है।

यह औषधि गुर्दे के लिये हानिकारक है। इसके दर्प को नाश करने के लिये बबूल के गोंद का उपयोग करना चाहिये (ख० अ०)

गलैनी

नाम—

नेपाल—गलैनी। नागोरी—हुरम। तेलगू—पेदपेयगिलाकू। लेटिन—Leea Robasta (लीआ रोबेस्टा)।

वर्णन—

यह वनस्पति कोकन, नेपाल, पश्चिमीय घाट और खासिया पहाड़ियों में पैदा होती है। यह

एक झाड़ीदार पौधा है। इसकी शाखाएँ रुएँदार होती हैं। इसके फूल हरापन लिये सफेद होते हैं। इसका फल पकने पर काला हो जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका लेप वेदनानाशक औषधि के बतौर और इसका अन्तः प्रयोग अतिसार को नष्ट करने के लिये किया जाता है।

गंगामूला

नाम—

आसाम—गंगामूला। लेटिन--Saussurea Affinis (सोसूरिया एफिनेस)

वर्णन—

यह एक वार्षिक वनस्पति है। इसका तना अक्सर बहुत मोटा और फिसलना होता है। इसके पत्ते ऊपर के बाजू फिसलने और नीचे के बाजू सफेद और मुलायम रहते हैं। इसकी मञ्जरी लम्बी, गोल और मुलायम होती है। इसकी दाढ़ी बहुत नाजुक और सफेद होती है। यह बंगाल में सिलहट से लगाकर नैपाल की तलेटी तक बह्मा, चीन, जापान और आस्ट्रेलिया में होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

कार्टर के मतानुसार, आसाम में इसकी जड़ का रस और औषधियों के साथ में स्त्रियों की बीमारियों में दी जाती है।

गाजर

नाम—

संस्कृत—गाजर, ग्रंथिमूलि, गृंजन, नारंगा, पिंडमूलि, पिंडिका, शिखाकन्द, शिखामूलि, स्वादमूलि। हिन्दी—गाजर। मराठी—गाजर। गुजराती—गाजर। बंगाली—गागर, गाजर। फारसी—गाजर। उर्दू—गाजर। तेलगू—गाजर, गाजार, पचनूलंगो। तामील—गजरकिलंग। काश्मीर—मोरमुज, बोलमुज। लेटिन -Daucus Carota (डौकस केरोटा)।

वर्णन—

गाजर प्राय: सारे भारतवर्ष में शाक और मिठाई बनाने के काम में आती है। इसको प्रायः सब लोग जानते हैं इसलिये इसके विशेष वर्णन की जरूरत नहीं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—गाजरं मधुरं तीक्ष्णं, तिक्तोष्णं दीपनं लघु।
संग्राही रक्त पित्तार्शो, ग्रहणी कफ, वात जित्॥

भाव प्रकाश के मतानुसार गाजर मधुर, तीक्ष्ण, कड़वी, गरम, अग्निवर्धक, हलकी, मलरोधक तथा रक्त पित्त, बवासीर, संग्रहणी, कफ और वात को नाश करती है।

गाजरं मधुरं रुच्यं, किंचित् कटु कफापहम्।
आवमान् कृमि शूलघ्नं, दाह पित्त तृषापहम्॥

राज निघंटु के मतानुसार गाजर मीठी, रुचिकारक, किंचित चरपरी, अफरे को दूर करने वाली तथा कृमि, शूल, दाह, पित्त और तृषा को दूर करती है।

जंगली गाजर चरपरी गरम, कफ वात रोगनाशक, रुचिकारक, अग्निवर्धक, हृदय को हितकारी और कुष्ट, बवासीर, शूल, जलन, दमा और हिचकी में फायदा पहुँचाती है। इसके खाने से मुँह में बदबू का आना मिट जाता है।

इसके बीज स्नायु मण्डल को पुष्ट करते हैं। इसके पत्तों और बीजों का काढ़ा प्रसूति के समय पिलाने से गर्भाशय को उत्तेजना मिलती है।

पंजाब में इसके बीज कामोद्दीपक माने जाते हैं। इनको गर्भाशय की पीड़ा में भी देते हैं।

कोकण में गाजर और नमक का पुल्टिस बनाकर चर्म रोगों पर बांधा जाता है। इसके बीज कामोद्दीपक माने जाते हैं।

इसके फल पुराने अतिसार में मुफीद हैं। ये मूत्रल भी हैं। इसकी जड़ों का पुल्टिस घाव से पीव आना बन्द करता है।

यूरोप में गाजर का काढ़ा पीलिया रोग की एक प्रचलित दवा मानी जाती है। गाजर को कद्दूकस पर कस कर जलन और दुष्ट व्रण पर बांधते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले या दूसरे दर्जे में गरम और तर है। यह पौष्टिक, कामोत्तेजक, कफ निस्सारक, मूत्रल और अग्नि वर्द्धक होती है। खांसी और सीने के दर्द में यह फायदेमन्द है। पेशाब और दस्त को साफ लाती है। गुर्दे और मसाने की पथरी को तोड़ कर निकाल देती है। शरीर को मोटा करती है। जलोदर में लाभदायक है। इसका शीत निर्यास गरमी से हुई दिल की धड़कन (Palpitation of the Heart) में बहुत लाभ करता है।

गाजर को भून कर उसको छील कर एक रात भर खुली हवा में रख कर प्रातःकाल शक्कर और गुलाब के अर्क के साथ खाने से हृदय की धड़कन बन्द होकर हृदय को ताकत मिलती है। इसको शहद में तैयार किया हुआ मुरब्बा अत्यंत कामोत्तेजक है। यह जलोदर में भी फायदा पहुँचाता है।

जंगली गाजर बस्तानी गाजर से अधिक प्रभावशाली होती है। यह कामोद्दीपक, मूत्रल, मासिक धर्म को साफ करने वाली होती है। यह जलोदर में भी लाभ पहुँचाती है। इसके पत्तों और जड़ को पका कर लेप करने से शरीर में जमा हुआ खून बिखर जाता है। इसकी जड़ को पीस कर उसमें कपड़े को तर करके गर्भाशय में रखने से गर्भाशय साफ होता है।

इसके बीज कामोद्दीपक, मूत्रल, गर्भाशय को साफ़ करने वाले, सीने और कमर के दर्द में लाभदायक और गुर्दे तथा मसाने की पथरी को तोड़ने वाले होते हैं।

गाजर आमाशय और गले को नुकसान पहुंचाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिये राई, जीरा, गुड़ और अजीबन का प्रयोग करना चाहिये।। (ख० अ०)

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीज सुगन्धित, उत्तेजक और पेट के अफरे को दूर करने वाले होते हैं। गुर्दे और आतों की बीमारी में यह लाभ दायक है।

उपयोग—

आंतों के कीड़े—कची गाजर को खिलाने से आतों के कीड़े मरते हैं।

फोड़े—बिगड़े हुए फोड़ों पर गाजर का पुल्टिस बांधने से आंतो के कीड़े मरते हैं।

प्रसूति कष्ट—बच्चा पैदा होने के समय की अधिक पीड़ा मिटाने के लिये गाजर के बीज और पत्तों का काढ़ा पिलाया जाता है। इसके बीजों की धूनी देने से भी कष्टी हुई स्त्री को सुख से प्रसव हो जाता है।

पित्त शोथ—गाजर के पुल्टिस में नमक डालकर बांधने से पित्त की वह सूजन मिटती है जिस पर फुन्सिया हो जाती है।

आग से जलना—कच्ची गाजर को पीस कर अग्नि से जले हुए स्थान पर लेप करने से दाह मिटती है।

कमजोरी—गाजर का हलवा बना कर खिलाने से कमजोरी मिट कर पुरुषार्थ बढ़ता है।

तिल्ली—गाजर का अचार बनाकर खिलाने से तिल्ली कम हो जाती है।

आधा शीशी—गाजर के पत्तों पर घी चुपड़ कर गरम करके उनका रस निकाल कर २।३ बूँद नाक में और २।३ बूँद कान में टपकाने से कुछ छींकें आकर आधा शीशी बन्द हो जाती है।

गांजा व भांग

नाम—

संस्कृत—अजया, त्रैलोक्यविजया, जया, गाजा, गंजिका, हर्षिणि, ज्ञानवल्लिका, मातुली, मोहनी, शिवप्रिया, उन्मत्तिनि, धूर्तगली, कामाग्नि, वीरपत्री, शिवा। हिन्दी—गांजा, भांग, चरस। बंगाल—सिद्धी, भाग, गाजा। मराठी—भाग, गाजा। गुजराती—भांग गांजा। अरबी—किन्नाब, कनाब। फारसी—भाग, किन्नाब। तामील—भागी, गाजा। तेलगू—बंगियाकु, गंजचेट्टू। लेटिन—Gannabis Sativa (केनाबिस सेटिवा) C. Indica (केनाबिस इण्डिका)।

वर्णन—

यह एक प्रकार का क्षुप होता है। इसके पत्ते नीम के पत्तों के समान लम्बे और कंगूरेदार होते

हैं। पर उनसे कुछ छोटे होते हैं। इसके प्रत्येक डंठल पर ३, ५ अथवा ७ पत्ते होते हैं। इसके पौधे नर और मादा दो प्रकार के होते हैं। नर पौधों के पत्तों से भाग तैयार की जाती है और मादा जाति के पत्तों से गांजे की उत्पत्ति होती है। चरस भी इस पौधे से पायी जाने वाली एक प्रकार की राल है जो काले रंग की होती है। इस पौधे की छोटी २ कोमल डालियो पर ओस गिरने के दिनों में यह पदार्थ जम जाता है। इसको खुरचकर इकट्ठा किया जाता है। यह अत्यन्त नशीली होती है। इस पौधे के बीज वायविडंग के छोटे दानों की तरह होते हैं। इन बीजों में से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है। १०० तोले बीजों में से २५ से ३४ तोले तक तैल निकलता है। इसका रंग पहले भूरा और हवा लगने पर हरा हो जाता है। भंग का अर्क खींचने से उसमें से भी एक प्रकार का तेल निकलता है जो अर्क पर तैरता रहता है। उसमें भी भंग के समान ही सुगन्ध आती है। उसका रग कहरवे की तरह होता है।

उत्पत्ति और प्रचार स्थान—

भंग की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्राचीन ग्रन्थों में निम्न लिखित श्लोक पाया जाता है।

जाता मन्दर मन्थनाज्जलनिधौ, पीयूष रूपा पुरा।
त्रैलोक्ये विजय प्रदेति विजया, श्री देवराज प्रिया॥
लोकानां हित काम्यया क्षितितले, प्राप्ता नरैः कामदा।
सर्वातङ्क विनाश हर्ष जननी, यैसेविता सर्वदा॥

अर्थात्—पहले समय में जब मन्दराचल पर्वत से समुद्र मथा गया था, तब उस समय अमृत रूप से भंग की उत्पत्ति हुई। त्रिलोक की विजय देने वाली होने से इसका नाम विजया हुआ, यह देवराज इन्द्र को प्यारी है। हित की अभिलाषा करने से पृथ्वी पर मनुष्यों को प्राप्त होती है। इसको जल के साथ मिलाकर पीने से काम अत्यन्त प्रबल होता है, सर्व प्रकार के रोग शोक दूर होते हैं और अतुल आनन्द प्राप्त होता है।

इससे पता लगता है कि भांग बहुत प्राचीन काल से भारतीय चिकित्सा शास्त्र की जानकारी में रही है। एशिया और आफ्रिका के देशों में भी बहुत प्राचीन समय से इसको नशे और औषधि के उपयोग में लेते आ रहे हैं। चीनी लोग भी इससे ईसा की छठी शताब्दी से परिचित हैं। १९ वीं शताब्दी के आरंभ में पाश्चात्य चिकित्सक लोगों में भी इसके गुणों की जानकारी पैदा हुई और उन्होंने इसके वेदना शून्यता पैदा करने वाले तथा निद्रा लाने वाले गुणों की प्रशंसा की। जिसके फल स्वरूप इंग्लैण्ड और अमेरिका के फरमाकोपिया में यह औषधि सम्मत मानी गई। वैसे यह वनस्पति संसार के कई भागों में पाई जाती है लेकिन भारतवर्ष में इसका जितना उपयोग लिया जाता है उतना संसार के किसी दूसरे देश में नहीं लिया जाता। औषधि उपयोग के अतिरिक्त गर्मी की मौसम में और शादी इत्यादिक मांगलिक कार्यों में भांग को घोट कर पीने का रिवाज भी यहा पर बहुत है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से गाजा पाचक, प्यास लगाने वाला, बलकारक, कामो-

दीपक, चित्त को चंचल करने वाला, निद्राजनक, गर्भ को गिराने वाला, वेदना नाशक, आक्षेप को दूर करने वाला और नशा पैदा करने वाला है।

भाग कफ नाशक, अग्नि को दीपन करने वाली, रुचि वर्द्धक, मल को रोकने वाली, पाचक, हलकी, कामोद्दीपक, निद्राजनक, नशीली और कफ तथा वात को जीतने वाली है।

एक दूसरे ग्रथकार के मतानुसार भांग तीक्ष्ण, उष्ण, मोहकारक, कुष्ठ नाशक, बल वर्द्धक, मेधा जनक, अग्निकारक और कफनाशक तथा रसायन है।

आयुर्वेद के अन्दर भग और भग के बीजों के अतिरिक्त इसके और किसी अंग का व्यवहार नहीं देखा जाता। कहीं २ एकाध प्रयोग में गाजे का उपयोग देखने को मिलता है। भाग विशेष कर स्तम्भन करने वाली औषधियों में तथा उदर रोग सम्बन्धी औषधियों में और बवासीर की औषधियों में उपयोग में ली जाती है।

डाक्टर वामन गणेश देसाई अपने औषधि सग्रह नामक ग्रन्थ में गाजे का वर्णन करते हुए लिखते हैं:—

"गाजा उत्तेजक, वेदनानाशक, शातिकारक, क्षुधावर्द्धक, पित्तद्रावी, मूत्रजनक, आह्लाद कारक, कफ नाशक, संकोच विकास प्रतिबन्धक, गर्भाशय को सकुचित करने वाला, बलकारक, वाजीकरण और त्वचा में शून्यता पैदा करने वाला होता है। इसकी भरपूर मात्रा लेने से ज्ञान ग्राहक शक्ति कम होती है, नाड़ी जल्दी २ चलती है और पीने वाला गहरी नींद में सो जाता है, उठने पर उसे बहुत भूख लगती है। अफीम की निद्रा से जगने पर जैसा आलस्य पैदा होता है वैसा इससे नहीं होता। अफीम की तरह यह कब्जियत भी पैदा नहीं करता।"

"गाजे का वेदनानाशक धर्म अफीम के समान ही है। इससे पेशाब का प्रमाण बढ़ता है। इसका वाजीकरण और कामोत्तेजक धर्म भी स्पष्ट मालूम होता है। इसके सेवन से भूख बहुत लगती है, पित्त का सचालन अधिक होता है, पाचन क्रिया दुरुस्त रहती है, आतों में कफ की कमी हो जाती है जिससे दस्त बंधा हुआ लगता है। मगर कब्जियत नहीं होती। इसके सेवन से त्वचा की ज्ञान ग्राहक शक्ति इतनी कम हो जाती है कि उसमें साधारण छोटी चीर फाड़ और दांतों का गिराना बिना तकलीफ के किया जा सकता है।"

नोटः—

एक कवि ने भंग के गुणों का वर्णन अपनी कविता में इस प्रकार किया है:—

मिर्च, मसाला, सौंप, कासनी मिलाय भग पिये ते अनेक रंग अग को उबारती।
जारती जलोदर, कठोदर, भगदर को सन्निपात, बवासीर बावन विदारती॥
सुकवि शिवरोम दाद, खाज को खराब करे खयी छींक छजन नासूर को निकारती।
पीनस प्रमेह बीस, बावन तरह की पंर कमर को दरद कर डारती॥ १॥

"गाजा गर्भाशय को उत्तेजन देकर उसकी सकोचन क्रिया बढ़ाता है। सावे की तरह यह भी गर्भाशय की शक्ति को बढ़ाता है मगर वह शक्ति अस्थाई रहती है"।

"शुद्ध गाजा अथवा भांग आमाशय की पीड़ा, अजीर्ण, सग्रहणी और आमातिसार में लाभ पहुँचाता है। भाग से इन रोगों की पीड़ा कम होती है; वहता हुआ रक्त वन्द होता है, भूख बढ़ती है, पित्त का सचालन ठीक होता है, पाचन क्रिया ठीक होती है। हैजे में भी यह औषधि उत्तम साबित हुई है। इससे वमन रुकती है, दस्त बन्द होते हैं, नाड़ी सुधरती है, शरीर में गर्मी और उत्तेजना पैदा होती है। मगर इस औषधि को रोग के प्रारभ से ही देना चाहिये। रेचक द्रव्य अर्थात् जुलाब की चीजों के साथ भाग को मिलाकर देने से पेट में काट और मरोड़ी नहीं होती है।"

"सूजे हुए और दुखदायक खूनी ववासीर में गाजे को खिलाने से और हलदी, प्याज और तिल के साथ पीस कर लेप करने से तथा भाग की धूनी देने से अच्छा लाभ होता है।"

"सुजाक में गांजे को देने से दो प्रकार के लाभ होते हैं। एक तो पेशाव साफ होकर घाव घुल जाता है और दूसरे पीड़ा की कमी हो जाती है।"

"गर्भाशय के सकोचन के लिये भी गाजा एक उत्तम औषधि है। संकोचन की वजह से होने वाली वेदना भी इससे कम होती है। इसलिये गर्भाशय की कमजोरी की वजह से जिन स्त्रियों को प्रसूति के समय मे बहुत समय लगता है उनको यह औषधि देने से गर्भाशय को ताकत मिलकर पीड़ा बढ़ कर फौरन प्रसव हो जाता है। गर्भपात के समय भी यह वस्तु अच्छा काम करती है। मासिक धर्म की अधिकता और कष्ट प्रद मासिक धर्म में भी यह गुणकारी है।"

"गांजा एक प्रभावशाली वाजीकरण वस्तु है। इससे पुरुषों की कामेन्द्रिय में बहुत स्फुर्ति आती है। यह रक्ताभिसरण क्रिया को उत्तेजन देकर काम वासना में आह्लाद पूर्ण उत्तेजना पैदा करता है जिससे कामेंद्रिय में जोर से अधिक रक्त का प्रवाह होता है। इसी प्रकार ज्ञान ग्राहक शक्ति की कमी हो जाने से अधिक समय तक सम्भोग करने पर भी शुक्रपात नहीं होता है। इससे इसकी गणना स्तम्भक औषधियों में भी प्रथम श्रेणी में की जाती है।"

"मलेरिया ज्वर और जीर्ण ज्वर में भी गांजा दूसरी प्रभावशाली औषधियों के साथ देने से अच्छा लाभ पहुँचाता है। इससे रोगी की भूख बढ़ती है, ताप के जोर की कमी होती है, ज्वर उतरने पर थकावट अनुभव नहीं होती और रक्ताभिसरण क्रिया सुधरती है। बारम्बार सरदी होने की आदत जिन लोगों को पड़ जाती है उनके लिये भी गांजा उपयोगी वस्तु है।"

"सूखी खासी और सूखे दम में गाजा अच्छा लाभ पहुँचाता है। इन रोगों में इसका धूम्रपान करने से अथवा पेट में खाने से अच्छा लाभ होता है।"

"त्वचा अथवा चर्म रोगो में जैसे:—खाज, खुजली, इत्यादि मे गांजे के लेप से लाभ होता है। कान के दर्द में भी इसका रस डालने से फायदा होता है।"

"वेदना को रोकने और निद्रा लाने की शक्ति गांजे में अफीम की अपेक्षा कम है लेकिन इसके

अन्तिम परिणाम अफीम की तरह हानिकारक नहीं होते। जिन स्थानों पर अफीम का प्रयोग नहीं किया जासकता, उन स्थानो पर गाजे का प्रयोग किया जा सकता है।"

"मेदे की खराबी से उत्पन्न हुए रोगों मे गाजे का अच्छा उपयोग होता है। निद्रानाश, खेद प्रवृत्ति इत्यादि रोगों में यह अच्छा काम करता है। यह वेदना को कम कर देता है, मगर रोग की जड़ को नष्ट नहीं करता। रोग की जड़ को नष्ट करने के लिये इसके साथ दूसरी रोग नाशक औषधिया देना चाहिए।"

"मज्जा तन्तु की सूजन में गाजे को पारे के साथ देना चाहिये। मज्जा तन्तु की वेदना में इस को सखिया और लोह के साथ देना चाहिये। आधाशीशी और कपाल शूल में इसको सखिया के साथ देने से चमत्कारिक लाभ होता है। धनुर्वात में भी यह एक उत्तम औषधि साबित हो चुकी है।"

भांग और धनुस्तम्भ रोग—

आधुनिक नवीन खोजों में भंग के अन्दर एक नवीन और अद्भुत गुण का पता लगा है। धनुस्तम्भ रोग की यह एक उत्तम औषधि साबित हुई है। डॉक्टर कॉस्टगिर ने भंग का धुआँ पिलाकर धनुस्तम्भ के कई रोगियों को आराम किया था। ७ रत्ती भंग को थोड़ी सी तमाखू के साथ हुक्के में भरकर रोगी को पिलाया जिससे आक्षेप की गति कम होने लगी और कई बार इसका धुआ पिलाने से रोगी आराम हो गये।

बम्बई के डाक्टर जी० सी० ब्रुक्स ने परीक्षा करके देखा है कि धनुस्तम्भ रोग में भग का धुआ पीने से क्रमशः आक्षेप थोड़ी देर तक ठहरता है। धीरे २ आक्षेप बहुत समय के बाद हुआ करता है। आक्षेप का तेज भी धीरे २ कम हो जाता है। आक्षेप से ग्रसित रोगी को अधिक कमजोरी नहीं आती और बारबार व्यवहार करने से आक्षेप एक दम बन्द हो जाता है।

डॉक्टर ओशागनसी ने भी धनुस्तम्भ और हैजे में भांग का प्रयोग करके इसको इन रोगों की श्रेष्ठ औषधि माना है।

डायमॉक ने भी धनुस्तम्भ के बहुत से रोगियों को केवल भ ग से आराम किया और इस बात के निर्णय पर पहुँचे कि धनुस्तम्भ के लिये यह उत्तम औषधि है। विशूचिका रोग में यह अफीम के समान काम करती है।

रासायनिक विश्लेषण—

सबसे पहले इस वस्तु के रासायनिक विश्लेषण पर सन १८६६ में वुडस्पिल्हे और ईस्टर फील्ड ने अध्ययन किया, जिसके फल स्वरूप उन्होने इस वनस्पति में १'५ प्रतिशत टरपेन (Terpene), १'७५ प्रतिशत सेस्क्वी टरपेन (Sesquiterpene), थोड़ी मात्रा में पेरेफिन हाइड्रो कारबन (Paraffin Hydrocarbon) और ३३ प्रतिशत एक विषैला लाल तेल या राल का प्रथक्करण किया। यह लाल तेल पानी में नहीं घुलता है। मगर अलकोहल और ईथर में सरलता से घुल सकता है। इसमें Monoacetyl और Monobenzoyl नामक तत्व पाये जाते है जिससे Hydroxyl की उप-

स्थिति इसमें सिद्ध होती है। इसीसे इस का नाम केनेबेनाल रक्खा गया है। यही इसमें पाया जाने वाला मुख्य तत्व है। सन् १८९७ में मार्शल ने अपने खुद के ऊपर और दूसरों पर शरीर क्रिया विज्ञान की दृष्टि से इसका अध्ययन किया। सन् १८९९ में उन्होंने बतलाया कि इसमें दो तत्व प्रधान रूप से पाये जाते हैं, जिनमें से मुख्य तो केनेबेनाल है और एक दूसरा है जो वजन में हलका होता है। सन् १९३१ में पेहन ने इसके अनुसन्धान किये और उन्होंने इसमें से केनेबेनाल और क्रूट केनेबेनाल नामक दो तत्व प्राप्त किये जिनमें से क्रूट केनेबेनाल स्थायी तत्व है।

भारतवर्ष के हॅम्पड्रग्ज कमीशन ने सन् १८९३-९४ में यह निर्णय किया कि इस वनस्पति का साधारण उपयोग कोई विशेष शारीरिक हानि नहीं पहुँचाता। यह कमीशन इस निर्णय पर भी पहुँच चुका है कि इसके साधारण उपयोग से मस्तिष्क पर भी कोई खराब असर नहीं होता। यह विश्वास कि इसके उपयोग से आदमी पागल हो जाता है कमीशन को न्याय रागदा नहीं मालूम हुआ। कमीशन की यह भी धारणा है कि इसके साधारण उपयोग से चरित्र का पतन भी नहीं होता। इस प्रकार का निर्णय देने के लिये उसके पास कोई उचित प्रमाण नहीं है।

हा, इसके अधिक उपयोग से मनुष्य की शारीरिक और मानसिक हानि होती है उसमें चरित्र-हीनता और कमजोरी आती जाती है, उसका आत्मसम्मान नष्ट होता जाता है और उसका नैतिक पतन हो जाता है। वह इसका आदी हो जाता है और इसका व्यसन उसे पड़ जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह गरम और खुश्क है। यह नशा पैदा करता है, दिमाग और तमाम शरीर में खुश्की लाता है। गांजे को चिलम में रखकर धुआं खींचने से जल्दी नशा आ जाता है। इस के अरंडी के तेल मे पीसकर मूत्रेंद्रिय पर लेप करने से मूत्रेंद्रिय की ताकत बढ़ती है और उसका टेढ़ापन दूर होता है। इसका सत खासी के जोर को रोकने के लिये बहुत उत्तम वस्तु है। धनुस्तम्भ (Tetanus) की बीमारी में और पागल कुत्ते के जहर में भी यह लाभदायक है। इसके प्रयोग से नींद आती है और दर्द दूर हो जाता है। दमे की बीमारी में भी यह दवा फायदा करती है।

यह पौष्टिक, कामोद्दीपक, अतिसार निवारक और नशा लाने वाली है। इसका तेल कान के दर्द के लिये मुफीद है। यह जलाबुंद, प्रदाह और बवासीर में फायदा पहुँचाता है। इसके बीज पेट के आफरे को दूर करनेवाले, सकोचक और कामोद्दीपक होते हैं।

हानि—गाजा और भग यह दोनों नशीली वस्तुएं हैं। थोड़ी मात्रा में जहा ये कई प्रकार के फायदे दिखलाती है वहा अधिक मात्रा में अनेकों भयंकर नुकसान भी करती हैं। खास करके हृदय पर इनका असर बहुत खराब होता है। इसलिये जिनका हृदय कमजोर हो ऐसे लोगों को इनके सेवन से बचना चाहिये। इसी प्रकार अधिक मात्रा में सेवन करने से यह मस्तिष्क पर भी खराब असर डालती है। भाग को थोड़ी मात्रा में सेवन करने से मस्तिष्क को जरूर उत्तेजना मिलती है और मनुष्य की विचार शक्ति पैनी हो जाती है मगर अधिक मात्रा मे सेवन करने से इसका विचार शक्ति पर

अवसादक असर पड़ने लगता है। इसी प्रकार इसको अधिक मात्रा में सेवन करने से वमन, खुश्की, घबराहट, चक्कर आना इत्यादि उपद्रव भी पैदा हो जाते हैं। इसलिये इसको अधिक मात्रा में कभी सेवन नहीं करना चाहिये।

कामोद्दीपन और स्तम्भन के लिये भी इसको अधिक मात्रा में सेवन करना बहुत बड़ी भूल है। यह जरूर है कि इसके सेवन से कुछ दिनों तक मनुष्य को काम वासना के सम्बन्ध में बहुत आल्हाद, उत्तेजन और स्तम्भन का अनुभव होता है। मगर इसका अन्तिम परिणाम बुरा होता है। अस्वाभाविक रूप से स्तम्भन और उत्तेजन होने से यह मनुष्य के वीर्य्य को सुखा देती है जिससे मनुष्य की शक्तियां समय से पहिले ही क्षीण हो जाती हैं और समय से पहिले ही उनकी काम शक्ति भी जर्जर हो जाती है।

लेखक, वकील, जौहरी इत्यादि ऐसे लोग जिनको दिन रात मस्तिष्क और विचार शक्ति से काम लेना पड़ता है वे यदि एक दो रत्ती की मात्रा में भंग को बादाम इत्यादि उसको दर्प नाशक औषधियों के साथ लेवें तो उनकी विचार शक्ति को उत्तेजना मिलती है। मगर अधिक मात्रा में यह सभी के लिये हानिकारक है। सबसे बड़ा नुकसान इससे यह होता है कि मनुष्य को इसका व्यसन हो जाता है और कुछ दिनों में इसके बिना उसको चैन नहीं पड़ता।

दर्प नाशक—इसके विषैले लक्षणों के प्रगट होने पर इसके दर्प को नाश करने के लिये मलाई, दही, नारंगी का रस, अनार का रस, अमरूद (जामफल) या अमरूद के पत्तों का रस देते हैं जिन से शान्ति मिलती है।

उपयोग—

बाइठे—भंग के पत्तों को १। माशे की मात्रा मे खाने से शरीर के बायठे और पीड़ा मिटती है और मूत्र वृद्धि होती है।

आमातिसार—

(१)—सौंफ के अर्क के साथ भंग की फक्की देने से तीव्र आमातिसार मिटता है।

(२)—सेकी हुई भंग को शहद के साथ चटाने से अतिसार और आमातिसार मिटता है।

नेत्रपीड़ा—इसके (भंग के) ताजा पत्तों की लुगदी को गरम करके आंखों पर बांधने से नेत्र पीड़ा मिटती है।

बवासीर—इसके पत्तों को दूध में पकाकर अर्श पर बांधने से बवासीर की पीड़ा मिटती है।

गठिया—इसके बीजों के तेल की मालिश करने से गठिया में लाभ होता है।

उदर शूल—भंग और कालीमिरच के चूर्ण को गुड़ में गोली बनाकर देने से पेट की शूल मिटती है।

निद्रानाश—भंग के सेवन से निद्रानाश मिटकर गहरी नींद आती है। जिन रोगों में अफीम से नींद नहीं आती है,उनमें भंग का प्रयोग बहुत अच्छा है। क्योंकि इसके पीने से कब्जियत और मस्तक पीड़ा नहीं होती है

सिर दर्द—कफ की मस्तक पीड़ा को मिटाने के लिये दो रत्ती की मात्रा में भंग का सेवन करना चाहिये।

खांसी—इसके (भंग के) प्रयोग से कुत्ता खांसी, श्वास, मूत्राघात और कष्ट प्रद मासिक धर्म में बहुत लाभ होता है।

भूख की कमी—काली मिर्च और भंग का चूर्ण शहद के साथ चटाने से भूख बढ़ती है।

वीर्य की कमजोरी—भंग का दूसरी पौष्टिक औषधियों के साथ पाक बनाकर खाने से पुरुषार्थ बढ़ता है और कामोद्दीपन होता है।

श्वास—श्वास और धनुस्तम्भ को मिटाने के लिये घी मे सेकी हुई १ रत्ती भांग को काली-मिरच और मिश्री में मिलाकर देना चाहिये।

आवेश रोग—स्त्रियों के आवेश रोग में भंग का आधी रत्ती सूखासार हींग के साथ देने से बहुत लाभ होता है। अगर सूखासार न मिले तो दो रत्ती भंग ही हींग के साथ देना चाहिये।

अण्डकोष की सूजन—इसके गीले पत्तों का पुल्टिस अण्डकोष पर बांधने से इसके काढ़े का बफारा देने से अण्डकोष की सूजन मिटती है।

शीतज्वर—एक माशे भर भंग को दो माशे गुड़ में मिलाकर उसकी ४ गोलिया बनाकर जाड़ा (ठण्ड) चढ़ने से पहले दो दो घण्टे के अन्तर से चारो गोलियां दे देना चाहिये।

मूत्र कृच्छ्र—भंग और खीरा ककड़ी के मगज ठण्डाई की तरह पीस कर घोट छान कर पीने से मूत्र कृच्छ्र मिटता है।

कान की पीड़ा—भंग के स्वरस को कान में डालने से कान के कीड़े मरते हैं और कान की पीड़ा मिटती है।

इसकी मात्रा औषधि के रूप में २ से लेकर ४ रत्ती तक की है। पीने वाले इसको तीन माशे से लेकर १ तोले तक और इससे भी अधिक मात्रा में पीते हैं। मगर वह बहुत हानिकारक है और उससे जहरीला असर पैदा होता है।

बनावटें—

मदनानन्द मोदक—सोंठ, मिर्च, पीपर, हरड़, बहेड़ा, आमला; धनिया, कचूर, कूट, काकड़ा सिंगी, कायफल, सेंधानोन, मेथी, नागकेशर, सफेदजीरा, स्याहजीरा, तालीसपत्र ये १७ सत्रह चीजें दो २ तोला बीजों समेत धुली हुई भंग ३४ तोला, मिश्री ६८ तोला, घी ४० तोला, शहद २० तोला।

सोंठ से तालीसपत्र तक की दवाओं को कूट पीसकर छान लो और जरा भून लो। भाग को खूब धोकर घी में भून लो, जलने न पावे। फिर भंग और ऊपर के चूर्ण को खूब मिलालो, इसके बाद घी मिश्री और शहद डालकर खूब सानो। जब एक दिल हो जाय तब सवा २ तोले के लड्डू बनालो। चीनी या कांच के साफ बरतन में इलायची, तेजपात और कपूर को अन्दाज से पीसकर थोड़ा सा नीचे बिखेर दो और उस पर लड्डू जमाकर ऊपर से फिर इस चूर्ण को छिड़क दो।

चिकित्सा चन्द्रोदय के लेखक बाबू हरिदास लिखते हैं कि इनमें से सवेरे शाम या एक ही समय एक लड्डू खाकर दूध पीने से बुढा भी जवान हो जाता है। इतना बल पुरुषार्थ बढ़ता है कि लिख नहीं सकते।

उपरोक्त पाक को बाबू हरिदासजी अपना अनुभूत योग बतलाते हैं। इन लड्डुओं को वे आमवात, संग्रहणी और वात कफ के विकारों में भी लाभदायक मानते हैं।

महापौष्टिक योग—कस्तूरी ४ माशे, अम्बर ४ माशे, मकरध्वज ४ माशे, सोने के वर्क ८ माशे, चादी के वर्क १ तोला, मोती की भस्म १ तोला, बंग भस्म १ तोला, लोहा भस्म १ तोला, मूँगा भस्म १ तोला, जायफल १ तोला, दालचीनी १ तोला, अकरकरा १ तोला, केशर १ तोला, भीमसेनी कपूर १ तोला, कूट १ तोला, तेजपात १ तोला, नागकेशर १ तोला, जावित्री १ तोला सोंठ १ तोला; वंश लोचन तोला, छोटी इलायची १ तोला, गिलोय का सत १ तोला, सफेद मूसली ५ तोला, शुद्ध भाग का घी २ तोला, देशी खाड २॥ पाव।

पहले सोने के वर्क और चादी के वर्क, कस्तूरी, अम्बर और मकरध्वज इन सब को नागर बेल के पान के रस में अलग २ खरल कर लेना चाहिये। दूसरी तरफ दूसरी औषधियों को पीस कर के कपड़ छन करके रख लेना चाहिये। फिर शक्कर की चाशनी अवलेह के समान बनाकर इन सब चीजों को और भाग के घी को अच्छी तरह से मिलाकर घी के चिकने बर्तन में या अमृतवान में भर देना चाहिये।

इसमें से छ २ माशे अवलेह सवेरे शाम गाय के ताजा दूध के साथ सेवन करने से बल बढ़ता है, कामोद्दीपन होता है। वीर्य की वृद्धि होती है। खासी, श्वास, क्षय, प्रमेह, नपुंसकता आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। शरीर में अपूर्व लावण्य, कांति और स्फूर्ति पैदा होती है। जो भी खाया जाता है सहज में पच जाता है। भूख खूब लगती है। मगर यह बहुत कीमती है। इसलिये केवल अमीर ही इसका फायदा उठा सकते हैं।

गांपड़ी

नाम—

यूनानी—गागड़ी।

वर्णन—

इसका पौधा बहु शाखी और १ गज का लम्बा होता है। इसकी शाखाएं दियासलाई की काड़ी के समान पतली और फल मक्का के दाने के बराबर मोटा और गोल होता है। इसका रंग लाल और स्वाद मीठा तथा चिकना होता है। हर एक फल में तीन बीज निकलते हैं। ये बीज अमरूद के बीजों के बराबर होते हैं। इसकी जड़ चिकनी और छुआबदार होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ का लुआब धातु पौष्टिक और काम शक्ति को बढ़ाने वाला होता है। (ख० अ०)

गागालस

नाम—

यूनानी– गागालस।

वर्णन—

यह एक रोइदगी होती है। इसके पत्ते साफ और नरम होते हैं। इनको हाथ पर मलने से बदबू पैदा होती है। ये स्वाद में कड़वे और जलन पैदा करने वाले होते हैं। इसका फूल छोटा और नीला होता है। इसका आकार छत्री के आकार की तरह होता है। इसका फल मकोय के फल की तरह होता है। यह पकने पर काला पड़ जाता है। इसमें रस भरा हुआ रहता है। इसकी जड़ सफेद और खोकली होती है। यह गरमी की मौसम में वीरान जगह और बागों के आसपास पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क है। इसके लेप से सूजन बिखर जाती है। कान के पीछे की सूजन में इसके पत्तों को सिरके में पीसकर लेप करने से लाभ होता है। इसकी शाखा को कच्ची हालत में खाने से पुरानी खासी, हर तरह का दमा, और सीने का दर्द दूर होता है। इन रोगों में यह वनस्पति बहुत अच्छा काम करती है। पथरी भी इसके सेवन से टूट कर निकल जाती है। मासिक धर्म और पेशाब को भी यह औषधि नियमित करती है। कण्ठमाला, खुनजी और दूसरे फोड़ों पर भी इसका लेप अच्छा लाभ पहुँचाता है। अण्ड कोष की सूजन पर इसकी जड़ को सिरके में पीसकर कुछ दिनों तक लगातार लगाने से आराम हो जाता है। इसकी मात्रा १॥ तोले तक की है।

गांगली मेथी

नाम—

हिन्दी—गांगली मेथी। मराठी—जालमेथी। गुजराती—रातीमेथी, वेकरियो। बम्बई—वेकारिया। तेलगू—वरागरामु। शोलापुर—बरबेर। लेटिन—Indigofera Trifoliate (इन्डिगोफेरा ट्रायफोलिएटा)।

वर्णन—

यह वनस्पति नील की जाति की है। यह सारे भारतवर्ष, सीलोन, जावा, चीन, फिलीपाइन और उत्तरी आस्ट्रेलिया में होती है। यह झाड़ीदार पौधा है। इसके कई शाखाएं होती हैं। इसके पत्ते

३० से लगाकर ६० सें० मी० तक लम्बे होते हैं। ये झिल्लीदार रहते हैं। इसके फूल छोटे रहते हैं। इसकी पुष्प कटोरी बाहर से रुंएदार होती है। इसकी फली लम्बी और सीधी रहती है। इसके ऊपर सफेद रुआं फैला हुआ रहता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके बीज अन्य चिकनी औषधियों के साथ में पौष्टिक वस्तुओं की तौर पर देने के काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीज धातु परिवर्तक, संकोचक, पौष्टिक और कामोद्दीपक हैं। इन्हें आमवात में उपयोग में लेते हैं। ये श्वेतप्रदर में में भी लाभदायी हैं।

गागजेमूल

नाम—

काश्मीर—गागजेमूल। फारसी—गूगल जंगली। लेटिन—Geum Alatum. (ग्यूम एलेटम)।

वर्णन—

यह वनस्पति हिमालय में काश्मीर से लेकर सिक्किम तक ६००० फीट से लेकर १२००० फीट तक की ऊंचाई पर होती है। इसके पत्ते १० से लेकर ३० सेंटीमीटर तक लम्बे रहते हैं। ये कटी हुई, किनारों के होते हैं। इसके फूल २.५ से ३.५ सेंटीमीटर के आकार के होते हैं। इसकी पखड़ियां गोल चमकीली और पीली होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

हानिग्बरगर के मतानुसार इस वनस्पति की जड़ काश्मीर में आफिसनल मानी गई है। यह औषधियों में बहुत उपयोगी है। इसकी जड़ें संकोचक और कृमि नाशक होती हैं। ये मलेरिया में शीत निर्यास के रूप में दी जाती हैं। यह सारी वनस्पति संकोचक, पौष्टिक, ज्वर निवारक और अग्नि वर्धक है। कमजोरी में लगातार इसका उपयोग करने से शक्ति बढ़ती है। यह अतिसार, गले की तकलीफ और श्वेत प्रदर में लाभदायक है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह संकोचक और अतिसार में लाभदायक है।

गाफ़स

नाम—

यूनानी—गाफस, बगुजन, गुलखला, हशीशत, अलगाफस, सिजात इत्यादि।

वर्णन—

यह एक खारदार पौधा है। इसके पत्ते भंग के पत्तों की तरह होते हैं। इसका फूल गुल

नीलोफर की तरह नीला और लम्बा होता है। फारस के शीराज़ के पहाड़ों में पैदा होने वाली गाफस बहुत अच्छी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। वात, पित्त और कफ तीनों दोषों को साफ करती है। शरीर में सञ्चित बेकार गदगी को निकाल देती है। तिल्ली और जिगर की कार्यवाही को नियमित करती है और इनकी सूजन को भी मिटाती है। पेशाब और मासिक धर्म को जारी करती है। जलोदर में लाभदायक है। इसको सूअर की चर्बी में मिलाकर लेप करने से ऐसे फोडे भर जाते है जिनका कि आराम होना मुश्किल होता है। इसके बीजों को शराब के साथ खाने से आंतों के घाव मिट जाते हैं।

इस वनस्पति का सुखाया हुआ रस (उसारा) उपरोक्त सर्व रोग में, इससे अधिक प्रभावशाली है।

इस वनस्पति को अधिक मात्रा में सेवन करने से तिल्ली और अडकोष को नुकसान पहुँचता है। इसके दर्प को नाश करने के लिये अनीसून मुफीद है। इसकी मात्रा काढ़े में १० माशे से २ तोले तक और चूर्ण के रूप में ४ माशे से १० माशे तक दी जाती है। (ख० अ०)

गाब

नाम—

हिन्दी—गाब, काला तिंदु, तेंदू। संस्कृत—अनिलश, कालस्कंध, केंदु, स्फुर्जन, तेंदुक तिंदु क, तिंदुकी। बगाल—गाब, मकुरकेंदि, तेंदू। बम्बई—गाब, कुसी, तेंदु, तिमोरी। गुजराती—तेमुरनी, तिम्बूरी। तामील—कटटो, तुम्बि। तेलगू—गाबू, इति तुम्बिका। अरबी और फारसी—आबनुसे हिन्द। लेटिन—Diospyros Peregrina (डिओसपायरस पेरेग्रिना)।

वर्णन—

यह तिंदु ही की जाति का एक वृक्ष है। इसका आकार प्रकार सब तिंदू ही की भांति रहता हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसका कच्चा फल, कसैला, कटु, स्निग्ध, दुश्पच्य और आंतों को सिकोड़ने वाला होता है। यह व्रण और वात में लाभदायी है। इसका पका फल मीठा, स्निग्ध, पित्तोपशामक और रक्त रोग नाशक है। यह पथरी और मूत्र मार्ग के विकारों में फायदा पहुँचाता है। इसके फूल और फल बच्चों की कुक्कुर खासी (हूपिंग कफ) में दिये जाते हैं। इसका छिलका पेचिश में लाभदायी है। इसकी लकड़ी पित्त विकारो को नाश करने वाली होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके फूल कामोद्दीपक हैं। ये कटिवात में लाभदायी है। पित्त में और रक्त सम्बन्धी विकारों में ये फायदा पहुँचाते हैं। इसका फल मीठा, कामोद्दीपक और पौष्टिक होता है।

हानिग वगैर के मतानुसार इसके फल और छिलटे में संकोचक गुण रहते हैं। इसके कच्चे फल का रस ताजा घाव पर लाभदायक होता है। यह फल टेनिन से पूर्ण रहता है। यह एक घरेलू संकोचक दवा है जो कि गरीब से गरीब आदमियों को भी प्राप्त हो सकती है। इसके बीजों से निकाला हुआ तेल पेचिश और अतिसार में देशी दवा के अन्दर काम में लिया जाता है। इससे सफलता भी मिलती है। इसका छिलका पार्यायिक ज्वरों में उपयोग में लिया जाता है।

इसे पेचिश और अतिसार में सफलता पूर्वक काम में लेते हैं। इसके फल का शीत निर्यास गले के और मुँह के छालों (मुखक्षत) को दूर करने के काम में लिया जाता है।

इसके बीजे अतिसार रोग में काम लिये जाते हैं।

चरक के मतानुसार इसके छिलटे और पत्तों का रस सिरस की जड़ के रस के साथ में सर्प दंश के उपयोग में लिया जाता है। सर्प विष में इसकी कुछ बूंदें अञ्जन के तौर पर आंखो में डाल दी जाती हैं और कुछ नाक में डाली जाती हैं।

महस्कर और केस के मतानुसार इसका छिलटा और इसके पत्ते आंजने से और सूंघने से दोनों ही तरह से सर्पदंश में फायदा नहीं पहुँचाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह सकोचक, अतिसार व सर्पदंश में उपयोगी है।

गारबीज

नाम—

हिन्दी—गारबीज, चियन। बम्बई—गारबीज, गरंमि, गरदुल, पीला पापड़ा। मराठी—आठोड़ी, गारंबी, गरहुल। बंगाल—गिलगाच्छ, गीला पागरा। तामील—इरिक्कि, चिल्लू। तेलगू—गिलाठिगी। कोकण—गारायेबालि। लेटिन—Entata Scandens (एण्टेटा स्केंडेंस)।

वर्णन—

यह एक बड़ी जाति की बेल होती है जो दूसरे वृक्षों पर चढ़ती है। इसका तना मोटा और शाखाएं फिसलनी होती हैं। इसके पत्ते लम्ब गोल, कटे हुए और गहरे हरे रंग के होते हैं। इसके बीज उदई रंग के, २ इंच लम्बे, गोल और चपटे होते हैं। इन बीजों को गुजराती में पीला पापड़ा और बंगाली में गिल कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका पिसा हुआ गूदा अन्य औषधियों के साथ में प्रसूति के पश्चात् स्त्रियों को दिया जाता है। इससे शरीर की शूल और सरदी दूर होती है। इसके बीज वमन कारक, कटिशूल नाशक और ग्रंथियों की सूजन में उपयोगी होते हैं। पहाड़ी लोग इसके बीजों के गूदा को ज्वरनाशक औषधि के बतौर काम में लेते हैं। फिलिपाइन द्वीप में इसकी तातों का अथवा छाल का शीत निर्यास चर्म रोगों को दूर करने के लिये

दिया जाता है, और इसके काढ़े को फोड़ो पर लगाने के काम में लेते हैं। इण्डोचायना में इसके बीज विषनाशक, निद्राजनक और वमन कारक माने जाते हैं। दक्षिण आफ्रिका में दांत निकलते समय बच्चों को यह औषधि दी जाती है। ये बीज नाक से होने वाले रक्तश्राव में उपयोगी माने जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीज वमन कारक होते हैं, इनमें सेपानिन, ग्लुकोसाइड और उपक्षार रहते हैं।

गार

नाम—

यूनानी—गार। फारसी—वहश्तान।

वर्णन—

यह एक बहुत बड़ा पेड़ होता है जो विशेष कर श्याम मे पैदा होता है। ऐसा कहा जाता है कि इस वृक्ष की ऊमर १००० वर्ष तक की होती है। यूनान के निवासी इस पेड़ की बहुत इज्जत करते हैं। इसके पत्ते आस के पत्तों की तरह मगर उनसे कुछ बड़े होते हैं। ये खुशबूदार और कड़वे रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह दूसरे और तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसके पत्तों का क्वाथ गर्भाशय और मसाने की बीमारियों में लाभदायक हैं। इस क्वाथ को टब में भर कर उस टब में बैठने से गर्भाशय, गुर्दे और मसाने की बीमारियों में लाभ होता है। इसकी छाल को ३ माशे की मात्रा में प्रतिदिन पीने से पथरी टूट जाती है और गठिया में लाभ होता है। इसके पत्तों के काढ़े से कुल्ले करने से दांतों का दर्द दूर होता है। इसके पत्तों की मात्रा दो माशे तक है।

इसके पत्तों और फलो का काढ़ा बनाकर उस काढ़े को जैतून के तेल में पचाकर एक तेल तैयार किया जाता है जिसको गारका तेल कहते हैं। यह तेल बहुत गरम होता है। इसको अंगूर की शराब के साथ देने से यकृत के रोग दूर होते हैं, मगर इसको पेट में लेने से जी बहुत मिचलाता है और छाती को नुकसान पहुँचता है। इसलिये इसको कतीरे के साथ लेना चाहिये। इस तेल की मालिश से पुरानी गठिया, वातरोग, फालिज, खुजली, दाद और फोड़े फुन्सी में लाभ पहुँचता है। इसको चर्बी में मिलाकर कान में टपकाने से कान का बहरापन जाता रहता है। इसको सिर पर मलने से नजला और दिमाग की सर्दी चली जाती है। इसको नाक के अन्दर टपकाने से सरदी से पैदा हुई आधाशीशी बन्द हो जाती है। इस तेल का गरम प्रकृति वालों को सेवन नही करना चाहिये।

गारीकून

नाम—

यूनानी—गारीकून ।

वर्णन—

यह वस्तु किसी वृक्ष की गली हुई जड़ की तरह होती है। इसके विषय में यूनानी हकीमों के अन्दर बहुत मत भेद है। किसी २ के मत से यह गूलर, अञ्जीर इत्यादि पुराने झाड़ों की जड़ों में मिलता है। किसी के मत से यह मजू के वृक्ष से प्राप्त होता है। किसीने इसको कुकरमी बतलाया है, जो पुरानी पड़ कर बदबूदार होकर इस रूप में हो जाती है। कोई इसे गार के वृक्ष की जड़ मानते हैं। यह नर और मादा दो तरह की होती है। नर जाति सख्त और मादा जाति मुलायम होती है। औषधि प्रयोग में मादा जाति ही काम में आती है। सफेद रंग की गारीकून उत्तम, मुलायम, हलकी और चिकनी होती है। इसका स्वाद कड़वापन लिये हुए मीठा और चरपरा होता है। इसकी काले रंग की जाति बहुत जहरीली होती है, इसलिये उसका प्रयोग नहीं करना चाहिये ।

गुण दोष और प्रभाव—

यह पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क है। यह शरीर में संचित कफ, वात और पित्त के दोषों को दस्त की ओर निकाल देता है; पेट के फुलाव और वादी की सूजन को मिटाता है, पेशाब और मासिक धर्म को साफ करता है। इसको ४ जौ की मात्रा में सिरके के साथ घोलकर पीने से हर तरह के जहर का असर दूर होता है। कालुनी हरड़ और मस्तगी के साथ देने से सीने और दमे के दर्द में लाभ होता है। ऊदसलीब के साथ इसको देने से मिरगी के रोग में फायदा होता है। उसारे रेवन्द के साथ इसको लेने से जिगर और मेदे की बीमारियां दूर होती हैं। सौंफ के साथ यह गुर्दे और मसाने की पथरी को तोड़ता है। इसे शिकंजबीन के साथ लेने से तिल्ली और पीलिया में लाभ होता है। शराब के साथ यह जहरीले जानवरों के जहर को दूर करता है। अगारून के साथ इसको देने से जलोदर में लाभ होता है। एलुवे के साथ यह औषधि मृगी, गठिया, मलेरिया ज्वर और हिस्टीरिया में फायदा पहुँचाती है। शहद के साथ यह कॉलिक उदरशूल में और वादी में लाभ पहुँचाती है।

इस औषधि को अकेली उपयोग में नहीं लेना चाहिये। बल्कि दूसरी औषधियों के साथ में खिलाना चाहिये।

अगर इसकी पीली, लाल या काली जहरीली जाति से किसी को उपद्रव हो जाय तो उसको उल्टी कराकर फुंद बेदस्तर खिलाना चाहिये। यह औषधि अधिक मात्रा में गुर्दे को नुकसान पहुँचाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिये मस्तगी का उपयोग करना चाहिये। इस औषधि के न मिलने पर इसके बदले में निशोथ और एलुआ मिलाकर देना चाहिये। इसकी मात्रा काढ़े में ४ माशे और चूर्ण के रूप में दो माशे तक देना चाहिये।

गालयूनं

नाम—

यूनानी—गालयून।

वर्णन—

यह एक जाति का पौधा होता है जो तालाबों के किनारे पैदा होता है। इसके पत्ते लम्बे और फूल पीले तथा खुशबूदार होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह शरीर के किसी भी अंग से होने वाले रक्तस्राव को बन्द करती है। इसके फूल का लेप आग से जले हुए स्थान पर करने से शान्ति मिलती है। इसके लगाने से जख्मों से बहता हुआ खून और पीब बन्द हो जाता है। इसको मोम और तेल के साथ मिलाकर लगाने से हाथ पांव का दुखना बन्द होता है। इसकी जड़ कामेंद्रिय को बहुत उत्तेजना देती है। यह वनस्पति यकृत और तिल्ली को नुकसान पहुँचाती है। इसके दर्प को नष्ट करने के लिये अनीसून का प्रयोग करना चाहिये।

गारारी

नाम—

मध्यप्रदेश—गनारी, गरार, दरारी। हिन्दी—गारारी, गरार। बरार—वरा। मलयालम—नीलपला। मराठी—गाराी। नागोरी—करगेलवदार, करगिलुंगदार। तामील—नीलइपलइ, ओडिसी, ओडुपई, ओडुवन। तेलगू—कोरशी, कोरसी, करड़ा, कोरोड़ा। लेटिन—Cleistanthus Pollinus. (क्लेइस्टनथस कोलीनस)

वर्णन—

यह वनस्पति बिहार, छोटा नागपुर, सतपुडा और पश्चिमीय प्रायद्वीप में होती है। यह एक छोटी मध्यम आकार की वनस्पति हैं। इसका वृक्ष मामूली ऊँचा रहता है। इसके पत्ते २·५ सें० मी० से १० सें मी० लम्बे और २ से ७·५ सें० मी० चौड़े होते हैं। इसके फूल हरे रहते हैं। इसकी फली पकने पर अखरोट के रंग की हो जाती है और चमकती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह एक विषैला वृक्ष है। इसके पत्ते और फलों का निर्यास अँतड़ियों की जलन को और खास कर पाकाशय की अन्तड़ियों की जलन को मिटाता है। इसकी छाल चर्म रोगों में उपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह बहुत विषैली वस्तु है। यह मछलियों के लिये विष है। इसमें सेपानिन रहता है।

गावजवाँ

नाम—

संस्कृत—वृषजिव्हा। हिन्दी—गावजवाँ। उर्दू—गावजवाँ। फारसी—गावजवाँ। बंगाली—गावजवाँ। अरबी—जहारे तुल। लेटिन—Onosma Bracteatum (ओनोस्मा ब्रेक्टिएटम)।

वर्णन—

यह वनस्पति हिमालय में, कश्मीर से कुमाऊ तक ११५०० फीट की ऊंचाई तक और ईरान तथा अफ़गानिस्तान में पैदा होती है। इसके पत्ते गाय की जीभ की तरह खुरदरे होते हैं और उन पर साबूदाने की तरह छींटे होते हैं। इसके फूल गुच्छों में लगते हैं। इनका रंग नीला होता है। मगर पुराने होने पर इनका रंग लाल पड़ता जाता है। अच्छी गावजवाँ ताजा मोटे पत्ते वाली, खुरदरी, हरे रंग की और बड़े रुएं वाली होती है। यह सात साल तक खराब नहीं होती।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह औषधि दिल, दिमाग और जिगर को ताक़त देती है, दस्त साफ लाती है, शरीर के अन्दर संचित दूषित कफ और पित्त को दस्त की राह निकाल देती है, खांसी, दमा और सीने की जलन में लाभ पहुँचाती है। मस्तिष्क प्रदाह (cerebritis), माली खोलीया, उन्माद (Insanity), गले का दर्द और फेफड़े के दर्द में भी यह लाभ पहुँचाती है। दिल की धड़कन (Palpitation of the Heart), पीलिया और वहम की बीमारी में भी यह फायदा करती है। गुर्दे और मसाने की पथरी को तोड़ने में यह बहुत लाभदायक है। इसको पीसकर भुर भुराने से मुँह के छाले मिटते हैं।

इसका अर्क वात रोग, माली खोलिया और दिल की धड़कन में फायदे मन्द है।

गावजवाँ के फूल—गावजवा के फूल पहले दर्जे में गरम और तर हैं। ये पीलिया, दिल की धड़कन और प्यास को बुझाकर दिल, दिमाग और जिगर को ताकत देते हैं।

गावजवाँ के बीज—ये भी पहले दर्जे में गरम और तर होते हैं। इनकी तासीर भी गावजवाँ के पत्तों और फूलों की तरह ही होती है, मगर ये गांवजवा के फूलों से अधिक प्रभावशाली हैं। यह औषधि तिल्ली और मेदा को नुकसान पहुँचाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिये हरड़ का मुरब्बा और सफेद चन्दन का प्रयोग करना चाहिये।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वस्तु पौष्टिक और धातु परिवर्तक है। यह आमवात, गर्मी, और कोढ़ में उपयोग में ली जाती हैं। डा० ओशघनेसी ने इसकी बहुत अधिक तारीफ की है। एक औंस गावजवाँ को पानी में उबालकर पिलाने से ज्वर के समय की बेचैनी और प्यास मिट जाती है। यह एक उत्तम मूत्रल और शान्तिदायक पदार्थ है। मूत्राशय की पीड़ा और पथरी में भी यह लाभदायक है।

डॉक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार गावजवाँ मूल्यवान औषधि है। विषम ज्वर में इसका क्वाथ बनाकर देने से शान्ति मिलती है और ज्वर में कमी होती है। उपदंश और सुजाक की वजह

से पैदा हुई सन्धियों की सूजन में इसको चोबचीनी के साथ दिया जाता है। हृदय की धड़कन में इसकी फांट बनाकर देने से फायदा होता है। मूत्र कृच्छ में भी यह लाभदायक है।

बनावटें—

खमीरा गावजवां—गावजवां के पत्ते १० तोले, बिल्लोलोटन ५ तोले; बालछड़, गुलाब के फूल, चन्दन सफेद हरएक एक २ तोला, तीन भाग पानी और दो भाग गुलाब जल मिलाकर उसमें इन सब चीजों को डालकर औटाना चाहिए। चौथाई जल शेष रहे तब मसलकर छानलें और तीन पाव सफेद शक्कर मिलाकर चासनी करें; इसमें चार माशा केशर भी मिला लें इस खमीरे की मात्रा ६ माशे तक है। यह दिल की धड़कन को मिटाता है तथा दिल और दिमाग़ को ताकत देता है।

गावज़वां मीठी

वर्णन—

यह गावजवां की तरह ही एक पौधा होता है। इसके पत्ते जमीन पर बिछे हुए रहते हैं। इसके पत्तों के बीच में से एक शाखा करीब एक गज लम्बी निकलती है। शाखा के सिरे पर सुरमाई रंग के फूल आते हैं। गावजवां से इसका पत्ता चौड़ा, पतला और गोल होता है। सूखने पर इसके पत्तों में सल पड़ जाते हैं। पुराने जमाने में गावजवां की जगह इसी वनस्पति का उपयोग किया जाता था।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति दिल की धड़कन और मेदे की गर्मी को दूर करती है। इसके गुण गावजवां से मिलते जुलते ही हैं।

गिन्दारू

नाम—

गढ़वाल—गिन्दारू। देहरादून—परहा। नेपाल—तन्तरकि, बरफुलिया हरा, निमिलाहरा। लेटिन—Stephania Glabra (स्टेफनिया ग्लेबरा)।

वर्णन—

यह वनस्पति हिमालय में शिमला से सिक्किम तक, खासिया पहाड़ी पर और आसाम में तेना सरम में होती है। इसकी शाखाएं फिसलनी होती हैं। इसके पत्ते भिल्लीदार और दोनों तरफ चिकने रहते हैं। यह पीछे की ओर फीके रंग के रहते हैं। इसके पुष्पों में प्रायः तीन पंखुड़िया रहती हैं। इसका फल गोल और चपटा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

राक्सबर्ग के मतानुसार इसकी जड़ कसैली होती है। इसे सिलहट में उपचार में काम में लेते हैं।

कोचीन और चाइना में इसे फेफड़े के क्षय, ज्वर, श्वास और पेचिश में उपयोग में लेते हैं।

गिरमी

नाम—

हिन्दी—बारीक चिरायता, छोटा चिरायता। बंगाली—गिरमी, गिमा। मराठी—लहान किरियत, लतक। गुजराती—जंगली किरियातुं, लेटिन—Erythraca Roxburghii (अर्थरेका राक्सबर्घी)।

वर्णन—

यह एक छोटी जाति की वनस्पति है। यह सारे भारतवर्ष में पैदा होती है। मगर औषधि के रूप में यह बंगाल के अन्दर बहुत काम में आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह सारा पौधा बहुत कड़वा होता है। यह औषधि अपने अग्निदीपक गुण के कारण बहुत प्रसिद्ध है। इसका ज्वरनाशक गुण भी बहुत प्रभावशाली है। बंगाल में इस औषधि को चिरायते के बदले में उपयोग में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि चिरायता की प्रतिनिधि है।

गिलुर का पत्ता

नाम—

हिन्दी—गिलुर का पत्ता, गलपार का पत्ता। अंग्रेजी—sweet Tangle। लेटिन—Laminana sacharira (लेमिनेरिया सेकेरिना)

वर्णन—

यह एक शेवाल की जाति की वनस्पति है। यह समुद्र में तथा काश्मीर और तिब्बत की झीलों में पैदा होती है। चीन देश की अमूर नदी में पैदा होने वाली शेवाल हिन्दुस्तान में बिकने के लिए आती है। पंजाब और सिन्ध के बाजारों में यह बहुत मिलती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वस्तु रसायन अर्थात धातु परिवर्तक मानी जाती है। इसका शीत निर्यास, उपदंश और कण्ठमाला की बीमारियों में लाभदायक माना जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति उपदंश, कण्ठमाला (Scrofula) और गलगंड (Goitre) में दी जाती है।

गिलेअरमानी

नाम—

यूनानी—गिले अरमानी ।

वर्णन—

यह एक जाति की मिट्टी है । इसका रंग लाल होता है । यह नरम, चिकनी और खुशबूदार होती है । यह ईरान और आर्मीनिया में पैदा होती है । इसकी उत्तम जाति वह होती है जो सुनहरी रंग की हो और जबान पर चिपकती हो ।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में सर्द और दूसरे दर्जे में खुश्क है । यह कब्जियत करती है । दमा, क्षय और खांसी में लाभ पहुँचाती है । हृदय को बल देती है । छाती, पेट, गर्भाशय, अन्तड़ियां, मेदा और पेशाब की राह से होने वाले रक्तस्राव को रोकती है । फोड़े, फुंसी, दाद और जखम इसके लगाने से आराम होते हैं । यह मुँह के छालों की भी बहुत अच्छी औषधि है । प्लेग की गठान पर इसका लेप करने से गठान बैठ जाती है । संक्रामक ज्वर में भी यह बहुत लाभ पहुँचाती है । इसके प्रयोग से शरीर में खराबी का बढ़ना रुक जाता है । यह तिल्ली को नुकसान पहुंचाती है । इसके दर्प को नाश करने के लिये मस्तगी और अर्क गुलाब का प्रयोग करना चाहिये । इसका प्रतिनिधि गेरू है और इसकी मात्रा १ माशे से ७ माशे तक है । (ख० अ०)

गिले खुरासानी

नाम—

यूनानी—गिले खुरासानी, गिले निशापुरी । अरबी—तीन अलखुरासानी ।

वर्णन—

यह भी एक मिट्टी है । यह सफेद, चिकनी, सख्त और ख़ुशबूदार होती है । यह मुलतानी मिट्टी से कुछ मिलती जुलती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वमन को रोकती है, मेदे को ताकत देती है; सूजन को बिखेरती है; इसका गर्मी की फुंसियों पर लेप करने से लाभ होता है । इसके खाने से नींद में मुंह से लार का बहना बन्द हो जाता है । हैजे की बीमारी में यह बहुत मुफीद है । हकीम गिलानी का कहना है कि यह औषधि हैजे पर कई बार तजुर्बे से लाभदायक सिद्ध हो चुकी है इसको देने की तरकीब इस प्रकार है । पहले इसको थोड़ा सा आग में भून लें, फिर १॥ तोला, खट्टे मीठे सेव के रस में दे दें । दूसरी खुराक १॥ तोले की रेवन्द के काढ़े के साथ और तीसरी खुराक ठंडे पानी के साथ देवें । समय देखकर खुराक में कमी बेशी की जासकती है । इस प्रकार देने से हैजे में अच्छा लाभ होता है ।

जिन लोगों का आमाशय कमजोर होता है और खाना खाने के बाद वमन हो जाया करती है उनको भोजन के पश्चात् १३॥ माशे की मात्रा में देने से बड़ा लाभ होता है। मगर यह जांच कर लेना चाहिये कि रोगी के लीवर की चाल कमजोर न हो।

यह औषधि अधिक मात्रा में खाने से गुर्दे और मशाने में पथरी पैदा करती है। जिन लोगों को गुर्दे और मशाने की पथरी की शिकायत हो उनको यह औषधि बहुत नुकसान करती है। इसका दर्प नाशक अनीसून है। इसकी मात्रा ४ माशे से १३ माशे तक है। (ख० अ०)

—०—

गिलेदागशानी

नाम—

यूनानी—गिलेदागशानी।

वर्णन—

यह भी एक तरह की मिट्टी है। इसकी टिकियाएं बनकर बाहर से आती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क है। वात, पित्त और कफ तीनों की खराबियों को यह दूर करती है। दिल की धड़कन और बेहोशी में यह लाभदायक है। यह खून के बहने को रोकती है। (ख०अ०)

—०—

गिलेमखतूम

नाम—

यूनानी—गिलेमखतूम।

वर्णन—

यह लाल और पीले रंग की मिट्टी है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसको पीस कर जखम पर भुरभुराने से जखम का खून उसी वक्त बन्द हो जाता है। यह मिट्टी विषनाशक है। जहर का असर होने से कुछ देर बाद खाने से यह अच्छा लाभ पहुँचाती है। कहीं से बहते हुए खून को रोकने के लिए यह औषधि बहुत कारगर है। गर्मी की सूजन में इससे बड़ा लाभ होता है। इसके लगाने से कैसा ही खराब जखम हो, भर जाता है। मोच, चोट, हड्डी का टूटना इत्यादि घावों में भी इससे बड़ा लाभ होता है। इसके मंजन करने से मसूड़ों से खून का गिरना रुक जाता है। जहरीले जानवर के काटने पर इसको शराब के साथ खाना चाहिये और सिरके के साथ लगाना चाहिये।

हकीम गिलानी का कथन है कि गुलाब के अर्क के साथ उपयोग में लेने से यह हृदय को बहुत ताकत देती है और प्रसन्नता पैदा करती है। संक्रामक रोगों के चलने के समय भी इसका सेवन करने से बीमारी होने का डर नहीं रहता। इसमें एक गुण यह है कि दूसरी मिट्टिया जहां कब्जियत पैदा करती हैं वहां यह दस्तावर है। इसको पीस कर ताजे घाव पर छिड़कने से घाव बहुत जल्दी भर जाते हैं और उनसे बहने वाला खून भी बन्द हो जाता है।

यह फेफड़े और तिल्ली को नुकसान पहुँचाती है। इसके दर्प को नाश करने लिये कतीरा, शहद और अर्क गलाब देना चाहिये। इसकी मात्रा ३ से ७ माशा तक की है। (ख० अ०)

—०—

गिलेरूमी

नाम—

यूनानी—गिलेरूमी।

वर्णन—

इस मिट्टी का रंग गुलाबी होता है। हाथ पर इसको मलने से हाथ का रंग लाल हो जाता है। इसको तोड़ने से इसके अन्दर पीले रंग की धारियां दिखलाई देती हैं। इसको जबान पर रखने से चिपक जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

हर तरह की सूजन पर इसका लेप करने से फायदा होता है। इसको कासनी के पानी में पीस कर आंख के पोटे पर लगाने से आंख की सूजन उतर जाती है। आंतों के जखम और पेचिश पर इसका एनेमा देना चाहिये। (ख० अ०)

—०—

गिओग्रा

नाम—

लेटिन—Lilium Giganteum, लिलियम जिगेंटियम।

वर्णन—

यह वनस्पति हिमालय में गढ़वाल से सिकिम तक ५००० फीट से ९००० फीट की ऊंचाई तक और खसिया पहाड़ियों में पैदा होती है। इसका तना पोला होता है। इसके पत्ते गोल होते हैं। इसके नीचे के पत्ते अधिक बड़े होते हैं। इसकी फली लम्बी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते घाव और रगड़न की तकलीफ को दूर करने के लिये और शीतलता लाने के लिये लगाने के उपयोग में लिये जाते हैं।

कर्नल चौपरा के मतानुसार इसके पत्ते घाव और रगड़न पर लगाये जाते हैं।

—०—

गिलोय

नाम—

संस्कृत—गुडूची; अमृतवल्ली, कुण्डली, चक्रलक्षणा, सोमवल्ली, अमृता, इत्यादि। हिन्दी—गिलोय। बंगाल—गुलच। मराठी—गुड़वेल। गुजराती—गलो। करनाटकी-अमरदवल्ली। तेलगू-तिप्पतिगा। कोकण—गरुड़वेल। फारसी—गिलाई। अरबी—गलोई। लेटिन—Tinospora Cordifolia (टिनोस्पोरा कॉर्डिफोलिया)।

वर्णन—

आयुर्वेद की यह सुप्रसिद्ध वनस्पति सारे भारतवर्ष में पैदा होती है। यह बड़ी और बहु वर्ष जीवी होती है। यह दूसरे वृक्षों के आसरे से चढ़ती है। जो गिलोय नीम के ऊपर चढ़ती है वह नीम गिलोय कहलाती है और औषधि प्रयोग में वही सबसे उत्तम मानी जाती है। इसके पत्ते हृदय की आकृति के और लम्बे डण्ठल के होते हैं। फूल बारीक, पीले रंग के, झूमकों में लगते हैं। फल लाल रंग के होते हैं ये भी झूमकों में लगते हैं। इस लता का तना अँगूठे के बराबर मोटा होता है। शुरू २ में यह हरे रंग का होता है मगर पकने पर धूसर रंग का हो जाता है। इस बेल का यह तना ही औषधि प्रयोग में काम में आता है। इस सारी वनस्पति का स्वाद कड़वा होता है। गरमी के दिनों में इस बेल को इकट्ठी करने से यह ज्यादा गुणकारी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से गिलोय कसैली, कड़वी, उष्ण वीर्य, रसायन, मल-रोधक, बल कारक, अग्नि दीपक, हलकी, हृदय को हितकारी, आयुवर्धक तथा प्रमेह, ज्वर, दाह, तृषा, रक्त दोष, वमन, वात, भ्रम, पांडुरोग, त्रिदोष, कामला, श्राव, खासी, कोढ़, कृमि, खूनी बवासीर, वात रक्त मेद, विसर्प, पित्त और कफ को दूर करती है। यह घी के साथ वात को, शकर के साथ पित को, शहद के साथ कफ को और सोंठ के साथ आमवात को दूर करती है।

गिलोय और मानव शरीर की व्याधियां—

गिलोय में शामक, ज्वर नाशक, पित्त शामक, मूत्रल और शोधक गुण रहते हैं। इसका शामक गुण अत्यन्त आश्चर्य जनक है। आयुर्वेद के मतानुसार शरीर के पैदा होने वाली प्रत्येक व्याधि में वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषों में एक या दो का प्रकोप अवश्य रहता है। गिलोय में शामक गुण होने की वजह से वह प्रत्येक कुपित हुए दोषों को समानता पर ला देती है। जिस दोष का प्रकोप होता है उसको वह शान्त कर देती है। और जिसकी कमी हो जाती है, उसको प्रदीप्त

कर देती है। इस प्रकार घटे बढ़े दोषों को समान स्थिति में ला कर प्रकृति को निरोग बनाने का गुण दूसरी किसी भी वनस्पति में नहीं है। इसीलिये इसका नाम अमृता रक्खा गया है। यह एक ही वनस्पति है जो प्रत्येक प्रकृति के मनुष्य को प्रत्येक रोग में दी जा सकती है।

ज्वर पर गिलोय के प्रभाव—

ज्वर नाशक गुण होने की वजह से यह हर एक जाति के ज्वरों में निःशंकता से दी जा सकती है। यद्यपि मलेरिया के कीटाणुओं को नष्ट करने की शक्ति इसमें बहुत कम है और इस रोग में यह क्विनाइन का मुकाबला नहीं कर सकती, फिर भी शरीर की दूसरी क्रियाओं को व्यवस्थित करने में यह बहुत सहायता पहुँचाती है, जिसके परिणाम स्वरूप मलेरिया ज्वर पर भी इसका असर दिखलाई देता है। क्विनाइन से शरीर में जो खराब प्रति क्रियाएँ होती हैं उनको भी यह रोकती है। इसलिये अगर क्विनाइन के साथ इसका भी उपयोग किया जाय तो मलेरिया ज्वर में विशेष फायदा हो सकता है।

जीर्ण ज्वर और टायफाइड ज्वर में (मोतीज्वर) जहां कि क्विनाइन इत्यादि औषधियां कुछ भी काम नहीं कर सकती वहां भी गिलोय आश्चर्यजनक फायदा करती है। इसमें पित्त को शांत करने का गुण रहता है और जीर्णज्वर तथा मोती ज्वर में विशेषकर पित्त का ही प्रकोप रहता है इसलिये ऐसे ज्वरों में यह बहुत अच्छा लाभ बतलाती है। तेज ज्वर आने के पश्चात् शरीर में जो हलका बुखार शेष रह जाता है उसको निकालने में भी यह वनस्पति बहुत प्रभावशाली है। इसके सेवन से रोगी में शक्ति का संचार भी बहुत शीघ्रता से होता है।

ऐसे बुखारों में तुलसी, बनफ्शा, गावजवां, खूबकला, इत्यादि औषधियों के साथ इसका काढ़ा बनाकर देने से अथवा इसका घन सत्व निकालकर उसको त्रिकुटे के चूर्ण और शहद के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

यकृत रोग, मन्दाग्नि और गिलोय—

यकृत अर्थात् लीवर और तिल्ली की खराबी की वजह से शरीर में जलोदर, कामला, पीलिया इत्यादि जितने भी रोग खड़े होते हैं उन सबको दूर करने के लिये गिलोय एक अत्यन्त चमत्कारिक दवा है। यहां तक कि आंत्र क्षय के उग्र केसों में भी इसके प्रयोग से बड़ा लाभ होता है। मन्दाग्नि की ऐसी पुरानी शिकायतों में भी जिनको दूर करने के लिये हजारों रुपये की बहु मूल्य औषधियां भी बेकार साबित हो चुकी थीं, गिलोय ने आश्चर्यजनक लाभ बतलाये हैं। ऐसे रोगों के सम्बन्ध में गिलोय के प्रयोग अनेकों बार अनुभवों में आ चुके हैं और इस बात की सिफारिश की जा सकती है कि जो लोग पेट के रोगों से ग्रसित हों जिनकी तिल्ली और यकृत बिगड़ रहे हों, जिनको भूख न लगती हो, शरीर पीला पड़ गया हो, वजन कम हो गया हो, और जो बड़ी २ औषधियों से निराश हो गये हों वे भी इस आश्चर्यजनक औषधि का सेवन करके लाभ उठा सकते हैं। ऐसे रोगों में इसके प्रयोग की विधि इस प्रकार है। नीम के ऊपर चढ़ी हुई ताजी गिलोय १॥ तोला, अजमोद २ माशे, छोटी पीपर २ दाने, नीम के पत्तों की सलाइयां ७, इन सब चीजों को कुचल कर रात को पाव भर पानी में मिट्टी के बर्तन में भिगों दे।

सवेरे इन चीजों को ठण्डाई की तरह सिल पर पीसकर उसी पानी में छानकर पीलें। इस प्रकार १५ से लेकर ३० दिनों तक पीने से पेट के सब रोग दूर होते हैं।

रक्त विकार और गिलोय—

गिलोय में रक्त विकार को नष्ट करके शरीर में शुद्ध रक्त प्रवाहित करने का गुण भी विद्यमान है। इसलिये खाज, खुजली, वातरक्त इत्यादि रोगों में भी इसको गूगल के साथ देने से अत्यन्त लाभ होता है।

क्षय की भयंकर व्याधि पर गिलोय का प्रभाव—

क्षय रोग के ऊपर भी इस औषधि की बहुत अच्छी क्रिया होती है। दो, ढाई तोले गिलोय का शीत निर्यास छोटी पीपर के चूर्ण के साथ प्रातः काल के समय पीने से क्षय के रोगी को ऐसा लाभ होता है जो शायद कॉड लिव्हर ऑइल इत्यादि गन्दी दवाइयों से नसीब नहीं हो सकता। इससे क्षय रोगी के ज्वर का वेग घटता है, उसकी पाचन क्रिया सुधरती है। पाचक रस अधिक उत्पन्न होता है, क्षुधा प्रदीप्त होती है, और जठर बलवान होता है।

गिलोय और मूत्ररोग—

सुजाक, प्रमेह, पेशाब की जलन, इत्यादि मूत्र रोगों में भी अपने मूत्रल गुण की वजह से यह अच्छा लाभ बतलाती है। अरण्डी के तेल के साथ इसका काढ़ा बनाकर देने से कष्ट साध्य समझे जाने वाले संधिवात में भी अच्छा लाभ होता है।

विष के उपद्रवों पर गिलोय—

गिलोय के अन्दर विष नाशक गुण भी बतलाया जाता है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट इत्यादि प्रामाणिक ग्रन्थकारों ने इसको दूसरी औषधियों के साथ सर्प विष में लाभदायक बतलाया है। इसके कन्द को माशे डेढ़ माशे की मात्रा में पानी में घोटकर पिलाने से बार २ वमन होकर सर्प विष निकल जाता है।

कीर्तीकर और बसु के मतानुसार गिलोय का सत्व जीर्ण रक्तातिसार और पुरानी पेचिश में बहुत लाभदायक है। अन्तड़ियों की पीड़ा में जबकि अन्न बिलकुल भी हजम न होता हो यह औषधि बड़ा चमत्कारिक लाभ बतलाती है। भयंकर रक्तातिसार और अतिसार में भी यह औषधि बहुत मुफीद है। अग्नि माद्य और अपचन रोग को यह बिलकुल दूर कर देती है। गठिया रोग के लक्षणों को दूर करने में भी यह बड़ी असर कारक है। इसका ताजा रस मूत्र निस्सारक होता है। पुराने हिन्दू चिकित्सकों ने इसे सुजाक की बीमारी में मुफीद बतलाया है।

हिन्दुस्तान के कुछ भागों में यह विष को दूर करने का एक निश्चित इलाज समझा जाता है। सर्प विष में इसकी जड़ का रस या काढ़ा काटे हुए स्थान पर लगाया जाता है, आंखों में डाला जाता है, और आधे २ घण्टे की अवधि से पिलाया भी जाता है।

सन्याल और घोष के मतानुसार गिलोय पार्यायिक ज्वर को दूर करनेवाली औषधि है। यह पौष्टिक, धातुपरिवर्तक और मूत्र निस्सारक है। इसकी सूखी बेलकी अपेक्षा ताज़ा बेल ज्यादा गुणकारी है। इसका प्रयोग गठिया की बीमारी में भी किया जाता है। यकृत रोग, अग्निमांद्य और मूत्र सम्बन्धी रोगों में भी यह बहुत लाभदायक है। यह यकृत को उत्तेजना देती है और पीलिया में लाभ पहुँचाती है। अनुभव से सिद्ध हो चुका है कि मंदाग्नि, जीर्ण ज्वर और उलट २ कर आने वाले ज्वरों में यह अति उत्तम औषधि है।

ज्वर में इसका उपयोग भिन्न २ रूप से किया जाता है। पैत्तिक ज्वर में नीम गिलोय का सत्व शहद के साथ दिया जाता है। पुराने ज्वर और खांसी में इसका काढ़ा या ताजा रस पीपल और शहद के साथ में दिया जाता है।

चरक के मतानुसार इसका रस उलट कर आने वाले बुखार में मुफीद होता है। पीलिया की बीमारी में भी इस रस को प्रातःकाल शहद के साथ देने से लाभ होता है। पित्त से होने वाली उल्टियों में भी इसका काढ़ा लाभ दायक होता है।

गिलोय का सत्व निकालने की विधि—

नीम पर चढ़ी हुई ताजी, रस दार और चमकदार गिलोय को लाकर उसके एक २ दो २ इञ्च के टुकड़े कर उन टुकड़ों को पत्थर से कुचल एक मिट्टी के बरतन में पानी के अन्दर गला देना चाहिये। जब ४ घण्टे तक ये टुकड़े अच्छी तरह गल जाँय, तब उनको हाथों से मल २ कर बाहर निकाल कर फेंक देना चाहिये। उसके बाद उस पानी को कपड़े से छानकर तीन चार घण्टे तक पड़ा रहने देना चाहिये। जिससे गिलोय का सब सत्व उस बरतन की पैंदी में जम जायगा। उसके बाद धीरे २ उस पानी को दूसरे बरतन में निकाल लेना चाहिये और नीचे जो सफेद रंग का सत्व जमा हो उसको निकाल कर धूप में सुखा लेना चाहिये। यही गिलोय का सत्व है। जो अनेक रोगों में काम आता है।

गिलोय का घन सत्व बनाने की विधि—

ऊपर सत्व निकालते समय सत्व के ऊपर के पानी को नितार कर दूसरे बरतन में निकाला गया है। उस पानी को आग पर चढ़ा कर खूब औटाना चाहिये। जब औटाते २ रबड़ी सरीखा हो जाय तब उसको उतार कर या तो उसकी बट्टियां बांध लेना चाहिये या उसको थाली में डाल कर धूप में सुखा लेना चाहिये। यह गिलोय का घन सत्व है जो काले रंग होता है।

यह घन सत्व भी अत्यन्त प्रभाव शाली औषधि है और जहां २ गिलोय सत्व और गिलोय को लेने का विधान है; वहां २ उसके बदले में इसका उपयोग बेधड़क होकर किया जा सकता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में गरम और तर है। जो गिलोय नीम के ऊपर चढ़ती है, वह पुराने बुखार के लिये बहुत मुफीद है। तपेदिक या क्षय में भी यह बहुत लाभ करती है। हर किस्म के तप को यह दूर करती है। दिल, जिगर और मेदे की जलन को मिटाती है। खांसी, पीलिया और बेहोशी में फायदा करती है। कफ को छांटती है, भूख बढ़ाती है, कामेन्द्रिय को ताकत देती है, वीर्य

को पैदा करके गाढ़ा करती है। मिश्री के साथ लेने से पित्त की तेजी को दूर करती है और शहद के साथ लेने से कफ के कोप को मिटाती है। मधु प्रमेह या डायबिटीज में जब पेशाब के साथ शकर जाती हो तब ६ माशा गिलोय का चूर्ण और ६ माशा मिश्री मिलाकर प्रातः काल खाली पेट खाने से बड़ा लाभ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी लकड़ी और जड़ उपचार के काम में आती है। यह स्वाद में कड़वी होती है। इसका रस ज्वरघ्न औषधि के काम में लिया जाता है। इसको हिन्दुस्थानी क्विनाइन भी कहते हैं। इसकी जड़ और लकड़ी से एक प्रकार का सत्व तैयार किया जाता है जो कि निर्बलता, अविराम ज्वर और अग्निमांद्य के प्रयोग में लिया जाता है। यद्यपि कई लोगों ने कोढ़, उपदंश और गठिया के सम्बन्ध में इसकी तारीफ की है, मगर उपरोक्त रोगों में इसकी उपयोगिता कहाँ तक है यह अभी तक संशयपूर्ण है।

ग्रन्थ लेखक के अनुभव—

करीब १० वर्षों से नीम गिलोय के अनुभव इस ग्रंथ के लेखक को बराबर होते आ रहे हैं। मंदाग्नि, आंत्र क्षय और उदर रोगों के कठिन केसों में इसका सफलता पूर्वक उपयोग किया जा चुका है। एक ऐसी स्त्री के केस में जिसको मदाग्नि और आंतों की कमजोरी की भयकर शिकायत थी। भूख नहीं लगती थी, हमेशा ज्वर की हरारत बनी रहती थी। सारा शरीर कमजोर हो गया था, वजन, स्वाभाविक वजन से १६ सेर कम हो गया था और आंत्र क्षय के लगभग सभी चिन्ह दृष्टि गोचर होने लग गये थे। उसको गिलोय का प्रयोग प्रारभ किया गया। १॥ तोला ताजी गिलोय, २ माशे अजमोद, दो दाने छोटी पीपर और ७ नग नीम के पत्तों के डंठल। इन सब चीजों को रात में मिट्टी के बरतन में भिगोकर प्रातःकाल ठंडाई की तरह पीसकर आधा पाव पानी में छानकर उसमें ईंट का एक टुकड़ा गरम करके बुझाकर, रोज सबेरे उसे पिलाया जाने लगा। पहले ही सप्ताह से लाभ के लक्षण दृष्टि गोचर होने लगे। उसकी हरारत निकल गई और भूख बढ़ने लगी। दूसरे सप्ताह में उसकी रक्त मिसरण क्रिया में सुधार हो गया और उसका वजन बढ़ने लगा। जो तीसरे सप्ताह में १२ सेर बढ़ गया। उसके अन्दर काम करने की स्फूर्ति और आरोग्य के सभी लक्षण पैदा हो गये और भी इस प्रकार के मदाग्नि और उदर रोग से सम्बन्ध रखनेवाले केसों में इसके चमत्कारिक गुण अनुभव में आये।

फेंफड़े के क्षय में भी अगर वह पहली स्टेज में हो तो इस औषधिका धैर्य पूर्वक सेवन करने से अवश्य लाभ होता है। इसका सत्व, शरीर की जीवनी शक्ति और रोग निवारक शक्ति को बढ़ाने की अद्भुत क्षमता रखता है। किसी भी रोग के पश्चात् की कमजोरी में शीतोपलादि चूर्ण दो माशा और प्रवाल पिष्टी दो रत्ती के साथ इसको एक माशे की मात्रा में शहद के साथ चटाने से मनुष्य की जीवन विनिमय क्रिया को बड़ा बल मिलता है। ऐसे अनेक केस हमारे अनुभव में आये हैं, जिनको साल भर में ३।४ बार बीमार पड़ने की आदत सी होगई थी, मगर इस औषधि को नियम पूर्वक डेढ़, दो

महिना सेवन करने के पश्चात् पांच पांच दस दस वर्षों तक उनको बीमार पड़ने की नौबत नहीं आई। और उनका जनरल स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहा।

इसी प्रकार मजिष्ठादि क्वाथ के साथ गिलोय का सेवन करने से रक्त विकार के भी कई केसों में अच्छा लाभ होता हुआ देखा गया है।

उपयोग—

गठिया—इसका क्वाथ या शीत निर्यास पिलाने से पुरानी गठिया और पेशाब की बीमारियों में बड़ा लाभ होता है।

सांप का जहर—इसकी जड़ का काढ़ा बनाकर पिलाने से सांप के विष में लाभ पहुँचता है।

गर्मी के फोड़े फुन्सी—उसबे के साथ इसका काढ़ा बनाकर पिलाने से गर्मी से पैदा हुए फोड़े फुन्सी मिट जाते हैं। इसके खालिस रस में पखान भेद का चूर्ण और शहद मिलाकर खिलाने से सुजाक में लाभ होता है।

श्वेत प्रदर—इसका काढ़ा या शीत निर्यास पिलाने से स्त्रियों का श्वेत प्रदर मिटता है।

दिल की धड़कन—ब्राम्ही के साथ इसका काढ़ा बनाकर पिलाने से दिल की धड़कन और पागलपन मिटता है।

क्षय—इलायची, वंशलोचन और गिलोय के सत को शहद के साथ चटाने से क्षय में बहुत लाभ होता है।

पार्यायिक ज्वर—इसकी जड़ का क्वाथ बनाकर पिलाने से बारी बारी से आने वाला ज्वर मिट जाता है।

श्वेत प्रदर—शतावरी के साथ इसको औटाकर पिलाने से योनि से सफेद पानी का गिरना बन्द हो जाता है।

कान का दर्द—गिलोय को घिसकर पानी में कुनकुना करके कान में टपकाने से कान का मैल निकल जाता है।

पित्त ज्वर—गिलोय के काढ़े में शक्कर मिलाकर पीने से पित्त का ज्वर छूट जाता है।

कफ ज्वर—गिलोय के क्वाथ में छोटी पीपल का चूर्ण मिलाकर पिलाने से कफ का ज्वर छूट जाता है।

अरुचि—गिलोय के रस में पीपल का चूर्ण और शहद मिलाकर पिलाने से तिल्ली के रोग आराम होते हैं, भूख और रुचि बढ़ती है और खांसी में लाभ होता है।

पीलिया—इसके पत्तों को पीसकर मट्ठे में मिलाकर पीने से पीलिया दूर होता है।

हिचकी—इसके और सोंठ के चूर्ण को मिलाकर सुंघाने से हिचकी बन्द हो जाती है।

पैर के तलवों की जलन—गिलोय और अरण्डी के बीजों को दही में मिलाकर लगाने से पैर के तलवों की जलन मिटती है।

वातरक्त (१)—इसके काढ़े में अरण्डी का तेल और गूगल मिलाकर नियमित रूप से सेवन करने से वात रक्त मिटता है।

(२) ३ या ५ छोटी हर्र के चूर्ण को गुड़ में गोली बनाकर खाने से और ऊपर से गिलोय का काढ़ा पिलाने से बढ़ा हुआ वात रक्त भी शांत होता है।

अनेक रोग—गिलोय को गुड़ के साथ खाने से कब्जियत दूर होती है। मिश्री के साथ लेने से पित्त का कोप शान्त होता है। शहद के साथ खाने से कफ के विकार शात होते हैं। सोंठ के साथ लेने से आमवात मिटता है और गौ मूत्र के साथ इसका प्रयोग करने से श्लीपद की बीमारी दूर होती है।

अग्निमांद्य—गिलोय १ ड्राम, लौंग १ ड्राम, दालचीनी १ ड्राम, पानी १ पिंट। इन सब चीजों को पीसकर, उबालकर, जब आधा रह जाय तब छान लेना चाहिये। इसको १ औंस की मात्रा में दिन में तीन बार देने से मन्दाग्नि में बहुत लाभ होता है।

ज्वर के बाद की कमजोरी—गिलोय १ ड्राम, चिरायता १ ड्राम, सोंठ १ ड्राम, पानी १ पिंट इनको उबाल कर जब आधा पानी शेष रह जाय तब छान लेना चाहिये। इसको १ औन्स की मात्रा में दिन में तीन बार देने से ज्वर के बाद की कमजोरी दूर होती है।

(सन्याल और घोष)

बनावटें—

अमृता गूगल—हरी ताजी नीम गिलोय ६४ तोला, गूगल ३२ तोला, त्रिफला ६६ तोला, इन सबको जौकुट करके २० सेर पानी में डाल कर अग्नि में चढ़ाना चाहिये। जब ५ सेर पानी बाकी रह जाय तब उतार कर कपड़े में छान कर फिर आग पर चढ़ा देना चाहिये। जब औटते २ वह गाढ़ा हो जाय तब उसमें दन्ती की जड़ २ तोला, सूंठ ६ माशे, मिरच ६ माशे, छोटी पीपर ६ माशे वाय विडंग २ तोला, गिलोय २ तोला, त्रिफला का चूर्ण २। तोला, इन सबको कपड़छान करके मिला देना चाहिये। जब ठण्डा हो जाय तब तीन २ माशे की गोलिया बना लेना चाहिये। इन गोलियों में से १ से लगाकर ४ तक गोलिया प्रतिदिन सवेरे शाम रासना के क्वाथ या अन्य अनुपान के साथ लेने से वात रक्त, गलित कुष्ट, विस्फोटक, व्रण इत्यादि रोगों में बहुत लाभ होता है।

अमृता मोदक— नीम गिलोय का घन सत्व ४ तोला, हरड़ १ तोला, आवला १ तोला, सूंठ और छोटी पीपर एक २ तोला। इन सब चीजों को १६ तोला पानी में उबालना चाहिये। जब ४ तोला पानी शेष रह जाय तब उसको छान कर आठ तोला शक्कर मिलाकर फिर आग पर चढाकर गाढी कर लेना चाहिये। पश्चात् उतार कर उसका जितना वजन हो उससे सोलहवा हिस्सा मण्डूर भस्म मिला कर तीन २ माशे की गोलियां बना लेना चाहिये। इनमें से प्रतिदिन सवेरे शाम एक-एक गोली लेने से तिल्ली की बढ़ती, मंदाग्नि; और जीर्ण ज्वर में अद्भुत लाभ होता है।

अमृता अरिष्ट—ताजी नीम गिलोय ४०० तोला, बेल ४० तोला, अरनी ४० तोला, अडूसा ४० तोला,

गम्भारी ४० तोला, पाडर ४० तोला, अरलू ४० तोला, शालपर्णी ४० तोला, पृष्ठ पर्णी ४० तोला, कटाई ४० तोला, लघु कटाई ४० तोला, गोखरू की जड़ ४० तोला। इन सबको लेकर १ मन ११ सेर पानी में उबालना चाहिये। जब १२॥ सेर पानी बाकी रह जाय तब उतारकर छान कर उसमें ३० सेर गुड़, ६४ तोला जीरा, ८ तोला पित्त पापड़ा और सोंठ, मिरच, पीपर, नागर मोथा, नाग केशर, कुटकी, अतीस, इन्द्र जौ और सप्तपर्णी (सतवन) का चूर्ण चार २ तोला डालकर खूब मिलाकर चीनी की बरनियों में भरकर उनका मुंह बन्द करके १ महिने तक पड़ा रहने देना चाहिये। उसके बाद उसको उपयोग में लेना चाहिये। इस अरिष्ट में से ४ तोला सवेरे और शाम को जल के साथ लेने से हर तरह के जीर्ण-ज्वर उदर रोग, मन्दाग्नि इत्यादि अनेक रोग नष्ट होते हैं।

अमृता मोदक नं० २—नीम गिलोय का उत्तम सत्व १० तोला, तमाल पत्र, आंवला, मूसली, इलायची, मेंहदी के बीज, काली दाख, केशर, नाग केशर, कमल कन्द, भीमसेनी कपूर, चन्दन, लाल चन्दन, सोंठ, मिरच, पीपर, मुलेठी, असगन्ध, शतावरी, गोखरू, कोंच बीज, जायफल, ककोल, जटामासी रस सिंदूर, अभ्रक भस्म, बंग भस्म और लोह भस्म। इन सबों को एक २ तोला लेकर पीस छान कर गिलोय के सत्व में मिला देना चाहिये। उसके पश्चात् ८ तोला घी ८ तोला शक्कर और ८ तोला शहद मिला कर एक २ तोले की गोलिया बना लेना चाहिये। इनमें से एक २ गोली रोज सवेरे शाम खाने से क्षय, रक्तपित्त, हाथ पैरों के तलवों की जलन, दाह, प्रदर, रक्त प्रदर, मूत्रकृच्छ्र तथा प्रमेह रोग दूर होते हैं।

गुजरात में गिलोय के योग से कई प्रकार की संशमनियां तैयार की जाती हैं। संशमनी गुजराती वैद्यों के व्यवहार की एक घरेलू चीज है। नीचे हम कुछ संशमनियों के नुस्खे देते हैं।

संशमनी (१)—नीम के ऊपर फैली हुई ताजा गिलोय लाकर उसके एक २ इंच के टुकड़े कर लेना चाहिये। फिर उन टुकड़ों को साफ करके, कुचल कर, चौगुने पानी में तीन घण्टे तक भिगोना चाहिये। उसके बाद उनको अच्छी तरह से मसल कर, पानी को कपड़े में छान लेना चाहिए। उसके बाद उस पानी को अग्नि पर हलकी आंच पर चढ़ा देना चाहिये। जब वह गाढ़ा हो जाय तब उसकी टिकड़ियां बांध लेनी चाहिये। जब वह सूखकर खरल में घुटने काबिल हो जाय, तब उसमें से १० तोला घन सत्व लेकर उसमें एक रुपये भर लोह भस्म, १ रुपये भर स्वर्ण माक्षिक की भस्म डालकर अच्छी तरह खरल करके आधी २ रत्ती की गोलिया बना लेना चाहिये।

इन गोलियों को ५ से लेकर १० की मात्रा में दिन में दो बार दूध के साथ देने से जीर्ण ज्वर पांडु रोग, दाह, मन्दाग्नि, हृदय रोग, धातु की कमजोरी, बीमारी के बाद की कमजोरी, श्वेतप्रदर, इत्यादि रोगों में बहुत लाभ होता है।

संशमनी (२)—

ऊपर के नुस्खे में से केवल लोह भस्म को निकाल देने से संशमनी नं० २ तैयार हो जाती है।

यह भी उपरोक्त संशमनी के समान गुणकारी होती है। मगर उसके बराबर उग्र वीर्य और तेज़ नहीं होती है। इसकी प्रकृति सौम्य रहती है।

स्पेशल संशमनी (३)—अभ्रक भस्म, सुवर्ण माक्षिक भस्म, रस सिंदूर, शुद्ध शिलाजीत और चतुर्वंग भस्म। इन सब चीजों को एक २ तोला लेकर बारह तोला गिलोय के घन सत्व में घोटकर, एक २ रत्ती भर की गोलिया तैयार कर लेना चाहिये। इनमें से एक २ गोली प्रतिदिन सवेरे, शाम और दुपहर को पानी के साथ लेने से जीर्ण ज्वर, क्षय, निर्बलता, पाडु रोग, प्रदर, धातु क्षय, वीर्य स्राव, इत्यादि रोगों पर, बहुत लाभ पहुंचाती है।

बृहत् संशमनी (४)—अभ्रक भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, रस सिंदूर, शुद्ध शिलाजीत और चतुर्वंग भस्म। इन सब चीजों को एक २ तोला लेकर १२ तोला गिलोय के घन सत्व के साथ खरल करके एक २ रत्ती भर की गोलियाँ बना लेनी चाहिये। इनमें से २ से लेकर ४ गोली दिन में तीन बार पानी अथवा दूध के साथ लेने से जीर्ण ज्वर, क्षय, निर्बलता, पाडु रोग, प्रदर, अनियमित वीर्यस्राव, इत्यादि रोग मिटते हैं। यह औषधि शीत वीर्य और अत्यन्त पौष्टिक है। छोटे बच्चों की कमजोरी में भी यह बहुत उत्तम है।

शक्ति वर्धक गोलियां—गिलोय का घन सत्व ४० तोला, लौंडी पीपल ५ तोला, लोह भस्म ५ तोला, कुनैन ५ तोला, शुद्ध कुचले का चूर्ण ५ तोला, इन सबको खरल में पीसकर डेढ़ २ रत्ती की गोलिया बनाकर दोनों टाइम १ से ३ तक गोलियां दूध के साथ लेने से जीर्ण ज्वर, तिल्ली और यकृत की वृद्धि, मन्दाग्नि, पाडु रोग और सूजन वगैरह दूर होकर शक्ति बढ़ती है।

गिलोय की फांट—ताजी नीम गिलोय १० तोला, अनन्त मूल का चूर्ण १० तोला। गिलोय के छोटे २ टुकड़े करके उनको कुचल कर अनन्त मूल के चूर्ण के साथ एक बर्तन में रखकर ऊपर से खूब तेज खोलता हुआ पानी २॥ सेर डालकर बर्तन का मुंह बन्द कर देना चाहिये। २ घण्टे उसको वैसा ही पड़ा रहने देना चाहिये। उसके बाद उसको खूब मसल कर उस पानी को छान लेना चाहिये। इस पानी को दिन में तीन बार ५ तोले से लेकर १० तोले तक की मात्रा में देना चाहिये। यह औषधि एक उत्तम रसायन और मूत्र जनक है। फिरङ्गोपदंश की दूसरी अवस्था में और जीर्ण आम वात में यह अत्यन्त उपयोगी होती है।

गिलोय की मात्रा हरी हालत में १ तोले से लेकर २॥ तोले तक की है। सूखी गिलोय की मात्रा ४ से ६ माशे तक की और गिलोय सत्व की मात्रा ४ रत्ती से २ माशे तक की है। इतनी ही मात्रा गिलोय के घन सत्व की होती है।

गीदड़ तम्बाकू *

नाम—

हिन्दी—गीदड़ तम्बाकू, अटविन, बिथूआ, नीलकटई, पोपधुरि। पंजाब—पोपट बूंटी, अत्नुन,बिथूआ, गीदड़ तमाखू, नील कटई। लेटिन—Heliotropium Europium, (हेलिओट्रोपियम यूरोपियम)।

वर्णन—

यह वनस्पति कश्मीर, पंजाब, राजपूताने का रेगिस्तान, सिंध और बलूचिस्तान में पैदा होती है। यह एक सीधी वनस्पति है। इसका तना रुंएदार, पत्ते अण्डाकार और रुएंदार और फल लम्ब गोल है। औषधि प्रयोग में इसके पत्ते काम आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति वमन कारक होती है। सर्प के विष में इसको तम्बाकू के तेल के साथ खिलाते हैं और पत्तों को पीसकर कर काटी हुई जगह पर लेप करते हैं। बिच्छू के विष पर इसके पत्तों को अरंडी के तेल में उबालकर लगाते हैं। घावों को पूरने और साफ करने में भी इन पत्तों को अरण्डी के तेल में उबाल कर बांधते हैं। इन पत्तों को लपेट कर कान के अन्दर रखने से कान के दर्द में भी लाभ होता है।

महस्कर और केस के मतानुसार यह औषधि सर्प और बिच्छू के जहर पर निरुपयोगी है।

गुग्गिलाम

नाम—

तामील—करुन्दलवई, कक्रडामर, तंगगम, तम्बई, तंबुगई। तेलगू—गुग्गिलम, जलारि, नलडामर, गुग्गिलाम। मलयालम—टरकम।

वर्णन—

यह वनस्पति कुड़पा के पहाड़ों में, उत्तरी अरकॉट में ३००० फीट की उंचाई तक होती है। इसका एक बड़ा वृक्ष होता है। यह गोल और तीखी नोक वाला होता है। इसकी फलियां दो सें० मी० लम्बगोल और तीखी नोक वाली होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी राल बाह्य उत्तेजक पदार्थ के रूप में काम में ली जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी राल उपचार में उपयोगी है।

---

* नोट—एक गीदड़ तमाखू और होती है, उसको लेटिन में Verbascum Thapsus. व्हरबेस्कम थेप्सस कहते हैं। उसका वर्णन "अरण्य तम्बाकू" के नाम से इस ग्रन्थ के पहिले भाग में पृष्ठ १२५ पर दिया गया है।

गुंजा (चिरमिटी)

नाम—

संस्कृत—गुंजा, गुंजिका, अंगार वल्लरी, रक्तिका, कृष्ण-चूड़िका, शिखंडी, सौम्या, कम्बोजि श्वेतगुंजा। हिन्दी—गुंजा, चिरमिटी, घूंघची, गौंचि। बंगाली—कुंच, गुंच, चुनहटी। बम्बई—घुंघची, गुंजा। गुजराती—चनोटी, चणोटीराती, चणोटी धोली। मराठी—गुंज, मदलवेल। पंजाब-लाबरी, रत्ती। तामील—अरिंगम, कंदम, कुरुविदम, मञ्जुरगम्। तेलगू—अतिमधुरम, गुरिजा, गुरुविन्दा। उर्दू—घुंचि। अरबी—एनुदिक। फारसी—चश्मेखरुस, चश्मकुरोष। लेटिन–Abrus Precatorius (एब्रस प्रिकेटोरियस)

वर्णन—

चिरमिटी के बीज प्रायः सारे हिन्दुस्तान में रत्तियों के तौल में काम में लिये जाते हैं। इसलिये ये सब दूर मशहूर हैं। यह एक परान्नभोगी लता होती है। इसकी शाखाएं लचीली होती हैं। इसके पत्ते इमली के पत्तों की तरह होते हैं और खाने में मीठे लगते हैं। कई जगह ये पत्ते पान में रखकर खाये जाते हैं। इसके फूल सेम के फूलों की तरह और फली भी सेम के सदृश गुच्छे वाली होती है। ये फलियां चपटी होती हैं। इनके अन्दर चिरमियें निकलती हैं जो अत्यन्त सुन्दर लाल रंग की और मुँह पर काले धब्बे वाली होती है। ये ऊपर से अत्यंत चिकनी और चमकदार होती हैं। इसकी एक जाति और होती है, जिसका रंग बिलकुल सफेद होता है। उसको सफेद घूंघची कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार दोनों प्रकार की घूंघचें स्वादिष्ट, कड़वी, बल कारक, गरम, कसैली, चर्मरोग नाशक, केशों को हितकारी, रुचिकारक, शीतल, वीर्यवर्द्धक तथा नेत्र रोग, विष, पित्त, इन्द्रलुप्त, व्रण, कृमि, राक्षस, ग्रह पीड़ा, कण्डु, कुष्ठ, कफ, ज्वर, मुख रोग, वात, भ्रम, श्वास, तृषा, मोह और मद का नाश करती है। इसके बीज वमनकारक और शूल नाशक होते हैं। इसकी जड़ और पत्ते विषनाशक होते हैं। सफेद गुंजा वशीकरण के काम में आती है।

इसकी जड़ और पत्ते मीठे होते हैं। इसका फल कड़वा, कसैला, कामोद्दीपक और विषैला होता है। यह कफ कारक, पित्त निवारक, सौन्दर्य वर्द्धक, और रुचिकारक होता है। नेत्ररोग खुजली, चर्मरोग और घावों में भी उपयोगी है। इसकी जड़ और इसके पत्ते ज्वर, मुंह की सूजन, दमा, प्यास, वक्ष की ग्रंथि, और दांतों की सड़न में लाभदायक है।

वाग्भट्ट के मतानुसार इसकी जड़ सर्पदंश पर लगाई जाती है और पत्तों को पीस कर वमन कराने के लिये पिलाते हैं।

इसके बीज जहरीले होते हैं और स्नायु मण्डल के विकारों के उपयोग में आते हैं। चर्मरोग, व्रण और सिर की गंज में इनका लेप किया जाता है। पक्षाघात, जोड़ों के दर्द और अनिद्रा में भी इनके

लेप से लाभ होता है। सफेद कुष्ट में इन बीजों को चित्रक की जड़ के साथ लेप किया जाता है। इसके पत्तों को सरसों के तेल में उबाल कर उस तेल को जोड़ों के दर्द पर लगाने से दर्द मिट जाता है।

रासायनिक विश्लेषण—

रासायनिक विश्लेषण से इसके अन्दर पाया जाने वाला प्रधान तत्व एब्रिन है। इसीकी वजह से चिरमी के बीजों का पानी बनाकर (इन बीजों को कूट कर पानी में गला देते हैं और बाद में उस पानी को छान लेते हैं) आखों में डालने से जलन पैदा होती है। एब्रिन के अतिरिक्त इसमें प्रोटीन, एंब्रिम, एबसिएसिड और हेमेग्लुटिनिन तथा यूरीज नामक पदार्थ भी रहते हैं। इसके बीजों के छिलकों में एक लाल तत्व पाया जाता है। सफेद बीजों वाली जाति में एब्रिन और ग्लिसिरिझन नामक पदार्थ रहते हैं। इस जाति के पत्तों को अकेले या कबाब चीनी के साथ चूसने से स्वर का मोटापन मिट कर स्वर सुरीला हो जाता है। मुखव्रत में भी ये लाभ दायक हैं।

इसमें पाया जाने वाला एब्रिन नामक पदार्थ एक बहुत ही तेज और विषैली वस्तु है। एब्रिन में दो तत्व पाये जाते हैं। एक ग्लोबुलिन और दूसरा एलबुमोज यह (एब्रिन) बहुत तेज और चिड़-चिड़ा पदार्थ है। इसको लगाने से सूजन व चमड़ी से खून निकलना शुरू हो जाता है। मुंह और गले में यह विशेष तेजी नहीं दिखाता। थोड़ी मात्रा में यह पेट के अन्दर भी नुकसान नहीं पहुँचाता और पचा लिया जाता है। एब्रिन की एक आश्चर्य जनक बात यह है कि अगर यह साधारण मात्रा में इंजेक्शन के द्वारा जानवरों के शरीर में पहुँचाया जाय तो उन पर विष असर नहीं करता।

आर्य लोग बहुत पुराने समय से इस वस्तु को औषधि प्रयोग में लेते आ रहे हैं। सुश्रुत के समान प्रामाणिक ग्रंथों में भी इसका उपयोग बतलाया गया है। इसके पत्ते स्वाद में मीठे होते हैं और इनका रस गले की खराबी, स्वरभंग और गले के खुरदरे पन को मिटाने के लिए काम में लिया जाता है।

एब्रिन या इसके छिलके रहित बीजों का शीत निर्यास पलकों की सूजन और अनीलिका के विकार में लाभ दायक होता है। इसमें बहुत तेज जलन लगती है। यद्यपि इससे कुछ मामलों में सुधार होता है मगर यह इलाज बहुत खतरनाक होता है। असह्य जलन के साथ २ आखों को और भी नुकसान पहुँचने का अंदेशा रहता है। इसलिये इसका प्रयोग सर्व साधारण को कदापि न करना चाहिये।

नेत्र रोगों के प्रसिद्ध डाक्टर दिवेकर लिखते हैं कि आख के अन्दर की पुरानी खोल और फूली को मिटाने के लिये यह वस्तु बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। खील या फूली का रोग जब पुराना हो जाता है तब रोगी की आखों में जान बूझ कर ललाई पैदा करना पड़ती है। उसके बिना ये रोग नष्ट नहीं हो सकते। इसलिये ऐसे रोगियों की आखों में चिरमिटी का उपयोग करने से उनकी रक्तहीन और फीकी आंखें सुर्ख अर्थात् लाल हो जाती हैं और उनके द्वारा खोल और फूली में रक्त का संचारण होकर वे नष्ट हो जाती हैं। इस काम के लिये चिरमिटी के सफेद बीजों के ऊपर के छिलकों को निकाल कर उनका कपड़छन चूर्ण करके २० तोले गरम पानी में ७० चिरमिटी का चूर्ण डालकर २४ घण्टे तक

भिगोना चाहिये। इसके बाद उस पानी को छानकर रख लेना चाहिये। इस पानी की कुछ बूंदें आंख में डालने से आखें लाल होकर दुखनी आ जाती हैं और आख के फूले में रक्त पहुंच कर वह गल जाता है। पुराने रोगों को दूर करने के लिये इससे भी जोरदार पानी बनाना पड़ता है। जिसमें २० तोला पानी के अन्दर १ तोला चिरमिटी का चूर्ण डाला जाता है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के कर्ता डाक्टर नाड करनी लिखते हैं कि चिरमिटी के ३२ दानों को लेकर उनकी मगज निकाल कर, उसका कपड़छन चूर्ण करके ४० रुपये भर ठंडे पानी में २४ घंटे तक भिगोना चाहिये। उसके बाद उसमें ४० तोला उबलता हुआ जल डालना चाहिये। जब पानी ठंडा हो जाय तब उसको छान लेना चाहिये। इस जल को आख में टपकाने से दूसरे दिन आंखें लाल होकर उनके ऊपर के पपोटे सूज जाते हैं। यह तकलीफ ५ से लेकर १५ दिन तक रहती है। उसके बाद धीरे २ घटने लगती है और उसके साथ ही रोगी खील या फूली के रोग से मुक्त हो जाता है।

जंगलनी जड़ी बूटी के लेखक लिखते हैं कि हमने भी फूली के कुछ रोगियों पर चिरमी से बनाये हुए जल का प्रयोग किया। रक्त हीन, फीकी आख वाले रोगी की आख में ३।४ बार इस जल को डालने से आखें लाल सुर्ख होकर सूज जाती हैं। तब इस जल को डालना बन्द करके उसकी आखों में प्रतिदिन गाय का घी आंजना चाहिये। अगर किसी की प्रकृति को यह प्रयोग अनुकूल न पड़े और उसको असह्य पीड़ा होती हो तो इमली के गर्भ को पानी में गलाकर उस पानी को मल छानकर आख में टपकाना और आख के आजू बाजू लेप करना चाहिये। इस प्रयोग से ८।१० दिन में आंख अच्छी हो जायगी और खील तथा फूली नष्ट हो जायगी।

आख की फूली और खील के लिये यद्यपि यह प्रयोग बहुत अद्‌भुत और लाभकारी है मगर यह इतना उग्र और कष्ट प्रद है कि कमजोर प्रकृति वाले आदमियों को और जिनकी सहनशक्ति कमज़ोर है उनको कदापि इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। इसके अतिरिक्त जिन लोगों की आखों में थोड़ी भी ललाई हो उनकी आखों में भी यह औषधि नहीं डालना चाहिये। यह प्रयोग अनुभवी वैद्यों के लिये ही उपयोगी है।

सिर के अन्दर की गज में भी चिरमिटी अच्छा काम करती है। इसके बीजों के मगज का कपड़छन चूर्ण ५ रुपये भर लेकर उसे भागरे के रस की सात भावनाएँ देना चाहिये। फिर इलायची, जटामासी, कपूर काचरी, और कूट इनको पाच पाच तोला लेकर चूर्ण कर लेना चाहिये। उसके बाद चिरमिटी के चूर्ण और इन औषधियों के चूर्ण को मिलाकर पानी के साथ पीस कर लुगदी बना लेना चाहिये। फिर एक बड़ी पीतल की कलईदार कढ़ाही में ५ सेर पानी और तीन पाव काली तिल्ली का तेल डाल कर उस कढाही के बीच में उस लुगदी को रखकर, हलकी आच पर पकाना चाहिये। जब सब पानी जलकर तेल मात्र शेष रह जाय तब उतारकर छान लेना चाहिये। इस तेल को सिर में जहा के बाल उड़ गये हों मालिश करने से नये बाल पैदा होने लगते हैं। जिन स्त्रियों को बाल बढ़ाने का शौक हो उनको भी इस तेल के प्रयोग से बड़ा लाभ होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से चिरमिटी तीसरे दर्जे में सर्द और खुश्क है। इसकी हर एक किस्म तेज होती है और ज़ख्म पैदा करती है। इसके मग़ज को पीसकर शहद में मिलाकर उसमें बत्ती तर करके रखने से बदगोश्त साफ़ हो जाता है। बच्चों के कान में एक प्रकार का रोग हो जाता है जिसको हगुड़ा कहते हैं, उसमें इसकी बत्ती बनाकर रखने से बहुत लाभ होता है। सफेद चिरमिटी के मग़ज को पीस कर तिल के तेल में मिला कर सोते वक्त मुँह पर मलकर सवेरे धो डालने से चेहरे की झाईं और मुहासे मिट जाते हैं। कामेंद्रिय को बलवान करनेवाली तिलाओं और लेपों में भी यह वस्तु डाली जाती है। मासिक धर्म से शुद्ध होकर अगर स्त्री सपेद चिरमिटी के २।३ दाने निगल लें तो उसके गर्भ रहना बन्द हो जाता है। लाल चिरमिटी के चूर्ण को लेने से भी यह काम हो सकता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार चिरमिटी विरेचक, वमनकारक पौष्टिक और कामोद्दीपक है। इसे स्नायु मंडल के विकारो पर काम में लेते हैं। जानवरों को विष देने के काम में भी यह ली जाती है। इसमें एब्रिन और ग्लूकोसाइड्स रहते हैं।

उपयोग—

गण्डमाला—इसकी जड़ और फलों का काढ़ा बनाकर उस काढ़े का जितना वजन हो उससे आधा काली तिल्ली का तेल उसमें डाल कर आग पर पचालें। जब क्वाथ जलकर तेल मात्र शेष रह जाय तब उसको उतार कर छान लें। इस तेल के मालिश से भयकर गडमाला भी मिटती है।

तिमिर रोग—इसकी जड़ को बकरी के मूत्र में घिसकर अंजन करने से असाध्य तिमिर रोगभी मिटता है।

सुजाक—सफेद चिरमी की १० रत्ती जड़ को पीस कर उस का अर्क निकाल कर मिश्री के साथ देने से सुजाक मिटता है।

श्वेत प्रदर—इसकी जड़ को रात भर जल में भिगोकर सवेरे शाम छान कर पीने से श्वेत प्रदर मिटता है।

कुक्कुर खांसी--इसकी जड़ को ढाई से तीन रत्ती तक सोंठ के साथ देने से कुक्कुर खासी मिटती है।

गठिया—इसके पत्तों को राई के तेल से चुपड़ कर गठिया पर बांधने से गठिया की सूजन उतरती है।

वादी का दर्द—इसके ताजे पत्तों का रस निकाल कर तेल में मिलाकर मालिश करने से वादी का दर्द मिटता है।

फोड़े और फुन्सी—चिरमिटी के। पारा, गन्धक, निम्बोली, भंग के पत्तो और बिनौलों के साथ पीस कर लगाने से फोड़े-फुन्सियां मिटती हैं।

स्नायुजाल की कमजोरी—आधी रत्ती से डेढ़ रत्ती तक घुंघची के चूर्ण को दूध में औटा कर इलायची भुरभुरा कर पीने से स्नायुजाल की शक्ति बढ़ती है। मगर इसको अधिक मात्रा में लेने से वमन होने लगती है।

पुरुषार्थ की कमी—सफेद चिरमिटी तथा उसकी जड़ को दूसरी दवाइयों के साथ चटनी बना कर खिलाने से पुरुषार्थ बढ़ता है।

सिर का दर्द— इसके चूर्ण को सुंघाने से सिर का तेज दर्द मिटता है।

आधाशीशी—इसकी जड़ को पानी में घिस कर नास देने से आधाशीशी मिटती है।

बवासीर—चिरमी और उसकी जड़ को नारियल के पानी के साथ देने से बवासीर में लाभ होता है।

आंख की फूली—सफेद घुंघची को मुगली एरंड के रस में घिसकर अञ्जन करने से शीतला से पैदा हुआ आंख का फूला कटता है। मगर इसके प्रयोग से आंख में असह्य जलन और सूजन पैदा हो जाती है। इसलिये इसका प्रयोग बहुत सावधानी से करना चाहिये।

प्रमेह—इसके पत्तों के रस को दूध के साथ पीने से प्रमेह मिटता है।

उपदंश—सफेद चिरमी की जड़ और सफेद गुड़हल की जड़ को पानी में घिस कर पीने से और उपदंश की टाकी पर लगाने से लाभ होता है।

नुकसान—

यह एक विषैली वस्तु है। अधिक मात्रा में सेवन करने से दस्त और उल्टियां लाती है तथा कमजोरी और बेचैनी पैदा करती है। इसके विष को दूर करने के लिये घी दूध और बेल का गूदा देना चाहिये। इसकी साधारण मात्रा १॥ रत्ती से ३ रत्ती तक की है।

गुड़पाला

वर्णन—

यह एक बेल होती है। इसकी डालियां बहुत घनी और काले रंग की होती हैं। इसकी हर डाली पर ४।५ हरे पत्ते मेंहदी के पत्तों की तरह लगते हैं। इन पत्तों को कच्ची हालत में तोड़ने से थोड़ा दूध निकलता है। इसकी जड़ कुछ खुशबूदार होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से यह सर्द और खुश्क है। यह बादी और पित्त की गर्मी को दूर करता है। पेट से खून जाने को रोकता है। भूख पैदा करता है। दस्त साफ लाता है। इसकी जड़ ज्वर और जलोदर के लिये फायदे मन्द है। (ख० अ०)

—०—

गुड़हल

नाम—

संस्कृत—अर्क प्रिया, रक्तपुष्पी, जवा, जपा, पातिका, हरिवल्लभा। हिन्दी—गुड़हल, जवा, जासूद। बंगाल—जवाफूलेरगाच्छ। मराठी—जासवंद। गुजराती—जासुम। कर्नाटकी—दासनिगे। तेलगू—दासंच्चेट्टु, मंदारपु। तामील—शेमरत्ते। अरबी—अंगारे हिन्द। फारसी—अंगारे हिन्द।

अंग्रेजी—Shoe flower (शोफ्लावर) । लेटिन—Hibiscus Rosasinensis (हिबिस्कस रोसा-सायनेन्सिस) ।

वर्णन—

गुड़हल का वृक्ष मध्यम आकार का होता है। यह प्रायः सभी बाग बगीचों में लगाया जाता है। इसके पत्ते अड़ूसे के पत्तों की तरह मगर चिकने और चमकीले रहते हैं। इसके फूल लाल, केशरी रंग के तथा कोई नारंगी और कोई पीले रहते हैं। हिन्दुस्तान में इस वृक्ष के ऊपर फल नहीं लगते। औषधि प्रयोग में विशेषकर इसके फूल ही काम में आते हैं। इसके लाल फूलो से एक प्रकार का लाल रंग भी तैय्यार किया जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से गुड़हल शीतल, मधुर, स्निग्ध, गर्भस्थ सन्तान को पुष्ट करने वाला, स्तम्भक, बालों को हितकारी और शरीर की जलन, मूत्र नाली के रोग, वीर्य की कमजोरी, बवासीर तथा गर्भाशय और योनि मार्ग की तकलीफों को दूर करता है। यह वमन कारक तथा आंतों में कृमि उत्पन्न करता है। इसके फूलो को घी में भूनकर खिलाने से अत्यधिक रज स्राव बन्द होता है। और रुधिर विकार मिटता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह वनस्पति समशीतोष्ण है। इसकी सफेद जाति कुछ सर्द होती है। यह वस्तु हृदय के लिये बहुत ही पौष्टिक पदार्थ है। यह दिल को शांति देकर उसमें प्रसन्नता पैदा करता है। गर्मी और सरदी से होने वाली दिल की धड़कन को दूर करता है। दिमाग की खराब वायु को निकाल कर भय जनित पागलपन को दूर करता है। इसका गुलकन्द या शरबत बनाकर लेने से दिल की गरमी और खून की खराबी दूर होती है इसका अर्क भी खून को साफ़ करता है। यह वस्तु मनुष्य की स्मरण शक्ति और काम शक्ति को बढ़ाने में भी अच्छा असर दिखलाती है। इसके पत्तों को सुखाकर उनका चूर्ण कर, उसमें समान भाग शक्कर मिलाकर नौ माशे की मात्रा में चालीस दिन तक लेने से मनुष्य की कामशक्ति बढ़ती है।

सुजाक के अन्दर भी यह औषधि अच्छा लाभ करती है। इसके पौने दो तोला पत्ते लेकर रात में पानी में भिगो देना चाहिये। सवेरे उनका लुआब निकाल कर मिश्री मिलाकर पीने से सुजाक में लाभ होता है। सुजाक के रोगी को पहले दिन इसका एक फूल बताशे के साथ खिलाना चाहिए दूसरे दिन दो तीसरे दिन तीन, इस प्रकार पाचवे दिन पांच फूल खिलाना चाहिये फिर एक २ फूल घटाते हुए दसवें दिन एक फूल खिलाना चाहिये। इस प्रयोग से सुजाक नष्ट हो जाता है।

रासायनिक विश्लेषण—

इस वनस्पति के रासायनिक विश्लेषण में Absorption Spectra और Colurreaction तथा Dyeing Properties नामक पदार्थ पाये जाते हैं।

डॉक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार इसके पत्तों का लेप सूजन को मुलायम करके दर्द को कम करता है। इसकी कलिया रक्त संग्राहक, वेदना नाशक और मूत्रल होती हैं। इसकी छाल स्नेहन और रक्त सग्राहक होती है इसमें रक्त सग्राहक धर्म बहुत साधारण है। इसके ताजा पत्तों को पीसकर बालों मे लगाने से बाल बढते हैं और उनका रंग सुधरता है। इसकी कलिया सुजाक में और छाल रक्त प्रदर में दी जाती है मगर इन रोगों में इसका गुण सुनिश्चित नहीं है।

बनावटें—

शर्बत अनगरा -गुड़हल के १०० फूल लेकर उनके हरे हिस्से को दूर करके, एक चीनी के प्याले में २० कागजी नीम्बू के रस में शाम के वक्त भिगोदें। सवेरे के वक्त उसमें डेढ़ पाव गुलाब का बढ़िया अर्क डालें और एक दिन एक रात पड़ा रहने दें। फिर मिश्री एक सेर, अर्क गावजवा आधा सेर, अर्क केवड़ा आधा पाव, बिलायती अनार का रस एक पाव, मीठे संतरे का रस एक पाव, ये सब चीजें मिलाकर उसी बरतन में डालदें और ऊपर से ६ माशे इलायची के बीज और ६ माशे धनियें का चूर्ण करके उसमें मिलादे और एक दिन रात भिगोकर, मल छानकर साफ करलें और आग पर चढ़ा कर चाशनी करलें। शरबत की चाशनी आने पर उसको उतारलें और उसमें कस्तूरी दो रत्ती, अम्बर ३ माशे और केशर ४ रत्ती इन सबको गुलाबजल में घोट कर चाशनी में मिलादें।

इस शरबत को २ तोले से ४ तोले तक की मात्रा में लेने से दिल और दिमाग को ताकत मिलती है। चेहरे की कान्ति बढ़ती है और माली खोलिया रोग में लाभ होता है।

शरबत असबालेहीन—गुड़हल के फूल १०० की सब्जी दूर करके कागजी नींबू के पाव भर रस में भिगोकर रात भर खुली छत पर रक्खें। सवेरे १ सेर मिश्री और दो सेर पानी का शरबत बनाकर उस शरबत में उन फूलो को डालकर कांच अथवा चीनी के बरतन में भरदें और उसका मुंह खूब मजबूती से बन्द करदें। फिर एक दूसरे बड़े बरतन मे पानी भरकर उस बरतन में शर्बत के बर्तन को तीन चौथाई डुबोकर तीन या चार रोज तक पड़ा रहने दें। उसके बाद उसको खोल कर ऊपर के झागों को दूर कर छानकर रखलें। इस शरबत को ३॥ तोले से १०॥ तोले तक की मात्रा में पीने से सर्दी और गरमी से होने वाली दिल की धड़कन मिटती है। गर्भाशय को फायदा होता है। पागल पन और भय मिटता है, चेहरे का रंग सुर्ख होता है तथा ताकत और भूख बढ़ती है। (ख० अ०)

—०—

गुड़मार

नाम—

संस्कृत—अजगन्धिनि, अजाश्रंगी, (?) मधुनाशिनि। हिन्दी—गुडमार। गुजराती—गुड़मार। लेटिन—gymnemaSylvestris (जिम्नेमा सिलवेस्ट्रिस)।

वर्णन—

यह एक लता होती है जो दूसरे झाड़ों के आश्रय से चढ़ती है। यह लता मध्य भारत और

पूर्वी तथा उत्तरी हिन्दुस्तान में बहुत पैदा होती है इसका वास्तविक संस्कृत नाम क्या है, इसका पता नहीं लगता। कीर्तिकर और बसु डॉक्टर वामन गणेश देसाई, कर्नल चोपरा इत्यादि प्रामाणिक ग्रंथकारों ने इसके संस्कृत नाम मेषशृंगी, अजश्रृंगी, अजगन्धिनि, इत्यादि लिखे हैं, मगर हमारे यहां यह वनस्पति बहुत बड़ी तादाद में पैदा होती है और जहां तक हमारा खयाल है यह मेषश्रृगी से भिन्न दूसरी वस्तु है। इसके पत्ते चमेली के पत्तों से मिलते जुलते होते हैं और इसकी सबसे उत्तम और निर्विवाद परीक्षा यही है कि इसका एक पत्ता खाकर के गुड़ और शकर खाई जाय तो उसका स्वाद बिलकुल मिट्टी की तरह लगने लगता है। जब तक उस पत्ते का असर जबान पर से दूर न होगा, तब तक गुड़ और शक्कर का मिठास कभी अनुभव मे नहीं आ सकता। इंडियन मेडिसनल प्लाट्स में जिसको "जिम्नेमा सिलूवेस्ट्रिस' और बंगाली में छोटी दूधीलता लिखा है उसी का एक नाम हिन्दी में गुड़मार और दूसरा नाम मेढ़ासिगी दिया है। ऐसी स्थिति में यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह जिम्नेमा सिलूवेस्ट्रिस ही असली गुड़मार है या कोई दूसरी चीज?

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति कड़वी, कसैली शक्कर के स्वाद को नष्ट करने वाली, सर्प विषनाशक, जीभ की स्वाद परखने की शक्ति को नष्ट करने वाली, पेशाब में जाने वाली शक्कर को रोकने वाली और धातु परिवर्तक है। हृदयरोग, बवासीर, प्रदाह, धवलरोग और नेत्र रोगों में भी यह लाभ दायक है।

बम्बई और गुजरात के रहने वाले लोग इसके पत्तों को मधुमेह रोग या पेशाब में जानेवाली शक्कर को दूर करने के काम में लेते हैं। बम्बई और मद्रास के वैद्य लोग इसे विस्फोटक और मधुमेह के रोग में उपयोग में लेते हैं।

सर्प विष के अन्दर इस वनस्पति का अन्तःप्रयोग और बाह्य प्रयोग करने से लाभ होता है, ऐसा लोगों का विश्वास है। मगर महस्कर और केस के मतानुसार यह वनस्पति सर्प विष में बिलकुल निरुपयोगी है।

गुड़मार और मधुमेह रोग—

इस वनस्पति की मधुमेह रोग को नष्ट करने के सम्बन्ध में बहुत प्रशंसा है। बम्बई और गुजरात में तो इसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में इतना विश्वास है कि यहां के लोग अपने बगीचों में इसको लगाते हैं। इसकी इतनी प्रशंसा को देखकर कई देशी और विदेशी डाक्टरों और रसायन शास्त्रियों ने इस वनस्पति के सम्बन्ध में, अपने मत प्रगट किये हैं।

बम्बई की हाफकीन इंस्टिट्यूट की फरमाकोलाजिकल लेबोरेटरी के रसायन शास्त्री महस्कर और केस ने महाबलेश्वर से इसके पत्तों को मंगवा कर उनका चूर्ण, गरम फांट, क्वाथ, एक्स्ट्रेक्ट और इसमें पाये जाने वाले तत्व जिम्नेमिक एसिड को निकाल कर इन सब बनावटों का उपयोग खरगोश, मेंढक और कुत्तों पर किया।

इन सब परीक्षणों के पश्चात् ये लोग इस निश्चय पर पहुँचे कि गुड़मार के असर से खून में शक्कर की मात्रा कम होती है।

इसके पश्चात् बम्बई के सुप्रसिद्ध जे० जे० अस्पताल में मधुमेह के रोगियों पर इस औषधि के परीक्षण किये गये और अन्त में इस निश्चय पर पहुँचा गया कि गुड़मार में कृमि नाशक गुण विशेष मात्रा में नहीं है। अगर इसको अधिक मात्रा में दिया जाय तो यह अरुचि, दस्त और निर्बलता पैदा करती है साधारण मात्रा में यह हृदय और रक्ताभिसरण क्रिया को उत्तेजना देती है और मूत्र तथा गर्भाशय की क्रिया को बढ़ाती है। यह खून में से शक्कर की तादाद को कम करती है।

इसकी यह क्रिया इसको मुंह के द्वारा या इंजेक्शन के द्वारा लेते ही तुरंत प्रारम्भ हो जाती है और एक निश्चित समय तक चलती है। इस औषधि का शक्कर को कम करने का यह असर जीवन क्रिया पर प्रत्यक्ष रूप से नहीं होता, प्रत्युत यह शरीर की इन्स्यूलीन पैदा करने वाली क्रिया पर असर करके उसके द्वारा यह प्रभाव पैदा करती है। इसके पत्ते मृदु विरेचक भी होते हैं।

इस वनस्पति के सूखे पत्तों का चूर्ण ३० से ६० ग्रेन तक की मात्रा में प्रतिदिन देने से तीन महीने में मधुमेह रोग (Glycosuria) पर लाभ होता है।

कर्नल चोपरा का मत—

कलकत्ता, स्कूल ऑफ ट्रापिकल मेडिसिन के प्रसिद्ध रसायन शास्त्री कर्नल चोपरा ने भी इस वनस्पति के सम्बन्ध में काफी अध्ययन किया और उसके परिणाम स्वरूप उन्होंने नीचे लिखा हुआ मत प्रकाशित किया।

"गुड़ गोबरी, यह एक पराश्रयी लता है जो मध्य भारत और दक्षिण भारत में विशेष रूप से पैदा होती है। यह हिन्दू मटेरिया मेडिका में ज्वर निवारक, अग्नि वर्धक और मूत्रल मानी जाती है। सुश्रुत के मतानुसार यह मधुमेह और अन्य मूत्र सम्बन्धी विकारों को दूर करती है। आधुनिक जन-समाज भी इसके शर्करा नाशक गुण को बहुत चमत्कारिक मानता है।

आज से करीब १०० वर्ष पहिले एजवर्थ नामक विद्वान ने यह बतलाया कि इसके पत्तों को चूसने से जबान की मीठा स्वाद ग्रहण करने की शक्ति नष्ट हो जाती है। उसके पश्चात् हूपर ने भी इस बात का समर्थन किया और यह भी बतलाया कि केवल मीठी वस्तु ही नहीं, इसके पत्तों के खा लेने के बाद जबान की कुनेन के समान कड़वी वस्तु के अनुभव की शक्ति भी जाती रहती है और करीब एक घण्टे तक वह वैसी ही बनी रहती है।

शक्कर के स्वाद को नष्ट करने की शक्ति के कारण ही इसका नाम गुड़मार रखा गया है और इसके इसी स्वभाव की वजह से लोगों का ऐसा विश्वास हो गया कि यह शरीर में की बढ़ी हुई शक्कर के प्रभाव को नष्ट कर सकती है। बम्बई और मध्य भारत में यह विश्वास अधिक प्रचलित है।

रासायनिक विश्लेषण—

सन् १८८७ में हूपर ने इसके पत्तों का रासायनिक विश्लेषण किया। इन पत्तों में उनको दो

प्रकार के रेजिन्स मिले। पहिले अलकोहल में घुलने वाले और दूसरे न घुलने वाले। न घुलने वाले रेजिन्स की मात्रा अधिक थी। घुलन शील रेजिन्स का स्वाद कुछ तीखा रहता है। यह गले में चिड़चिड़ा पन लाता है। इसमें टेनिन्स नहीं थे। इसमें एक एसिड भी पाया गया जिसमें शक्कर को नष्ट करने की शक्ति है। इसका नाम जिम्नेमिक एसिड रक्खा गया। यह इसमें ६ प्रति सैकड़ा की तादाद में पाया गया। इसके अतिरिक्त इस वनस्पति में एक नवीन कटु तत्व, कुछ टारटारिक एसिड और केलशियम आक्सेलेट पाये गये।

सन् १९०४ में पावर और ब्यूटिन ने इस वनस्पति का रासायनिक अध्ययन किया। उनको इसमें हैंट्रियेकाटेन, क्वर्सीटाल और जिम्नेमिक एसिड मिले। जिम्नेमिक एसिड को शुद्ध करके उसका विश्लेषण किया गया। इसमें शक्कर को नष्ट करने की शक्ति नहीं पाई गई और ग्लुको साइड भी नहीं मिले।

सन् १९२८ में चोपरा, बोस और चटर्जी ने इसके पत्तों के तत्वों का परीक्षण किया। इन्होंने इसमें से जिम्नेमिक एसिड को अलग किया और सोड़ियम साल्ट भी निकाले। बीमारों पर इसका परीक्षण भी किया गया तथा इसमें से एंझिम्स भी प्राप्त किया गया।

सन् १९३० में महस्कर और केस ने इसका सूक्ष्म रासायनिक विश्लेषण किया। इसके हवा में सुखाये हुए पत्तों में से खनिज तत्व निकाले गये। जो कि खासकर एलकली, फासफोरिक एसिड, फेरिक आक्साइड और मेगनेशियम के रूप में थे। इसमें दो हाइड्रो कारबन, हेंटिया कार्केन, पेन्टेट्रिया कंटेन, क्लोरोफिल, फाइटोल, रेजिन्स, टारटेरिक एसिड, इनोसिटाल; एंथाक्विनोन नामक तत्व और जिम्नेमिक एसिड पाये गये।

औषधि शास्त्र मे उपयोगिता—

इस वनस्पति के प्रभाव खरगोश इत्यादि पशुओं के ऊपर आजमाये गये, उनको इसके सब क्यूटेनिस इंजेक्शन दिये गये। इन इंजेक्शनों में जिम्नेमिक एसिड के अतिरिक्त इसके पत्तों का रस, एलकोहालिक एक्स्ट्रेक्ट्स और जिम्नेमिक एसिड से प्राप्त किया जाने वाला सोड़ियम साल्ट भी था। इन सबके दिये जाने पर भी जानवरों के रक्त में शक्कर की तादाद कम न हुई। संभवतः इसका कारण यह हो कि जानवरों के लीव्हर में शक्कर अधिक बनती है इसी से शायद रक्त की शक्कर कम न हुई हो! मगर यह बात ध्यान में रखने की है कि जिन जानवरों पर यह आजमाई गई उनको ३६ घण्टे से कुछ खाने को नहीं दिया गया था।

यह वनस्पति मधुमेह के कई रोगियों पर भी प्रयोग में ली गई। ये शुद्ध मधुमेह के रोगी थे। इनका २४ घण्टे का मूत्र इकट्ठा किया गया और उसकी जांच की गई। समय २ पर रक्त में पाई जाने वाली शक्कर की परीक्षा भी की गई और उसका वजन भी लिया गया।

छः बीमारों में से ४ को इसके पीसे हुए पत्तों का चूर्ण ६० ग्रेन की मात्रा में दिन में तीन बार दिया गया। इस तरह प्रतिदिन १८० ग्रेन पत्तों का चूर्ण प्रति रोगी को दिया गया मगर उसके बाद भी इस वनस्पति ने रक्त और मूत्र के अन्दर की शक्कर पर कोई प्रशंसनीय प्रभाव नहीं बतलाया। उपचार

के अन्त में इनमें से कुछ बीमारों को कुछ लाभ अवश्य नजर आया और उनके रक्त में भी कुछ सुधार हुआ, मगर यह सुधार इतना कम था कि वह खान पान के सयम से भी पैदा किया जा सकता है।

मतलब यह है कि अभी तक इसके सम्बन्ध में जितने अनुसन्धान किये गये उनमें मधुमेह पर इसके विशेष प्रशंसनीय प्रभाव दृष्टि गोचर नहीं हुए। फिर भी इसके सम्बन्ध में निश्चित सम्मति नहीं दी जा सकती। मधुमेह रोग में इसकी वास्तविक उपयोगिता को जानने के लिये इसको अभी और अजमाने की तथा इस पर विशेष अध्ययन करने की आवश्यकता है।

बनावटें—

मधुमेह नाशक गोली—गुड़मार के पत्ते १० तोले, जामुन की गुठली ५ तोले, सूंठ ५ तोले, इन सबका कपड़छन चूर्ण करके उसको घीग्वार के रस में घोट कर चार २ रत्ती की गोलियां बना लेना चाहिये इनमें से तीन २ गोली दिन में तीन बार शहद के साथ देने से मधुमेह रोग में अच्छा लाभ होता है। लगातार एक दो महीने तक सेवन करना चाहिये।

नं० २—गुड़मार १८ तोला, सोंठ १८ तोला, बबूल की छाया में सुखाई हुई कोमल पत्तियां १८ तोला, जामुन की गुठलियां १८ तोला, शिलाजीत ६ तोला, प्रवाल भस्म ४ तोला, रस सिंदूर ३ तोला, लोह भस्म २ तोला; अभ्रक भस्म ३ तोला, नाग भस्म १ तोला। इन सब चीजों को कूट पीस कर, कपड़ छन करके, उस चूर्ण को घीग्वार के रस, पलाश के फूलों का रस, गुड़मार के क्वाथ और गूलर के दूध की एक २ भावना देना चाहिये। उसके बाद इसमें ६ माशे सोने के वर्क मिलाकर खूब घुटाई करवाना चाहिये और फिर इन चारों चीजों की दो २ भावनाएं और देकर दो २ रत्ती की गोलियां बना लेना चाहिये। इनमें से एक गोली सवेरे और एक गोली शाम को गुड़मार के पत्ते, गूलर की छाल, जामुन की छाल और बबूल की कूंपलों के सम्मिलित क्वाथ के साथ लेने से थोड़े ही दिनों में दुसाध्य मधुमेह भी आराम हो जाता है। मगर पथ्य में केवल तीन भाग जौ और एक भाग चने को मिलाकर उसके आटे की रोटी मट्ठे के साथ खाना चाहिये अथवा बाजरी की रोटी शहद के साथ खाना चाहिये। मूंग का उपयोग भी किया जा सकता है। मगर शक्कर, गुड़, नमक, खटाई, चांवल इत्यादि चीजों को बिलकुल छोड़ देना चाहिये। (जंगलनी जड़ी बूटी)

—०—

गुडिमुरलू

नाम—

तेलगू—गुडिमुरलू। सीलोन—मोकु, मोडुकई। लेटिन—Blastaria Garcini (ब्लेस्टेनिया गारसीनि)

वर्णन—

यह वनस्पति सीमा प्रान्त, डेकन और कर्नाटक में होती है। यह पश्चिम में सामुद्रिक

किनारे तक और सीलोन में भी होती है। यह एक पराश्रयी वनस्पति है। इसका तना नाजुक होता है। इसके पत्ते भिल्लीदार और २·५ से ५ से० मी० तक लम्बे और चौड़े होते हैं। ये फटे हुए रहते हैं। इसके नर पुष्प पीले और सफेद होते हैं। फल की चौड़ाई, लम्बाई से जियादे होती है। बीजे पीले और भूरे रहते हैं। इसकी किनारें जाड़ी होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका फल, बीज और जड़ें औषधि में उपयोग में ली जाती हैं।

गुन्दागिला

नाम—

लेटिन—Bauhinia Macrostachya

वर्णन—

यह वनस्पति सिलहट और आसाम में होती है। इसकी शाखाएँ मुलायम होती हैं। इसके पत्ते ७·५ से १० से० मी० तक लम्बे होते हैं। इसकी पंखड़िया मखमली होती हैं। इसका पापड़ा लम्बा और चपटा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति चर्मरोगों पर और घावों (जख्म) पर बहुत लाभ दायी है।

कर्नल चौपरा के मतानुसार यह विस्फोटक में लाभदायी है।

गुरगुली

नाम—

पंजाब—गुरगुली, कुरकुली, कुरकनी। गढ़वाल—भट्टला। लेटिन—Andrachine Cordifolia (एंड्रचीनी कॉर्डिफोलिया)

वर्णन—

यह एक जंगली झाड़ी होती है। जो पश्चिमी और मध्य हिमालय में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चौपरा के मतानुसार ढोरों के लिये यह वस्तु एक प्रकार का विष है।

गुरजन

नाम—

हिन्दी—गुरजन। गुजराती—गुरजन। बंगाली—गुरजन। आसाम—तिलिया गुरजन लेटिन—Dipterocarpus Turbinatus (डिप्टेरोकारपस टर्बिनेटस)

वर्णन—

यह एक बड़ा वृक्ष होता है। इसकी छाल सफेद खाकी रंग की चिकनी और साफ होती है। इसकी कोमल शाखाएं रुएंदार और मुलायम होती हैं। इसका फल गोल और फिसलना होता है। यह वृक्ष मध्य भारत, गुजरात, आसाम, चटगांव, बरमा और अण्डमान में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसमें से निकलने वाली राल (रेजिन) दाद, व्रण और अन्य चर्म रोगों पर लाभ दायक होती है। यह मूत्रल है और जननेन्द्रिय तथा श्लेष्मिक झिल्लियों (Mucous Surfaces) को उत्तेजित करती है। सुजाक और मूत्रेन्द्रिय की दूसरी जलन में जिसमें कि कोपेवा आइल उपयोग में लिया जाता है वहां पर यह भी उपयोग मे ली जा सकती है।

गुरलू

नाम—

संस्कृत—गोवेधु, गोजिन्हा, जरगर्द, क्षुद्र। हिन्दी—गुरलू, कसई, गर्गी, गरुन, दबीर, गंहुटा, गरह दुआ, संखरू। बंगाल—गुरगुर। बम्बई—कसई बीज। मराठी—रनजेंढला, रयामकई पंजाब—संखलू। राजपूताना—दभिर। बुन्देलखण्ड—गंडुला। सन्थाली—जरगदी, गरुन। मध्यप्रदेश—गल्वी, गंडुला, कसई। लेटिन—Coix Lachryma कोइक्स लेक्रिमा।

वर्णन—

यह वनस्पति भारतवर्ष के समशीतोष्ण प्रांतों में पैदा होती है। इसका पौधा ज्वारी के पौधे की तरह होता है। इसका फल लम्बगोल और रंग में नीले तथा भूरे रंग का होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति शीतल, मूत्र जनक, और शांति दायक होती है इसके बीज कड़वे, सुगन्धित, खांसी में लाभ दायक और शरीर के वजन को कम करने वाले होते हैं।

यूनानी मत से इसके बीज पौष्टिक और मूत्रल होते हैं।

कैंपबेल के मतानुसार संथाल लोग इसकी जड़ को पथरी को नष्ट करने के लिये देते हैं। मासिक धर्म की तकलीफ में भी यह उपयोगी मानी जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह रक्त शोधक है। इसकी जड़ें मासिक धर्म की अनियमितता को दूर करने के काम में ली जाती हैं।

गुरियल

नाम—

संस्कृत—गन्दारि, गिरिजा, रक्त कंचन, रक्तपुष्पा, कोविदार, इत्यादि। हिन्दी—गुरियल, बरियल, कचनार। लेटिन—Bauhinia Variegate (बोहिनिया व्हेरिगेटा)।

वर्णन—

यह वनस्पति कचनार का ही एक भेद है। इसके गुण दोष भी कचनार के ही समान है। इसका पूरा वर्णन इस ग्रंथ के दूसरे भाग के पृष्ठ ३२० पर कचनार (Bauhinia Tomenlosa) के प्रकरण में दिया गया है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति धातु परिवर्तक, पौष्टिक, और संकोचक होती है। गण्डमाल, व्रण, पेचिश, और सर्प विष में, यह उपयोग में ली जाती है।

—०—

गुरिया

नाम—

बंगाल—गुरिया, गोरिया। उड़िया—रसूनिया रसूरिया, किसूरिया। तामील—कण्डल। तेलगू—कडिला। लेटिन—Kandelia Rheedii (केडेलिया ह्वीडी)।

वर्णन—

यह वनस्पति भारत के समुद्री किनारों पर होती है। इसके पत्ते लम्बगोल और हरे रंग के होते हैं। ये पीछे की तरफ लाल और बदामी रंग के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी छाल सोंठ, पीपल या गुलाबजल के साथ में देने से मधुमेह रोग में फायदा पहुँचाती है।

गुरकमे

नाम—

हिन्दी—गुरकमे। पंजाब—रूपवरिक। फारसी—अनबे सालिब। लेटिन—Solanum. Dulcamara (सोलेनम डलकेमेरा)।

वर्णन—

यह एक प्रकार की पराश्रयी लता होती है। जो कश्मीर से गढ़वाल तक ४००० फीट से ८०००

फीट तक पैदा होती है। इसके पत्ते लम्ब गोल, फूल बैंगनी और फल पकने पर लाल होते हैं। बाजार में इसकी सूखी कोमल डालिया और लाल फल बिकते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका फल धातु परिवर्तक, मूत्रल और पसीना लाने वाला होता है। जीर्ण सन्निपात, उपदंश, कुष्ठ, चर्मरोग और विसर्पिका रोग मे यह लाभ दायक होता है। इसकी कोमल शाखाएं नींद लाने वाली मूत्रल और ग्रंथि रस को उत्तेजना देने वाली होती हैं। ये संधिवात, दुष्ट विद्रधि और गण्ड माला में भी लाभदायक हैं।

यकृत के बढ़ने पर इसका फल मकोय के बदले उपयोग में लिया जाता है। यह मूत्रल, विरेचक, और जल निस्सारक है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह हृदय को पुष्ट करने वाला धातु परिवर्तक, मूत्रल और चर्म रोग नाशक है। इसमें ग्लुकोसाइड, उपक्षार और सोलेनाइन रहते हैं।

गुलखेरो

नाम—

हिन्दी—गुलखेरो। लेटिन—Althaea Rosea. एलथिया रोज़िया।

वर्णन—

यह खतमी की ही एक जाति होती है। खतमी के फूलों को भी फारसी में गुलखेरो और लेटिन में Althaea Officinalis एल्थीया आफिसीनेलिस कहते हैं और इस वनस्पति को एल्थीया रोजिया कहते हैं। यह वास्तव मे यूनान देश की वनस्पति है। मगर भारत के बगीचों में भी बोई जाती है। इसके पत्ते मोटे, फूल बैंगनी, गुलाबी और सफेद रंग के होते हैं। ये फूल भी बड़े और प्याले के आकार के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति के बीज शांतिदायक, मूत्रल और ज्वर निवारक होते हैं। इसके फूल शीतल, और मूत्रल होते हैं। इसकी जड़ें संकोचक और शांति दायक है इनसे एक प्रकार का शान्ति दायक पेय पदार्थ तैयार किया जाता है।

स्टेवर्ट के मतानुसार पंजाब में इसके फल संधिवात में और इसकी जड़ पेचिश में दी जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीज, शांतिदायक, मूत्रल और ज्वर निवारक होते हैं। इसकी जड़ें संकोचक और शांतिदायक हैं। इसमें एल्थेइन नामक एक पदार्थ पाया जाता है। इसके गुण-धर्म खतमी से मिलते जुलते हैं।

गुलचिन

नाम—

संस्कृत—देवगंगालु, क्षीरचंपक। हिन्दी—गुलचिन, गोबरचंपा, गोलैचि। बंगाल—गोबर चंप, दलन फूल, गोबरचंपा। बंबई—खुरचापा, खैरचंपा, सोनचंपा, गुलचिन। मराठी—खैरचंपा सोनचम्पा। फारसी—गुलखिन। तेलगू—अड़विगनेरु। तामील—इलचलरी, कुपियलरी। लेटिन—Plumieria Acutifolia (प्लूमिएरिया एक्यूटी फोलिया)

वर्णन—

गुलचिन के वृक्ष छोटी जाति के और कमजोर होते हैं। इसकी शाखाओं में काफी दूध भरा रहता है। इसके पत्ते हाथ भर लम्बे होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के और बीच में पीले रहते हैं। ये गन्ध रहित होते हैं। औषधि मे इसकी छाल, फूल, पत्ते और दूध काम में आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से इसकी छाल कड़वी, तीक्ष्ण, कसैली, तीव्र विरेचक, मूत्रल, सूजन को नष्ट करने वाली, वात नाशक और पार्यायिक ज्वर को रोकने वाली है। यह कुष्ठ, खुजली, व्रण, शूल और जलोदर में उपयोगी है। इसके दूध को ४ से ६ रत्ती तक को मात्रा में शक्कर के पानी के साथ मिलाकर देने से पानी के समान पतले दस्त होते हैं और दस्त के साथ बहुत पित्त निकलता है। यह दूध अत्यन्त दाहक और उग्र होता है। कभी २ इससे जीवन भी खतरे में पड़ जाता है। इसलिये इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। इसकी छाल के क्वाथ से पहले दस्त होते हैं और फिर पेशाब की मात्रा बढ़ती है।

मलेरिया ज्वर में इसके फूल की कली नागर बेल के पान में रख कर देते हैं। जिससे बुखार का आना रुक जाता है। *गुलचिन का यह धर्म सिनकोना की छाल के धर्म के समान है।*

बदगाठ और सूजन पर इसकी छाल को पीस कर लेप करने से और ऊपर से गरम पत्ते बाधने से बहुत लाभ होता है। जोड़ों के दर्द और चर्म रोगों पर भी इसकी छाल लाभ दायक होती है।

यूनानी मत—यह दूसरे दर्जे में गरम और पहले दर्जे में खुश्क है। इसकी जड़ की छाल का काढ़ा बहुत तेज जुलाब है। यह प्राचीन प्रमेह और मूत्र सम्बन्धी रोगों में बहुत लाभदायक है। इसका लेप सूजन को बिखेर देता है। यह अर्बुद और सन्धिवात के शूल को दूर करता है। अगर इसके जुलाब से बहुत तेज दस्त आवें तो उनको बन्द करने के लिये मठा पिलाना चाहिये या मक्खन खिलाना चाहिये।

सुजाक के अन्दर भी इसकी छाल लाभ पहुँचाती है। इसके पत्तों का पुल्टिस सूजन को दूर करने के लिये लगाया जाता है। इसकी छाल नारियल के तेल, घी और चावल के साथ में अतिसार को दूर करने के लिये दी जाती है। इसके फूल की कलिया जूड़ी-ताप में पान के साथ खाई जाती हैं। इसका रस चन्दन के तेल और कपूर के साथ खुजली पर लगाया जाता है।

कम्बोडिया में इसकी लकड़ी कृमिनाशक मानी जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वस्तु विरेचक, चर्मदाहक, दद्रु नाशक और सुजाक में लाभदायक है। इसमें Agoniadin एगोनियाडिन नामक ग्लुकोसाइड पाया जाता है।

—०—

गुलतुर्रा

नाम—

संस्कृत—रत्नगंधि, सिद्धेश्वरा, सिद्धाख्या। हिन्दी—गुलतुर्रा। गुजराती—सवेसरो, कृष्णचूड़। मराठी—शंकेश्वर, अकंटक, श्वेतसेवरी। तामील—मेजकन्ने। कनाड़ी—कोंवरी। तेलगू—रत्नगंधी, सिन दुरइ। लेटिन—Caesalpinia Pulcherrinea (सेसलपिनिया पुलचेरीनिया)।

वर्णन—

गुलतुर्रे के वृक्ष १५ से २० फुट तक ऊँचे होते हैं। इसके छोटी २ पतली और चमकदार शाखाएँ लगती हैं। इसके पत्ते बबूल के पत्तों की तरह लंबाई में आधे इंच तक व चौड़ाई में १/८ इंच तक होते हैं। इसकी दो जातियाँ होती हैं। एक सफेद फूल वाली जाति और दूसरी पीले फूल वाली। दोनों जातियों के फूल वसंत ऋतु से बरसात तक आते हैं उसके बाद इन पर फलियाँ लगती हैं। ये फलिया ४ से ८ इंच तक लंबी, चपटी, कच्ची हालत में हरी, सफेद रूएँदार और पकने पर भूरे रंग की हो जाती हैं। इनके अन्दर बादामी रंग के बीज निकलते हैं। इन दोनों जातियों में पीले फूल वाले गुल तुर्रे की जड़ गीली हालत में ही गुणकारी होती है मगर सफेद फूल वाले गुल तुर्रे की जड़ गीली और सूखी दोनो हालत में गुणकारी रहती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से गुलतुर्रा शीतल, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक और गाठ, नासूर तथा वायु के रोगों को नष्ट करनेवाला होता है। यह ज्वरोपशामक भी है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह ठंडा, चिकना, कड़वा और कसैला होता है। इसके पत्तों को पीसकर लगाने से गाठ और नासूर मिटते हैं। औषधि में इसके पाचों ही अंग काम में आते हैं।

फिलिपाइन द्वीप समूह में इसके पत्ते ऋतुस्रावनियामक, ज्वरनिवारक, और विरेचक माने जाते हैं। इसका छिलटा ऋतुस्राव नियामक है और गर्भस्राव करने के उपयोग में लिया जाता है। इसके फूलों का शीत निर्यास ज्वर निवारक और वक्षःस्थल के रोगो को दूर करनेवाला होता है। इसे वायु नलियों के प्रदाह, श्वास और मलेरिया ज्वर में काम में लेते हैं।

बिच्छू का जहर और गुलतुर्रा—हालही के नवीन अनुसन्धानों में इस वनस्पति के अन्दर बिच्छू का जहर उतरने की अद्भुत शक्ति पाई गई है। बिच्छू के जहर पर यह औषधि हजारों रोगियों पर प्रयोग में आकर विजयी प्रमाणित हुई है। इसका वर्णन बड़ोदे के भूतपूर्व चीफ मेडिकल

ऑफिसर डॉक्टर सर भालचन्द्र कृष्ण भाटवड़ेकर ने सन् १८८० के सितम्बर मास के "थिओसाफिस्ट" नामक पत्र में प्रकाशित करवाया था। उसका सार इस प्रकार है।

"सन् १८७८ के फेब्रुवारी महिने मे राय बहादुर जनार्दन सखाराम गाडगिल ने बिच्छू के जहर को दूर करने वाली जड़ी का एक टुकड़ा मुझे दिया। इस टुकड़े को देने के पहिले वे भी इसे बिच्छू के कई केसों पर अजमा चुके थे। मुझे भी इस जड़ी की परीक्षा के कई अवसर मिले और मुझे। उस में बराबर सफलता मिलती गई। तब मैंने इस जड़ी को विशेष अजमाइश करने के लिये इसके बहुत से टुकड़े करके राज्य के अस्पतालोंमें परीक्षा के लिये भेज दिये।

भिन्न अस्पतालों मे कुल ८०४ मनुष्यों के ऊपर भिन्न २ जाति के बिच्छुओं के जहर पर इसको अजमाया गया और सभी स्थानों से बाकायदा रिपोर्ट मंगवाई गई। इसका परिणाम यह निकला कि कुल ८०४ रोगियों मे सिर्फ ग्यारह रोगियों को फायदा नहीं हुआ। अर्थात् प्रति सैकड़ा ६८.६ बिच्छू के जहर के रोगी इस जड़ी से बिलकुल आराम हो गये। यह परिणाम हरहालत में सन्तोष जनक कहा जा सकता है।

जिस जड़ी में ऐसा दिव्य गुण समाया हुआ है, वह किस वृक्ष की जड़ी है, यह जानना आवश्यक है। इस वृक्ष को संस्कृत में कृष्ण चूड़, गुजराती में सन्देसरा और हिन्दी में गुलतुर्रा कहते कहते हैं। इस वृक्ष की दो जातिया होती हैं। एक सफेद फूल वाली और दूसरी पीले फूल वाली। इनमें से सफेद फूल वाली जाति विशेष गुण दायक होती है। ऊपर जिन ८०४ रोगियों पर जो जड़ियां अजमाई गई थीं, उनमें दोनों जातियों की जड़िया शामिल थीं।

मिस्टर गाडगिल का कथन है कि इस झाड़ की जड़ी को खोदने में समय का बड़ा खयाल रखना पड़ता है। तीसरे पहर से लेकर सध्या तक अगर यह जड़ी खोदी जाय, तो विशेष गुणकारी होती है। इसी प्रकार और दिनों की अपेक्षा रविवार के दिन खोदी हुई जड़ी विशेष प्रभावशाली होती है। इसका कारण संभवतः यही है कि शाम के समय, वृक्ष में सब दूर समान भाग से रस फिरता होगा।

इस वृक्ष की जड़ी के दो २ तीन २ इंचके टुकडे काटकर उनको धोकर साफ करके, उपयोग में लिये जाते हैं। इनको उपयोग में लाने की रीति दिखने में बड़ी अवैज्ञानिक है, मगर लाभ करने में बिलकुल प्रामाणिक है। जहा तक बिच्छू का जहर चढ़ा हो वहां से लेकर डंक तक, इस जड़ी को फिराना चाहिये। जड़ी का एक हिस्सा शरीर के नजदीक चमड़ी से नहीं छूसके इतने अन्तर पर रखकर, ऊपर से नीचे की ओर धीरे धीरे फिराना चाहिये। एक फेरा पूरा होने पर, फिर दूसरा फेरा ऊपर से नीचे की ओर लाना चाहिये। विरुद्ध दशा में अर्थात् नीचे से ऊपर की ओर उसे नहीं घुमाना चाहिये। इस प्रकार करने से थोड़े ही समय मे विष की वेदना, नीचे उतरकर डङ्क पर आ जाती है। डङ्क पर आने के बाद उस जड़ी को डङ्क पर रख देना चाहिये। इतने पर भी जलन शान्त न हो तो जड़ी को थोड़ा सा घिसकर उसपर लेप कर देना चाहिये। जिससे डङ्क की वेदना भी दूर हो जायगी। इतने पर भी अगर जहर फिर चढ़ने लगे तो फिर इसी प्रकार प्रयोग करना चाहिये।

इस प्रकार करने से अधिकांश केसों में सिर्फ आधे घंटे में जहर उतर जाता है। परन्तु यदि डङ्क भारी होता है तो ९क घण्टा या इससे भी अधिक समय लग जाता है ऐसे मोके पर रोगी और वैद्य, दोनों को धीरज से काम लेना चाहिये।

इस जड़ी के सूख जाने पर यह जैसा चाहिये वैसा फायदा नहीं करती इसलिये जहां तक हो ताजी जड़ का उपयोग करना चाहिये। अगर सूखी जड़ मिले तो उसको थोड़ी देर तक पानी में भिगोकर फिर उपयोग में लेना चाहिये।

डाक्टर सर भाटवड़ेकर लिखते हैं कि मैंने स्वयं इस जड़ी को १०० विच्छू के काटे हुए रोगियों पर अजमाया जिनमें ९८ रोगियों को बिलकुल आराम होगया।

गुलदाउदी (सेवती)

नाम—

संस्कृत—शतपत्रिका, भृगवल्लभा, सेवती, शिववल्लभा, चन्द्रमल्लिका, इत्यादि। हिन्दी—गुलदाउदी, गुलसेवती। बंगाली—चन्द्रमल्लिका, गुलदाउदी। मराठी—गुलसेवती, तुरसीफल। बम्बई-गुलसेवती, अक्कुरकरा, चेवटी। पंजाब—गे दी, बगोर। तामील—अकरकरम, शामती। तेलगू—चुमन्ती। लेटिन—Chrysanthemum Coronarium क्रिसे थेमम कोरोनेरियम, C. Indica क्रिसे थेमम इंडिका।

वर्णन—

सेवती का क्षुप होता है। इसकी जड़ अकलकरे की जड़ के समान झन झनाहट पैदा करती है इसकी दो जातियाँ होती हैं। एक सादी और दूसरी कांटे वाली। कांटे वाली जाति को संस्कृत में कूजा और हिन्दी में सदा गुलाब कहते हैं। गुल दाऊदी की सफेद, नारगी और पीले फूल के हिसाब से तीन जातियां होती हैं। गुल दाऊदी के फूल प्रायः सभी बाग बगीचों में शोभा और सुगन्धि के लिये लगाये जाते हैं। लेटिन में इसकी दो प्रकार की जातियों का उल्लेख पाया जाता है। एक क्रिसे थेमम कोरो नेरियम और दूसरी क्रिसे थेमम इण्डिकम।

गुण दोष और प्रभाव—

(क्रिसे थेमम इ डिकम) आयुर्वेद के मतानुसार इसके फूल शीतल, कटु, पौष्टिक, वीर्य वर्धक हृदय को पुष्ट करने वाले, उत्तेजक, पित्तशामक, मल रोधक, कान्ति वर्धक, अग्नि प्रदीपक तथा त्रिदोष, मुखपाक, रक्तपित्त, रुधिर विकार और दाह को दूर करने वाले हैं। इसका फूल शीतल,कान्ति बढ़ाने वाला और वात, पित्त तथा दाह नाशक है।

इसकी जड़ के धर्म अकलकरे की जड़ के समान होते हैं। इसलिये इसको अकलकरे के बदले में उपयोग में लिया जा सकता है।

इस वनस्पति का यकृत की क्रिया के ऊपर प्रत्यक्ष असर होता है। यह यकृत की क्रिया को सुधार कर पाचन नली और सारे शरीर में जोश (उत्तेजना) पैदा करती है। इसलिये पाचन नली की शिथिलता, अजीर्ण और शारीरिक दुर्बलता में इसका उपयोग किया जाता है।

यकृत की क्रिया में सुधार होने की वजह से जीर्ण ज्वर और विषम ज्वर में भी इस औषधि से लाभ होता है। पित्त ज्वर में इसकी फांट बनाकर देने से शरीर की ताप कम होती है। वमन होकर पित्त निकल पड़ता है और पित्त के प्रकोप के लक्षण कम हो जाते हैं। कष्ट प्रद मासिक धर्म में भी इसको देने से लाभ होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार गुलदाउदी के फूल दूसरे दर्जे में गरम और पहले दर्जे में खुश्क होते हैं। ये स्वाद में तीखे और खराब होते हैं। ये मूत्रल, ऋतुस्राव नियामक, पेट का आफरा उतारने वाले, रक्त शोधक और यकृत को फायदा पहुँचाने वाले होते हैं। मूत्र सम्बन्धी रोग, पुरातन प्रमेह, कटिवात और प्रदाह में भी ये लाभ दायक हैं।

खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह वनस्पति गुर्दे और मसाने की पथरी को तोड़ने में बहुत मुफीद साबित हुई है। इसके सूखे फूल १ माशे से लेकर ६ माशे तक पीस कर समान भाग मिश्री मिलाकर खाने से गुर्दे और मसाने की पथरी टूट कर निकल जाती है अथवा इसके तीन तोले फूलों का क्वाथ बनाकर देने से भी पथरी गल कर निकल जाती है। एक अनुभवी का कहना है कि दाउदी के फूलों को पोटली में बांध कर चावल आधे पक जाने के बाद उस पोटली को उनमें छोड़ दें और जब वे पूरे पक जांय तब उस पोटली को निकाल कर फेंक दें। इन चावलों को खाने से पथरी के बीमार को नुकसान नहीं पहुँचता।

इसका बनाया हुआ काढ़ा मासिक धर्म की रुकावट को दूर करता है। वायु के उदरशूल में लाभ पहुँचाता है। सुजाक और रक्त विकार में मुफीद है। इसका लेप कफ की सूजन को बिखेरता है। जली हुई जगह पर लगाने से शान्ति पैदा करता है। इसका अर्क और गुलकन्द सरदी की वजह से पैदा हुई दिल की धड़कन को मिटाता है। दिल को ताकत देता है और प्रसन्नता पैदा करता है। इसके पत्तों का शीत निर्यास शक्कर के साथ पीने से बवासीर का खून बन्द हो जाता है। इसके हरे पत्तों को निकाल कर अण्डकोषों और गुदा के बीच में मलने से कामेन्द्रिय की शक्ति बढ़ती है। कफ की वजह से पैदा हुई ऐसी सूजन जो जोर से बढ़ती जा रही हो, उस पर एक तोला गुलदाउदी के फूलों का तीन माशे सोंठ और एक माशे सफेद जीरा के साथ लेप करने से सूजन बिखर जाती है।

इसका शीत निर्यास नेत्र रोगों को दूर करने के काम में भी मुफीद समझा जाता है। दक्षिण के निवासी इसको काली मिरच के साथ सुजाक की बीमारी के काम लेते हैं।

गुलचीनी—(क्रिसेथेमम् कोरोनेरियम) इसका छिलटा विरेचक होता है। इसे गरमी की बीमारी में काम में लेते हैं। इसके पत्ते प्रदाह को कम करते हैं। इसके फूल चेमोमाइल के प्रतिनिधि हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति जुकाम में उपयोगी है। इसमें इसेन्शियल आइल ग्लुकोसाइड और क्रिसेन्थेमम पाये जाते हैं।

उपयोग—

मूत्रकृच्छ्र—इसके पत्तों को काली मिरच के साथ पीस कर पिलाने से मूत्रकृच्छ्र मिट जाता है।

आवेश रोग—इसकी जड़ को कुलिंजन और सोंठ के साथ औटा कर पिलाने से स्त्रियों का आवेश रोग, मस्तक पीड़ा, तंद्रा और पानीझिरा मिट जाता है।

गांठ—इसकी जड़ को पीस कर पुल्टिस बनाकर बांधने से कच्ची गाठें बिखर जाती हैं और पकने वाली जल्दी पक जाती हैं।

फोड़ा—इसकी जड़ को घिस कर गरम कर पके हुए फोड़े पर लगाने से उसका मुँह खुल जाता है।

—०—

गुल दुपहरिया

नाम—

संस्कृत—बन्धुजीवक, अर्कवल्लभा, हरिप्रिया, ज्वरघ्न, रक्तपुष्पा, शरद पुष्पा, सूर्यभक्ता। हिन्दी—दुपहरिया। बंगाली—बन्धुलि, दुपहरिया। गुजराती—सौभाग्य सुन्दरी, दुपोरियों। मराठी—ताम्बड़ी दुपारी। तामील—नागपू। पंजाब—गुलदुपहरिया। लेटिन—Pentapets Phoenicea (पेंटापेटस फीनीसिया)।

वर्णन—

यह एक वर्ष जीवी वनस्पति है। जो उत्तर पूर्वीय भारत,बंगाल और गुजरात में पैदा होती है और भी कई स्थानों पर यह बाग बगीचों में लगाई जाती है। यह वनस्पति वर्षा ऋतु में पैदा होती है। इसका वृक्ष ६—७ फीट तक ऊंचा हो जाता है। इसकी शाखाएं और फूल बहुत सुन्दर होते हैं। इसके फूल सफेद, सिन्दूरी और लाल रंग के होते हैं। ये फूल दुपहर के समय खिलते हैं। इसीलिये इनको दुपहरिया कहते हैं। इसकी फली लम्बी और गोल होती है। इसके बीजों के ऊपर धब्बे लगे हुए रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से इसका फल मलरोधक, किंचित् गरम, भारी, कफनाशक, ज्वरनाशक तथा वात और पित्त को दूर करने वाला होता हैं।

चरक के मत से यह औषधि दूसरी औषधियों के साथ सर्पदंश में काम में ली जाती हैं। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्पदंश में उपयोगी नहीं है।

———

गुलशब्बो

नाम—

संस्कृत—रजनी गन्धा। हिन्दी—गुलशब्बो। मराठी—गुलछड़ी। बंगाल—रजनीगंधा। पंजाब—गुलशब्बो। तेलगू—नेलशपेगा. वदशपेगा। बम्बई—गुलचेरी। लेटिन -Polianthes Tuberosa पोलिएन्थस टयूबरोसा।

वर्णन—

इस वनस्पति का मूल स्थान मेक्सिको है। हिन्दुस्तान के बगीचों में भी यह बोई जाती है। इसकी जड़ें गठान दार होती हैं। इसके फूल,सफेद, मुलायम,लम्बे और बहुत सुगन्धित रहते हैं। इनका इतर भी निकाला जाता है। औषधि में इसकी जड़ विशेष काम में आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वस्तु रूखी, गरम, मूत्रल, और वमन कारक होती है। इसके कन्द को सुखाकर उसका चूर्ण दूध के साथ देने से अथवा उसको ठंडाई के साथ पीसकर पिलाने से सुजाक में लाभ होता है। इसको हलदी के साथ पीसकर, मक्खन के साथ मिलाकर छोटे बच्चों को होने वाली लाल फुन्सियों पर लगाने से बड़ा लाभ होता है। इसको दुर्वा के रस के साथ पीसकर गठान पर लगाने से गठान बिखर जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके फूल मूत्रल और वमन कारक होते हैं। इनमें एक प्रकार का उड़न शील तेल पाया जाता है।

गुलनार

नाम—

यूनानी—गुलनार।

वर्णन—

इसका वृक्ष अनार के वृक्ष की तरह होता है। इस वृक्ष पर फल नही आते। किसी २ वृक्ष में अगर कभी कोई फल आ जाता है, तो वह बहुत अशुभ माना जाता है। इसके सफेद, लाल और काले रंग के फूल लगते हैं। इसकी दो जातिया होती है। एक जगली और दूसरी बागी। जंगली जाति बागी जाति से ज्यादा प्रभाव शाली होती है। फारस या मिश्र का गुलनार सबसे अच्छा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से यह पहले दर्जे में सर्द और दूसरे दर्जे में खुश्क है। यह दस्त को बन्द करता है। शरीर के किसी भी अंग से बहते हुए खून को रोकता है। पौष्टिक है। पित्त की तथा खूनी दस्तों को बन्द करता है। इसके काढ़े से कुल्ले करने से मुंह के छाले मिटते हैं और दांत मजबूत होते हैं तथा मुंह

की बदबू दूर होती है। इसके पत्तों को पीस कर लगाने से पुराने जख्म या फोड़े भर जाते हैं। आंतों के जख्म, पेचिश और कफ के साथ खून आने की बीमारी में यह बहुत मुफीद है। इसके काढ़े से योनि मार्ग को धोने से प्रदर और गर्भाशय में लाभ होता है। इसकी मात्रा ७ माशे तक की है। (ख० अ०)

—०—

गुनभटारंगी

नाम—

हिन्दी—गुनभटारंगी।

वर्णन—

इसकी बेल करेले की बेल के समान होती है। इसकी लकड़ी का स्वाद मुलेठी के समान होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह गरम और खुश्क तथा खांसी और कफ के रोगों में लाभ दायक है। पेट के दर्द को फायदा करती है। पित्ती उछल आने में तथा पीनस की बीमारी में भी यह मुफीद है। (ख० अ०)

गुलाब

नाम—

संस्कृत—महाकुमारी, शतपत्री, अति मञ्जुला, तरुणी, शतदला, इत्यादि। हिन्दी—गुलाब। बम्बई—गुलाब। मराठी—गुलाब। गुजराती—गुलाब। लेटिन—Rosa Centifolia (रोभा सेंटिफोलिया), Rosa Damascena (रोभा डेमेस्केना)।

वर्णन—

गुलाब के फूल सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध हैं। अतः इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं। इसकी सफेद, गुलाबी, आदि कई जातियां होती हैं। इनको लेटिन में रोजा डेमेस्केना, रोजा सेंटिफोलिया रोजा इरिडका, रोजा एलबा इत्यादि नाम से पहिचानते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से गुलाब कडुआ, शीतल, कसैला, दस्तावर, रुचि कारक वात नाशक, कुष्ठनाशक, मुँह के मुँहासों को दूर करने वाला, सुगन्धित तथा दाह, ज्वर, रक्तपित्त, और विस्फोटक को नाश करने वाला होता है।

यूनानी मत—यह पहले दर्जे में सर्द और दूसरे दर्जे में खुश्क होता है। इसके ताजा फूल दस्तावर और सूखे फूल काबिज होते हैं। यह हृदय को ताकत देकर तबियत में प्रसन्नता पैदा करता है।

गर्मी से पैदा हुए सिर दर्द, बुखार, दिल की धड़कन और बेहोशी में यह लाभ दायक है। इसका लेप सूजन को दूर करता है। इसको सूंघने से दिल और दिमाग़ को ताक़त मिलती है मगर कमजोर दिमाग़ वालों के लिये यह खुशबू नुकसान करती है। इसके सूखे फूलों का चूर्ण चेचक के बीमार के बिस्तर पर डालने से दानों के जख्म जल्दी सूख जाते हैं। इसके अर्क को आंख में टपकाने से गरमी की वजह से आई हुई आंख अच्छी हो जाती है। इसके फूलों का काढ़ा बनाकर कुल्ले करने से मुँह के छाले मिट जाते हैं तथा मसूड़े और दांत मजबूत होते हैं। इसके फूलों को पीसकर शरबत बनफ्शा या शरबत जूफ़ा के साथ चाटने से दमे की बीमारी में लाभ होता है। गुलाब के फूलों का सेवन दिल, फेफड़ा, मेदा, गुर्दा, आंते, गर्भाशय और गुदा को बहुत ताक़त देता है। इसके सेवन से मेदा और जिगर के सुद्दे दूर हो जाते हैं और मेदे का ढीलापन मिट जाता है। गुलाब के फूलों को पीसकर योनि मार्ग में रखने से प्रदर में लाभ होता है, गर्भाशय का दर्द मिटता है और योनि तंग हो जाती है। इसके ताजे फूलों को अधिक मात्रा में खाने से मनुष्य की काम शक्ति कमजोर हो जाती है। इस की जड़ को सांप के काटे हुए स्थान पर लगाने से लाभ होता है।

इसके ताजे फूलों की मात्रा १ तोले से ३ तोले तक और सूखे फूलों की मात्रा ७ माशे से १४ माशे तक है। इसका प्रतिनिधि बनफ्शा और दर्प नाशक अनीसून है।

—०—

गुलाबी—

नाम—

लेटिन—रोसा सेंटिफोलिया। (Rosa centifolia)

वर्णन—

इसका फूल बड़ा और हलका गुलाबी होता है। इसकी लाल और सफेद फूल के हिसाब से दो जातियां होती हैं। यह शीतल, विरेचक कामोद्दीपक तथा त्रिदोष, पित्त, कोढ़, कफ और रक्त विकार में लाभदायक है। बिच्छू के विष पर भी यह लाभदायक है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ आंतों को सिकोड़ने वाली और घावों को पूरने वाली होती है। यह प्रदाह को कम करती है। इसके पत्ते सिरके घाव और नेत्र रोगों में लगाये जाते हैं। दांतों के लिये भी यह मुफ़ीद हैं। यकृत की शिकायतों और बवासीर में भी इनके सेवन से लाभ होता है। इसके फूल दमे में उपयोगी हैं, ये घावों को पकाने के लिये भी मुफ़ीद हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह संकोचक, मृदु विरेचक और पेट के आफरे को दूर करने वाला होता है।

—०—

गुलाब सफेद—

नाम—

लेटिन—Rosa Alba. रोज एल्बा।

वर्णन—

यह एक सफेद जाति का गुलाब होता है, जिसे सेवती भी कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से इसका फूल कड़वा, कसैला, तीखा, सुगन्धित, शीतल, आंतों को सिकोड़ने वाला, कामोद्दीपक और त्रिदोष नाशक होता है। मुखशोथ, कुष्ट, पित्त की जलन और रक्त की खराबी को यह दूर करता है। यह कान्ति वर्द्धक और रुचि वर्द्धक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके फूल रक्तवर्द्धक, मृदु विरेचक और पेट के आफरे को दूर करने वाले होते हैं। सरदी, नजला, सिरदर्द, दांत का दर्द, वायु नलियों के प्रदाह, कुक्कुर खांसी, चक्षुरोग और सन्निपात में यह लाभदायक है।

बेडन पावेल के मतानुसार इसके फूल ज्वर में शान्ति दायक वस्तुकी तौर पर दिये जाते हैं। यह हृदय की धड़कन में लाभ दायक है।

गुलाब सादा—

नाम—

लैटिन—Rosa Indica. रोज इण्डिका।

वर्णन—

इसका फूल बड़ा सफेद, लाल, पीला और बैगनी रंग का होता है। यह पौधा चीन में पैदा होता है। चीन में इसका फल घाव, मोच, चोट और दुष्ट व्रणों पर लगाने के काम में आता है।

गुलाब का फल—

जब गुलाब के फूल की पत्तियां झड़ जाती हैं तब इसका फल नजर आता है। पकने के पश्चात् इसका रंग नजर आ जाता है। बस्तानी गुलाब का फल उन्नाब की तरह होता है। इसका स्वाद इसका मीठा होता है। इसके अन्दर जर्द और लम्बे २ सफेद दाने होते हैं। (ख० अ०)

गुण दोष और प्रभाव—

गुलाब का फल दूसरे दर्जे में खुश्क और सर्द है। यह कब्जियत करता है। इसको खाने से यकृत, मेदा और हृदय को बल मिलता है। इसको पीस कर दांतों पर मलने से दांत मजबूत होते हैं।

इसके काढ़े से कुल्ले करने से गले की सूजन दूर होती है। घाव से बहते हुए खून पर इसको पीस कर भुर-भुराने से बहता हुआ खून बन्द हो जाता है।

इसके अधिक प्रयोग से फेफड़े को नुकसान होकर खांसी पैदा हो जाती है। इसके दर्प को नाश करने के लिये गुलकन्द और कतीरे का प्रयोग करना चाहिये।

गुलाब फल

यह एक जाति का मेवा है। जो बंगाल और दक्षिण में पैदा होता है। इसमें गुलाब के फूल की सी खुशबू आती है। इसलिये इसको गुलाब फल कहते हैं। इसका फल पिश्ते के बराबर होता है। इस फल पर एक छिलका रहता है। इस छिलके को छीलने पर भीतर से चिलगोजे की तरह मगज निकलता है। जिसका रंग ऊपर से हरापन लिये हुए सफेद और भीतर से पीला होता है।

यूनानी मत से यह मेवा शीतल, तर और हृदय तथा आमाशय को ताकत पहुँचाने वाला होता है। (ख०अ०)

गुलजाफरी पूर्णका

नाम—

पंजाब—गुल जाफरी पूर्णका, खेरपोश, कुरु। लेटिन—Limnanthemum Nymphacoides. (लिमनेंथमम निम्फेकोइडस)

वर्णन—

यह वनस्पति मध्य यूरोप से लगाकर चीन तक होती है। यह एक जल में पैदा होने वाला पौधा है। जिसका तना लम्बा, पत्ते गोल और कटी हुई किनारों के, फूल पीले और फली लम्ब गोल होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चौपरा के मतानुसार इसके पत्ते नियत समय पर होने वाले सविराम मस्तक शूल पर लाभदायक होते हैं।

गुलशाम

नाम—

हिन्दी—गुलशाम। मराठी—दशमूलि, गुलशाम। पोरबन्दर—दसमूलि। कच्छी—लवो-असेरियो। लेटिन—Doedalacanthus Roseus (डिडाल केन्थस रोसिअस)।

वर्णन—

इसके पौधे दो ढाई हाथ ऊँचे होते हैं। इसकी शाखाएँ चौधारी होती हैं। पत्ते लम्बे और आमने सामने होते हैं। फूल बेंगनी और नीले रंग के होते हैं। इसके फूलों में एक तेज और खराब गन्ध आती है। इसकी फलिया आधा इंच लम्बी होती हैं। यह वनस्पति कच्छ, कोकण, और दक्षिण में घनी झाड़ियों और झरनों के किनारे तथा पहाड़ों पर बबूल इत्यादि झाड़ों के नीचे पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ को दूध में उबाल कर देने से श्वेत प्रदर में लाभ होता है। ज्वर, प्रदर और संखिपात में इसकी जड़ का क्वाथ बनाकर देने से फायदा होता है। इसकी जड़ गर्भस्थ सन्तान को भी बल देती है।

गुलबांस

नाम—

संस्कृत— संध्याकलि, कृष्ण केलि, सध्या काली। हिन्दी— गुलबांस, गुलेब्बास। मराठी— गुलबास। बंगाल— भेरल मल। अरबी— गुलबास। बम्बई— गुलअब्बास। पंजाब— गुलअब्बास, अब्बासी। फारसी— गुलेबास, गुलिबास। उर्दू— गुलेब्बास। तामील— अतिनरुल,पट रचि। तेलगू— चन्द्रकान्ता, चन्द्रमल्लि। लेटिन—Mırabılıs Jalapa (मिराबिलिस जेलप)।

वर्णन—

इसके पत्ते ६-७ इंच तक लम्बे होते हैं। इसकी डालिया बहुत कमजोर, इसकी जड़ें बहु वर्ष स्थायी और कन्दमय होती हैं। एक बार जमने के पश्चात इनको नष्ट करना मुश्किल होता है। इसके फूल प्रायः बैंगनी रंग के तथा लाल, पीले और सफेद रहते हैं। यह फूल सायंकाल के समय में खिलता है। इसमें खुशबू नहीं होती। इसके फूल बरसात में खिलते हैं। इसके बीज काली मिर्ची की तरह होते हैं इसकी जड़ पुरानी पड़ने के बाद चोबचीनी की तरह गुण कारी हो जाती है। यह वनस्पति सन् १५६६ मे भारत वर्ष में लाई गई है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते स्वाद में तीक्ष्ण, गठान को पकाने वाले, कामोद्दीपक, उपदंश में लाभदायक और। प्रदाह को कम करने वाले होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क होता है। इसकी जड़ दूसरी दर्जे में गरम और तर है फूल मौतदिल तथा बीज सर्द और खुश्क होते हैं। इसके पत्तों को फोड़े पर बांधने से फोड़े जल्दी ही पक जाते हैं। इसके फूल और इसकी जड़ वीर्य को गाढ़ा करने वाली और कामशक्ति को बढ़ाने वाली होती है। यह खून को साफ करती है। कमर के दर्द को मिटाती है। इसके पत्ते जलोदर के रोग में लाभदायक हैं। इनको १॥ तोले की मात्रा में घोटकर दिन में २।३ बार पीने से .जलोदर और पीलिया में

लाभ होता है। इसकी जड़ को ऊपर से छीलकर १॥ तोले की मात्रा में तवे पर भून कर नमक और काली मिर्च के साथ खिलाने से तिल्ली की सूजन मिट जाती है।

बवासीर के रोग में इसकी जड़ के चूर्ण को समान भाग सोंठ, मिर्च और पीपल के चूर्ण के साथ मिलाकर शहद में चटाने से बड़ा लाभ होता है। कब्जियत की वजह से पित्त कुपित होकर जब शरीर में दाह होता है और चमड़े पर कडू (खुजली) पैदा हो जाती है। तब उस पर इसके पत्तों के रस को मालिश करने से लाभ होता है। चोट, मोच, सूजन इत्यादि पर इसके पत्तों को ठण्डे पानी में पीस कर लगाने से शान्ति मिलती है।

फिलिपाइन द्वीप समूह में इसकी जड़ को विरेचक वस्तु की तौर पर काम में लेते हैं। इसके पत्ते व्रण और विस्फोटक रोग पर बांधे जाते हैं।

डायमॉक के मतानुसार कोकण में इसकी जड़ को सुखाकर, पीसकर, मसालों के साथ मिलाकर पौष्टिक वस्तु के बतौर खाने के काम में लेते हैं। शस्त्र के जखम पर इसको लगाने के काम में लेते हैं।

गुल चांदनी

नाम—

यूनानी—गुल चांदनी।

वर्णन—

गुल चांदनी एक झाड़ीनुमा पौधा होता है। इसके पौधे बाग बगीचों में बहुत लगते हैं। यह पौधे गुड़हल के पौधे की तरह होते हैं। यह रब्बी की मौसम में खिलता है। इसके पत्ते बहुत मुलायम होते हैं। इसकी फलियाँ सींग की तरह मालूम होती हैं। यह सफेद, नरम और मुलायम होती हैं। इसके फूल गुलाब के फूल की तरह मगर उससे छोटे होते हैं। ये चांदनी रात में खूब खिलते हैं। इनमें नीलोफर की सी खुशबू आती है। इसके बीज कौड़ी की तरह होते हैं। ऐसा कहा जाता है कि काले दाने का पेड़ और गुल चादनी का पेड़ एक ही समान होता है। छोटी किस्म को काला दाना कहते हैं और बड़ी किस्म को चादनी का बीज कहते हैं। चादनीं का गुलकन्द भी गुलाब के फूलों के गुलकन्द की तरह बनाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

चांदनी के फूल मौतदिल अर्थात् समशीतोष्ण होते हैं। फूल के सिवाय इसके दूसरे सब अङ्ग सर्द और खुश्क होते हैं। इसका फूल हृदय के लिये एक पौष्टिक वस्तु है। यह दिल की धड़कन को दूर करके प्रसन्नता पैदा करता है। तबियत में पैदा होने वाले वहमीले खयालातों को दूर करता है। प्रतिदिन इसके तीन फूल तीन बताशों के साथ लगातार दो हफ्तों तक खाने से गरमी की वजह से पैदा हुई दिल की धड़कन और दिल की कमजोरी मिट जाती है। इसके अतिरिक्त सिर दर्द, जुकाम, नजला, प्यास, पेशाब की जलन, शर्करा प्रमेह और कामेंद्रिय की कमजोरी में भी यह लाभ पहुँचाता है। इसका गुलकंद भी दिल की धड़कन में मुफीद है।

गुलाब जामन

नाम—

संस्कृत—बृहत्फल, महाफल, फलेन्द्र, राजजांबू, शुकप्रिया इत्यादि। हिन्दी—गुलाब जामन, बंगाली—गुलाब जामन, जमकल। बम्बई—गुलाब जामन, सफरजंब। उर्दू—गुलाब जामन। अरबी—तोफा। तामील—पेरुनवल, संबुनवल। तेलगू—जंबूनरंदू। लेटिन—Eugenia Jambos, यूगेनिया जंबोस

वर्णन—

गुलाब जामन का वृक्ष जामुन के वृक्ष से कुछ छोटा होता है। यह विशेष कर बंगाल में पैदा होता है। इसके फल में गुलाब की सी खुशबू आती है, इसलिये इसको गुलाब जामन कहते हैं। इसका स्वाद मीठा होता है। इसके अन्दर का गूदा सफेद रंग का होता है और गुठली गोल और भूरी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत से इसकी छाल मीठी, कसैली, गरम और आंतों को सिकोड़ने वाली होती है। दमा, प्यास, पेचिश, वायु नलियों के प्रदाह और स्वर की खराबी को यह दूर करती है। इसका फल मीठा स्वादिष्ट, आंतों को सिकोड़ने वाला, भारी और त्रिदोष नाशक होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क होता है। इसका फल दिल, दिमाग और जिगर को तसल्ली पहुँचाता है। पित्त की घबराहट को दूर करता है, मेदे को ताकत देता है। इसके बीज कब्जियत पैदा करते हैं।

इण्डो चायना में इसकी छाल एक उत्तम संकोचक वस्तु मानी जाती है। इस वनस्पति का हर एक हिस्सा पाचक और उत्तेजक माना जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते आंखों की तकलीफ में लाभ पहुँचाते हैं। इसमें जेम्बोसाइन नामक उपक्षार पाया जाता है।

गुलजड़

नाम—

यूनानी—गुलजड़।

वर्णन—

खजाइनुल अदविया में इसके नाम शालीन, नागनी, मच्छा, लक्ष्मी इत्यादि लिखे हुए हैं। मगर इन नामों में तलाश करने पर हमें कहीं इसका पता न लगा।

खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह एक बेल होती हैं। जिसके पत्ते गिलोय के पत्तों की तरह मगर उनसे कुछ मोटे और सख्त होते हैं। इसका फूल सफेदी लिये हुए पीले रंग का होता है। इसके फल में रुई की तरह एक पदार्थ रहता है जो फल के फटने पर हवा में उड़ता है। इसके बीज मसूर के दानों की तरह गोल और पतले होते हैं। इसकी डाली को तोड़ने पर उसमें से पीलापन लिये हुए सफेद रंग का दूध निकलता है। इसकी दो जातिया होती हैं। दूसरी जाति के बीज काले दानों के बीजों से मिलते जुलते मगर उनसे कम काले होते हैं। इसकी जड़ मोटी और लम्बी होती है। यह बरसो तक जमीन में रहती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसके प्रयोग से पेट के दर्द, नेत्र रोग माली खोलिया, ज्वर और सन्निपात में लाभ होता है। गठिया की बीमारी से जब हाथ पाव सूख जावें हैं, तब इसके प्रयोग से अच्छा लाभ होता है। बच्चों के उदरशूल, पीलिया और नेत्ररोगों में भी इसका उपयोग होता है। (ख०अ०)

—०—

गुल्गा

नाम—

हिन्दी—गुल्गा। गुजराती—परदेशी ताड़ियो। बगाल—गबना, गुल्गा। तेलगू—कोटिटिकया, निपमु। लेटिन—Nipa Fruticans (निपा फ्रूटीकेन्स)

वर्णन—

यह वनस्पति बरमा, मलाया और सीलोन में पैदा होती है। इसका बीज मुरगी के अण्डे के बराबर होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

फिलिपाइन द्वीप समूह में इसके पीसे हुए पत्ते व्रण के ऊपर तथा कन खजूरे की काटी हुई जगह पर लगाने के काम में लेते हैं।

गुलिलि

नाम—

पंजाब—गुलिलि, राबन, सिरा, फालश। अलमोड़ा—गरूरा। कुमाऊ—गैर, गल्दू, गरुड़। लेटिन—Olea Glandulifera (ओलिया ग्लेन्ड्यूलीफेरा)

वर्णन—

यह वनस्पति कश्मीर से नेपाल तक २००० फीट से ६००० फीट की ऊंचाई तक और दक्षिण

में विजगापट्टम की पहाड़ियों पर तथा मैसूर और मद्रास प्रेसीडेन्सी के पश्चिमीय घाट में पैदा होती है। यह एक मध्यम कद का हमेशा हरा रहने वाला वृक्ष है। इसकी छाल भूरे रंग की, पत्ते चिकने, फूल सफेद: फल लम्बे गोल और पकने पर काला तथा गुठली सख्त होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा तथा एट्किन्सन के मतानुसार इसकी छाल और पत्ते सविराम ज्वर को दूर करने वाले और संकोचक होते हैं। इसमें ग्लुकोसाइड्स पाये जाते हैं।

गुलू (खड़िया)

नाम—

हिन्दी—गुलू, बुलि, खड़िया। मराठी—सारढोड़, पाढरुख। गुजराती—कड़ायो खड़ियो। मध्यभारत—खड़िया। मध्यप्रदेश—गुलू, गुरलू, कुलू,। बम्बई—कड़इ, चंडई, कडोल। तामील—वेलई पुवली। तेलगू—कवली। उरिया—गुडलो। अजमेर—कालरू। लेटिन—Sterculia Urens (स्टेरक्यूलिया यूरेन्स)।

वर्णन—

खड़िया या गुलू के झाड़ बहुत बड़े और छाया वाले होते हैं। इसका प्रकाड और शाखाएं खाकीपन लिये हुए सफेद रंग की होती हैं। इसकी छाल बहुत साफ, चिकनी और मुलायम होती है। इसके पत्ते बड़े और सुन्दर होते हैं। इनके पास किनारे कटे हुए रहते हैं। इन पत्तों पर पीछे सफेद रंग के बारीक रुए होते हैं। इसके फूल कुछ बैंगनीपन लिये हुए पीले और हरे रंग के होते हैं। इसके पिंड पर कोई निशान कर देने से अथवा किसी का नाम लिख देने से वह नाम जब तक वृक्ष कायम रहता है तब तक बराबर बना रहता है। सरदी के दिनों में इसकी छाल फटकर उसन से गोंद निकलता है। कई लोगों के मत से यही गोंद कतीरा गोंद के नाम से बाज़ार में बिकता है। यह गोंद ठण्डे पानी मे बिलकुल घुल जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वस्तु ग्राही और पौष्टिक मानी जाती है। इसकी जड़ का क्वाथ शक्कर के साथ चिर गुणकारी पौष्टिक वस्तु की तरह दिया जाता है। इसकी छाल का स्वरस पीपर और शहद के साथ देने से खासी में बहुत लाभ होता है। इसके बीजों को भूनकर उनका चूर्ण काफी के स्थान पर काम में लिया जाता है। इसका गोंद तिल्ली और फेफड़े के रोगों में लाभदायक है। यह पौष्टिक पाकों में डाला जाता है। फिलिपाइन्स में इसकी जड़ की छाल को पीसकर उसका पुल्टिस घाव, अस्थिभग और अण्ड कोष के प्रदाह पर लगाया जाता है।

इसके पत्ते और इसकी कोमल शाखाएं पानी के साथ पीसकर फुफ्फुस शोथ और फुफ्फुस कोष

की सूजन में देने से लाभ होता है। इसका गोंद बम्बई में ट्रागा कांथ के बदले उपयोग में लिया जाता है।

विशेष वर्णन—

यह सारा वृक्ष दुष्काल के समय में पशुओं के खाद्य पदार्थ की तरह काम में आता है। यह एक ऐसा वृक्ष है जो दुष्काल के दिनों में भी नहीं सूखता है। संवत १६५६ के भयंकर दुष्काल के समय में कच्छ, पोर बन्दर, गुजरात और मध्यभारत में इस वृक्ष ने हजारों भैंसों का पालन किया था।

गुल जलील

नाम—

हिन्दी—गुलजलील, असवर्ग। लेटिन—Delphinium Zalil (डेलफिनियम झलील)।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मत से यह वनस्पति मूत्रल और वेदनाशून्यता पैदा करने वाली है। यह पीलिया और जलोदर रोग में उपयोगी मानी जाती है। इसमें अनकेलाइड्स और ग्लुको साइड्स पाये जाते हैं।

गुले खुशनजर

नाम—

फारसी—गुल खुश नजर।

गुण दोष और प्रभाव—

यह एक खुशबूदार फूल है। यह दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क है। यह कब्ज पैदा करता है, खून को रोकता है, ताजा जख्मों पर इसको लगाने से खून फौरन बन्द हो जाता है। इसका रस कान में टपकाने से कान की फुन्सियां और दर्द मिट जाता है। (ख० अ०)

गुलरैना

नाम—

यूनानी—गुलरैना। अरबी—दर्द अलहमाक, दर्द अल फजार, गुलताहेब।

वर्णन—

यह एक जाति का फूल है जो अन्दर से लाल और बाहर से पीला होता है। इसका पेड़ जंगली गुलाब की तरह होता है। इसमें खुशबू नहीं आती। औषधि प्रयोग में इसकी जड़ आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका लेप करने से हर तरह की सूजन दूर होती है। इसको खाने के काम में नहीं लेना चाहिये।

गुल बकावली

नाम—

हिन्दी, उर्दू, बंगाली, गुजराती—गुल बकावली। लेटिन—Clerodendron Fragrans क्लेरोडेण्ड्रोन फ्रेग्रेंस (कच्छनी वनस्पतियाँ)

वर्णन—

गुलबकावली के झाड़ ३ से ६ हाथ तक ऊँचे होते हैं। इसकी शाखायें और पत्ते आमने सामने और घने भरे हुए रहते हैं। इसके पत्ते मोटे, चौड़े, नोकदार और गंभारी के पत्तों की तरह होते हैं। इन पत्तों को मसलने से उनमें खराब गंध आती है। गरमी और बरसात में इसके फूलों के गुच्छे वृक्ष पर लदआते हैं। ये फूल सुगन्धित और सफेद रंग के गुलाब की तरह दोहरी तीहरी पंखड़ियों-वाले हलके गुलाबी और बैंगनी झाईं लिये हुए होते हैं। इनका रूप और गन्ध अत्यन्त मनोहर होता है। इनके फूलों का गुलदस्ता बनाने की जरूरत नहीं होती, क्योंकि ये वृक्ष पर स्वयं ही छोटे और बड़े गुलदस्तें के रूप में लगते हैं। इनके बीज और फल देखने में नहीं आये।

गुण दोष और प्रभाव—

गुलबकावली के फूलों का उपयोग विशेषकर इनकी सुगन्ध के लिये ही होता है। औषधि के उपयोग में इनका प्रयोग बहुत कम होता है। फिर भी यह वृक्ष अरनी और भारंगी की जाति का होने से इसमें उन्हीं के समान गुण दोषों का अनुमान किया जा सकता है। बागों के माली इसके पत्तों का सामान्य उपयोग गाठ, फोडे, फुन्सी और सूजन पर लगाने के काम में करते हैं। ढोरों के घावों में कीड़े पड़ जाने पर भी इनका उपयोग किया जा सकता है। (कच्छनी वनस्पतियाँ)

—०—

गुलमेंदी

नाम—

हिन्दी—गुलमेंदी। गुजराती—गुलमेंदी, पनतम्बोल। मराठी—तरादा। पंजाब—बेंतिल, हालू, ऊक, पल्लू, ततूरा, तिलफाड़। उर्दू—गुलमेंदी। उरिया—हाडागोड़ा। इंग्लिश—Garden Balsam, Touch-me-not लेटिन—Impatiens Balsamina (इम्पेटन्स बालसेमिना)

वर्णन—

यह एक प्रसिद्ध फूल है। जो लाल, गुलाबी, नीला, सफेद इत्यादि कई रंगों का होता है। इसका वृक्ष खूबसूरत और फूलों से भरा हुआ रहता है। यह प्रायः सभी बाग बगीचों में लगाया जाता है। इसका पेड़ हाथ, डेढ़ हाथ लम्बा होता है। इसके बीज गोल, काले रंग के, बड़ी इलायची के दानों की तरह होते हैं। एक छोटी सी थैली के अन्दर कई बीज रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके फूल गरम और तर होते हैं। किसी २ के मत से ये सर्द होते हैं। इसके फूलों को पका कर खाने से कामेंद्रिय को ताकत मिलती हैं। इसके पत्तों और शाखाओं का रस आग से जले हुए स्थान पर लगाने से शान्ति मिलती है। इसके बीजों को पीस कर गुदा पर लगाने से कांच निकलने का मर्ज जाता रहता है। इसके फूल मेदे और शरीर को ताकत देते हैं। यह बादी की बवासीर को फायदा पहुँचाता है। इसके लेप से जोड़ों के दर्द में लाभ पहुँचता है।

इसको पेट के अन्दर खाने से यह वमन कारक और विरेचक प्रभाव बतलाता है।

—०—

गुवार फली

नाम—

संस्कृत—गोराणी, दृढ़बीजा, निशान्ध्यघ्नि, बाकुचि, वक्रशिम्बि, गोरक्ष फलिनि, इत्यादि। हिन्दी—गुवार की फली। मराठी—गोवारीचा शेंगा। गुजराती—गवार की फली। लेटिन—Cyamopsis Tetragonolova. (सिमोप्सिस टेट्रागोनो लोवा)।

वर्णन—

यह वनस्पति भारतवर्ष में सब दूर तरकारी (शाग) बनाने के काम में आती है। यह एक छोटा पौधा होता है। इसके फूल छोटे और बैंगनी रंग के होते हैं। इसके लम्बी और चपटी फलियां लगती हैं जो हरे रंग की होती हैं। इन फलियों के अन्दर चपटे २ गुवार के बीज रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से गुवार की फली रूखी, वात कारक, मधुर, भारी, मृदु विरेचक, कफ कारक अग्नि दीपक और पित्त नाशक होती है। इसके पत्ते रतौंधी को दूर करने वाले और पित्तको हरने वाले होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह मौतदिल, वीर्य वर्द्धक, कामो दीपक, खून में जोश पैदा करने वाली, कफ नाशक और पेट में फुलाव और कब्जियत करने वाली है।

पित्त के दस्तों को मिटाने के लिये इसका काढ़ा बनाकर पिलाना चाहिये। चोट और मोच पर तिल और गुवार फली को कूट कर गरम करके बांधने से लाभ होता है। इसके पत्तों के रस को आंख में लगाने से और इसके पत्तों को पकाकर खाने से रतौंधी मिटती है।

ये फलियां कमजोर और वात की बीमारी वाले लोगों को नहीं खाना चाहिये। इनसे पेट में आफरा आकर वायु का उदर शूल पैदा हो जाता है। इसके दर्प को नाश करने के लिये हरा धनिया देते हैं।

गुवाल दाड़िम

नाम—

हिन्दी—गुवाल दाड़िम, जालीधर। पंजाव— वदलो कड़िवर, कॅडियारी, करडू,लप, लेई, ली, फटकी, फुफरी। सीमाप्रान्त—गुवाल दाड़िम, भगरीवल दाड़िम, कुरा। तेलगू—दन्ती, गोदतिसिनी। उड़िया— कोइरोगो। लेटिन—Gymnosporia Roylana (जिम्नोस्पोरिया रोइलेना)।

वर्णन—

यह एक हमेशा हरी रहने वाली वनस्पति है। इसकी शाखाएँ मुलायम, छाल बादामी और खुरदरी, पत्ते गहरे हरे, कटी हुई किनारों के और लम्ब गोल तथा फल लम्बा, बादामी और फिसलना होता है। इसमें तीन से लेकर छः तक बीज रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति के बीजों का धुआ दांत के दर्द में लाभ दायक होता है।

—•—

गुवाल दाख

नाम—

सीमाप्रदेश—गुवाल दाख, कथक। पजाव—नंगकी, नियाई फुलंज। लेटिन—Ribes Orientale. (रिवस ओरियंटल)।

वर्णन—

यह एक छोटा झाड़ीनुमा पौधा होता है। इसका फल पकने पर लाल या पीला हो जाता है। यह वनस्पति हिमालय के भीतरी हिस्सों में ६५०० से १४००० फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

एटकिन्सन और कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वस्तु विरेचक है।

—

गुरेंडा

नाम—

सिहल—गुरेंडा। तामिल— पिनागि। लेटिन— Celtis Cinnamomea (सेल्टिश सिनेमोमिया)

वर्णन—

यह वनस्पति सिकिम, हिमालय, आसाम, चिटगांव, वरमा और मलाया द्वीप समूह में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

सीलोन में इसके रस को नींबू के रस में मिलाकर खुजली और दूसरे चर्म रोगों में रक्त शोधक वस्तु की तौर पर काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी छाल रक्त को शुद्ध करने के काम में ली जाती है।

गुरिन

नाम—

पंजाब—गुरिन, जगोश, किर्कचालु। नेपाल—बीरबंका। लेटिन—Arisaema Tortuosum (एरीसेइमा टारचूओसम)।

वर्णन—

यह वनस्पति सिकिम, हिमालय, मनीपुर और बंगाल में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह एक विषैली वस्तु है। इसके बीजों को नमक के साथ मिलाकर भेड़ों के उदरशूल में देते हैं। इसकी जड़ें ढोरों के लिये कृमि नाशक हैं।

गुमठी

नाम—

हिन्दी—गुमठी। लेटिन—Zehneria Umbellata (जेनेरिया अम्बेलेटा)

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति उत्तेजक और शान्ति दायक है। इसकी जड़ अनैच्छिक वीर्यस्राव में लाभ दायक है।

गुनमनि झाड़

नाम—

बंगाल—गुनमनि झाड़। लेटिन—Unona Narum (यूनोना नेरम)

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति सधिवात ज्वर और श्लीपद में लाभ दायक है। इसमें उड़नशील तेल पाया जाता है।

गूगल

नाम—

संस्कृत—गुग्गुल, कौशिक, कुम्भि, देवधूप, देवेष्टा, काल निर्यास, शिवा, वाहुम, मरुदिष्ठ, इत्यादि। हिन्दी—गूगल। गुजराती—गूगल। मराठी—गूगल, कणगूगल। बंगाली—गूगल, गूगुल। तामील—गुग्गल, गुग्गल। तेलगू—गुगूल, महिषाक्ष, महिषाक्षि। अरबी—अफ-लेतन, मुक्ल। फारसी—बोए जहूदान, लेटिन—Balsamcdendron Mukul (बालसेमोडेंड्रोन मुकुल) Commiphora Mukul (कॉमिफोरा मुकुल)।

वर्णन—

गूगल के वृक्ष ४ से १२ फीट तक ऊँचे होते हैं। ये बारहों मास जीवित रहते हैं। इनकी शाखाओं की डडियों पर से हमेशा भूरे रग का पतला छिलका उतरता हुआ दिखलाई देता है। उस छिलके के नीचे छाल का रग हरा होता है। इस वृक्ष के छोटी बड़ी बांकी टेढ़ी कांटे वाली अनेकों डालियां निकलती हैं। इसके पत्ते जाड़े और छोटे होते हैं। इसके छोटे और लाल रंग के फूल आते हैं। इसके फल चिकने और चमक दार होते हैं। इनका रंग भूरा और लाल होता है। इस वृक्ष के किसी भी हिस्से को तोड़ने से उसमें एक प्रकार की सुगन्ध निकलती है। इस वृक्ष पर गरमी और सरदी में एक प्रकार का गोंद निकलता है। उसी को गूगल कहते हैं।

यह वृक्ष विशेष कर सिंध, मारवाड़ और कठियावाड़ में पैदा होता है।

गूगल के प्रकार—भाव प्रकाश के मतानुसार गूगल महिषाक्ष. महानील, कुमुद, पद्म और हिरण्य इन भेदों से पाच प्रकार का होता है।

महिषाक्ष गूगल भौंरे के रंग के समान काले रंग का होता है। महानील गूगल अत्यन्त नीले रग का होता है। कुमुद गूगल कुमद के फूल के समान वर्ण वाला होता है। पद्म गूगल माणिक रक्त के समान लाल रग का होता है और हिरण्याक्ष गूगल सोने के समान रग वाला होता है।

महिषाक्ष और महानील गूगल हाथियों के लिये हितकारी है। कुमुद और पद्म गूगल घोड़ों के लिये आरोग्य प्रद है और हिरण्याक्ष गूगल मनुष्यों के लिये अत्यन्त उपकारी है। कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि मनुष्यों के लिये कहीं २ महिषाक्ष गूगल भी हितकारी होता है।

गूगल की परीक्षा—

गूगल के अन्दर कई प्रकार की मिलावटें होती हैं तथा इसके बदले में अक्सर सालर का गोंद भी दिया जाता है क्योंकि इसको भी कई स्थानों पर शाली गूगल बोलते हैं। कई स्थानों पर व्यापारी जली हुई लकड़ी के कोयले पर चाहे जिस गोंद का पुट चढ़ाकर उसको गूगल के बदले बेचते हैं। इसलिये गूगल को लेने के पहिले उसकी जाच अच्छी तरह से कर लेना चाहिये। असली गूगल का रंग नवीन हालत मे पीला और पुराना पड़ने पर काला हो जाता है। सालई गूगल का रंग लाल होता

है। असली गूगल के टुकडों को तोड़ने से वे टूट जाते हैं और उनको पानी में डालने से हरी झांई लिये हुए सफेद रंग का प्रवाही बन जाता है। गूगल को अग्नि पर रखने से वह एक दम नहीं जलता, बल्कि फूलता है और फिर उसमें से बारीक २ टुकड़े फूटते हैं। लेकिन सालर का गूगल अग्नि पर डालने से साफ जल जाता है। पुराना गूगल निःसत्व होकर गुणहीन हो जाता है। इसलिये बाजार से लेते वक्त बिलकुल ताजा गूगल खरीदना चाहिये। यह ऊपर से पीले रंग का और तोड़ने पर भीतर से हरी और लाल रंग की झाई मारता हुआ नजर आता है।

एक दूसरी जाति का गूगल जिसको भैंसा गूगल कहते हैं, कच्छ, सिंध और राजपूताने में बहुत आता है। इसकी जाति भी हलकी होती है। इसका रंग प्रायः हरी झाई लिये हुए पीला होता है। इसकी डालियों पर मैल, बाल और छाल के टुकडे चिपके हुए रहते हैं। यह मोम की तरह नरम लेकिन चीठा और देवदार की तरह गन्धवाला होता है। इसको पानी में डालने से हरे रंग का और मैला प्रवाही तैयार होता है और अग्नि पर जलाने से थोड़ी गन्ध देता है। यह भी असली कण गूगल के बराबर गुणकारी नहीं होता।

गुण दोष और प्रभाव--

भाव प्रकाश के मत से गूगल कड़वा उष्ण वीर्य, पित्त कारक मृदु विरेचक, कसैला, पाक चरपरा, रूखा, हलका, हड्डी को जोड़ने वाला, वीर्यवर्धक, स्वर को सुधारने वाला, उत्तम रसायन, दीपक और कफ, वात, व्रण, अजीर्ण, मेद वृद्धि, प्रमेह, पथरी, वात व्याधि, क्लेद, कुष्ठ, आमवात, ग्रंथि रोग, सूजन, बवासीर, गण्डमाल और कृमि रोग को नष्ट करने वाला होता है। यह मीठा मधुर रस युक्त होने से वात को, कसैला होने से पित्त को और कड़वा होने से कफ को नष्ट करता है। इसलिये गूगल त्रिदोष नाशक है।

नवीन गूगल वीर्य वर्धक और बल कारक होता है। पुराना गूगल शरीर को दुर्बल करने वाला और अनिष्ट कारक होता है।

गूगल को शुद्ध करने विधि—एक सेर त्रिफला (हरड़, बहेड़ा और आवला) और आधा सेर गिलोय में दस सेर पानी डालकर १२ घण्टे तक भिगोना चाहिए। उसके बाद उसको आग पर चढ़ा देना चाहिये। जब आधा पानी जल जाय तब उसको कपड़े में छानकर उस काढ़े को एक लोहे की कढाही में भरकर आग पर चढाना चाहिये। कढ़ाही के दोनों कुन्दों में एक बांस का डंडा पिरोकर उस डण्डे में नये कपडे की एक पोटली में एक सेर उत्तम कण गूगल भर कर उस पोटली को उस डण्डे मे बांध देना चाहिये। जिससे वह पोटली उस पानी के अन्दर लटकती रहे। नीचे हलकी २ आंच देना चाहिये। थोड़ी देर में वह सब गूगल उस पोटली में से निकल कर कढ़ाही में चला जायगा और उसका मैल कपड़े में रह जायगा तब उस कपड़े को निकाल कर फेंक देना चाहिये। तत्पश्चात् उस कढाही को उतार कर उसके पानी को दूसरी कढ़ाई में धीरे २ निथार लेवें और नीचे जो कचरा मिट्टी जमा हो उसे भी फेंकदे और साफ काढ़े को लेकर आग पर चढ़ा दे और कौंचे से चलाते जायँ ताकि

कढ़ाही के पेंदे में चिपके नहीं। जब वह क्वाथ गाढ़ा हो जाय तब हाथ पर घी लगा २ कर उसकी गोलिया बनाले। यही शुद्ध गूगल है। हर एक प्रयोग में इसी गूगल को डालना चाहिये।

जिन कढ़ाहियों मे गूगल शुद्ध किया जाय उन कढ़ाहियों को साफ करना बहुत मुश्किल होता है। ऐसे समय में गाय का ताजा गोबर डालकर उनको साफ करने से बहुत जल्दी साफ हो जाती हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह वायु को नष्ट करता है। सूजन को बिखेरता है। इसका लेप करने से कण्ठमाला बिखर जाती है। इसको सिरके में घोट कर सिर की गंज पर लगाने से लाभ होता है। इसके लेप से हरएक अंग का दर्द और खिंचावट दूर होती है। पुरानी खांसी, फेफड़े की सूजन और फेफड़े के दर्द में भी यह लाभ दायक है। इसको खाने से और धूनी देने से बवासीर में लाभ होता है तथा गुर्दे और मसाने की पथरी निकल जाती है। रुके हुए मासिक धर्म और पेशाब को भी यह चालू करता है। जहरीले जानवरों के काटने पर भी यह लाभदायक है। दमा, जिगर की कमजोरी, धनुर्वात, सन्धिवात और मृगी रोग मे भी यह लाभदायक है। तीन माशे गूगल को दूध के साथ खाने से मनुष्य की कामशक्ति बढ़ती है। इसका अधिक सेवन फेफड़ा, जिगर और तिल्ली को नुकसान पहुँचाता है। इसके दर्प को नाश करने के लिये केशर और कतीरे का प्रयोग करना चाहिये।

डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार गूगल उत्तेजक, रोग कीटाणु नाशक और कफ नाशक होता है। पुराने कफ रोगों में जिनमें कि बहुत अधिक चिकना और दुर्गन्धित कफ पड़ता है इसको पीपर, अडूसा, शहद और घी के साथ देने से अच्छा लाभ होता है। यह प्रौढ़ अवस्था के अशक्त और दुर्बल मनुष्यों के लिये विशेष उपयोगी है।

गूगल अग्नि दीपक और आनुलोमिक होता है। इसलिये अग्निमांद्य और कब्जियत सम्बन्धी रोगों में जिनमें कि आमाशय और आंते शिथिल पड़ जाती है, इसको इन्द्रजौ और गुड़ के साथ देने से अच्छा लाभ होता है।

इस वस्तु के अन्दर रक्त शोधक गुण भी रहता है और यह सारे शरीर को उत्तेजना और बल प्रदान करता है। इसलिये उपदंश, सुजाक और पुराने आमवात में इसका उपयोग किया जाता है। गण्डमाला रोग के लिये यह एक उत्तम औषधि है। यह रक्त के अन्दर श्वेत कणों को बढ़ाता है जिससे गण्डमाला रोग का जोर धीरे २ कम होता चला जाता है। गण्डमाला में यह पारा, सोमल और वायविडंग के साथ दिया जाता है। उपदंश में अनन्त मूल के साथ और पुराने आमवात और सन्धिवात में शिलाजीत के साथ तथा सुजाक और जीर्ण बस्तिशोथ में गिलोय के साथ दिया जाता है।

गूगल को पेट के अन्दर देने के पश्चात् वह त्वचा के रास्ते से बाहर निकलता है जिससे त्वचा की विनिमय क्रिया में सुधार होता है। इसलिये यह सब प्रकार के पुराने चर्मरोगों में बहुत लाभ पहुँचाता है। अगर निरोग मनुष्य इसका सेवन करें तो उनकी त्वचा का सौंदर्य बढ़ जाता है।

गर्भाशय के ऊपर भी गूगल की बहुत अच्छी किया होती है। यह गर्भाशय का संकोचन करता है। तरुण स्त्रियों के रुके हुए मासिक धर्म को यह चालू कर देता है। गर्भाशय के फूल के द्वारा एक प्रकार का चिकना पदार्थ बहता है और वह स्त्री को सन्तान धारण करने की शक्ति को नष्ट करके बांझ कर देता है। ऐसी स्त्रियों के लिये गूगल बहुत गुणकारी वस्तु है। इस रोग में इसको रसोत के साथ देना चाहिये।

पाण्डुरोग के ऊपर भी गूगल का बड़ा चमत्कारिक असर होता है। इसके प्रयोग से रक्त में श्वेत कणों की वृद्धि होती है और ज्यों २ श्वेत कण बढ़ते हैं त्यों २ रक्त की रोग जन्तु नाशक शक्ति बढ़ती जाती है और रोगी की घी, तेल इत्यादि स्निग्ध पदार्थों को पचाकर खून में जज्ब करने की शक्ति बढ़ती जाती है। जिससे पाण्डुरोग नष्ट होता हुआ चला जाता है। इस रोग में इसको लोह भस्म के साथ देने से विशेष लाभ होता है।

गूगल को कूट कर उसका घी में मलहम बनाकर व्रण पर लगाने से व्रण रोपण और व्रण शुद्धि बहुत अच्छी होती है। ऐसे हठीले व्रण जो कभी नहीं भरते हैं और सड़ते जाते हैं, उनमें यह मलहम अच्छा काम करता है। क्षय रोग के जन्तुओं से पैदा होने वाली गलग्रथियों पर गूगल को गरम पानी में उबाल कर प्रतिदिन २।४ बार गाढ़ा २ लेप करने से अच्छा लाभ होता है। इससे सन्धियों की सूजन पर भी लाभ होता है। गूगल का लेप हिचकी रोग पर भी अच्छा काम करता है। देहली की ओर एक प्रकार का विशेष फोड़ा लोगों को होता है जिसको देहली सोअर्स (Delhi Sores) कहते हैं। उस पर गूगल, गन्धक, सुहागी और कत्थे का मलहम बनाकर लगाते हैं।

कर्नल चोपरा का मत—

गूगल एक वृक्ष से प्राप्त होने वाला गोंद है। इसका वृक्ष ४ से ६ फीट तक ऊंचा होता है। यह राजपूताना, सिंध, पूर्वी बंगाल और आसाम में पाया जाता है।

इसके रासायनिक तत्वों का पूर्ण अध्ययन अभी तक नहीं हुआ है। मगर इसी से मिलती-जुलती एक जाति "बेलसेमोडेंड्रोम मोरा" जो कि उत्तरी आफ्रिका और दक्षिण अरब में पैदा होती है उसका अध्ययन हो चुका है। इसमें २७ से ५० प्रतिशत तक रैजिन, २.५ से १० प्रतिशत तक उड़नशील तेल और कुछ कड़ु तत्व पाये जाते हैं। गूगल में भी साधारणतया इसी प्रकार के तत्व होना चाहिये। कुछ बारीक बातों में चाहे अन्तर हो सकता है।

चिकित्सा शास्त्र में गूगल की उपयोगिता —

इस वस्तु के गुण कोनेबा और कबावचीनी से मिलते-जुलते हैं। यह फटे हुए चमड़े पर और श्लैष्मिक झिल्लियों पर अपना कृमि नाशक प्रभाव दिखलाता है। अंतः प्रयोग में लिया जाने पर यह अग्नि दीपक, शान्ति दायक, आफरा दूर करने वाला और पाचन शक्ति को बलवान बनाने वाला सिद्ध होता है। इसके लेने से पेट में एक दम गरमी मालूम होने लगती है।

दूसरे सभी ओलियोरेजिन्स की तरह यह भी रक्त के श्वेत कीटाणुओं (Leucocytes) को

और फैगोसाइटोसिस नाम के कोषाणुओं को भी बढ़ाता है। गुर्दा और श्लेष्मिक झिल्लियों को यह उत्तेजित करता है और उनके ग्रंथिरसों के कृमियों को नष्ट कर देता है। यह पसीना लाने वाला, मूत्रल उत्तेजक और कफ निस्सारक पदार्थ है।

यह गर्भाशय को उत्तेजित करता और मासिक धर्म को नियमित कर देता है। इसको बहुत समय तक सेवन करने से भी किसी प्रकार की हानि नहीं होती। कभी २ इससे गुर्दे में जलन पैदा हो जाती है और शरीर पर कोपेबा की तरह कुछ फुन्सियां उठ जाती हैं। लेकिन इसका सेवन बन्द करते ही फौरन मिट जाती हैं।

इसका लोशन दुष्ट वृणों को भरने तथा दांतों की सड़ान, मसूड़ों की सूजन, पायरिया, तालु-मूल की ग्रंथिका जीर्ण प्रदाह, कण्ठनाली की जलन और गले के वृणों को मिटाने के काम में लिया जाता है। यह लोशन इसके १ ड्राम टिंचर को १० औंस पानी में मिला देने से तैयार हो जाता है।

प्राचीन अग्निमांद्य रोग में यह अग्निदीपक वस्तु की तौर पर काम मे लिया जाता है। यह उदर यन्त्रों के ढीलेपन को और पेशी की दुर्बलता को भी मिटा देता है। पुराना नजला, अतिसार, आंतों की सूजन, आंतों के वृण और बड़ी आंत के पुरातन प्रदाह में यह बहुत लाभदायक है।

फेफड़ों के क्षय में यह एक उत्तेजक और कृमि नाशक पदार्थ की तरह दिया जाता है। इसके सेवन से ज्वर कम होता है, भूख बढ़ती है, कफ के कृमि नष्ट हो जाते हैं और जीवनी शक्ति को बल मिलता है।

जलोदर और पाण्डुरोग में तथा फुफ्फुस के वृण प्रदाह में भी यह बहुत उपयोगी पदार्थ है। स्नायविक दुर्बलता और साधारण कमजोरी को दूर करके यह कामोद्दीपन की शक्ति को भी बहुत बढ़ाता है।

स्वर नाली के प्रदाह, वायु नलियों के प्रदाह, कुक्कुर खांसी और निमोनिया में प्रति ४।६ घण्टे के बाद इसकी मात्रा देने से अच्छा लाभ होता है। इसे अकसर सेलीसायलेट ऑफ सोडियम के साथ मिलाकर काम मे लेते हैं।

कुष्ठ के रोगियों की हालत को भी यह बहुत हद तक सुधारता है और इस व्याधि से पैदा हुए दूसरे विकारों को भी मिटा देता है। मूत्राशय की जलन, सुजाक और पेड़ू की सूजन मे तीव्र लक्षणों के दूर हो जाने पर इसको देने से अच्छा लाभ होता है। गर्भाशयावरण की जीर्ण सूजन में तथा नष्टार्तव में भी यह लाभ दायक है। यदि काफी तादाद में दिया जाय तो यह श्वेत प्रदर और अत्यधिक रजःस्राव में फायदा पहुँचाता है।

गूगल धूप देने के उपयोग मे लिया जाता है। इसकी धूप देने मात्र से ही ज्वर, नजला, स्वर नाली का प्रदाह, वायु नलियों का जीर्ण प्रदाह और क्षय में लाभ होता है।

इसके गुणों का कारण इसका ओलियो रेजिन ही मालूम पड़ता है। इसमें सुगन्धित तत्व रहने के कारण ही इसका धुँआ भी अपने गुण बतलाता है।

वैद्यकल्पतरु के संपादक स्वर्गीय जटाशंकर लीलाधर त्रिवेदी ने गूगल की सर्वोत्तम बनावट योगराज गूगल पर सन् १९१४ के वैद्य कल्पतरु में एक अध्ययन पूर्ण लेख लिखा था। उसका साराश हम नीचे दे रहे हैं।

"योगराज गूगल की बनावटों में मुख्य वस्तुएं गूगल, त्रिफला और भस्में हैं। वैद्यक शास्त्रकारों ने गूगल के अन्दर वातहर, शोधक, सारक, रोचक, कृमिनाशक और पौष्टिक गुण बतलाये हैं।

वात हर शब्द का अर्थ केवल वायु और पवन के दोषों को हरनेवाला ही नहीं होता है। बल्कि ज्ञानतन्तु और गति तन्तु की खराबी को दूर करके उनका सुधार करना यह भी वातहर शब्द के अन्दर सम्मिलित है।

गूगल मस्तिष्क के तंतुओं को पोषण देता है। जिस वात-व्याधि में मज्जा तन्तु (Nerves) कमजोर पड़ जाते हैं और उनकी गति मन्द हो जाती है, उस वात व्याधि में गूगल अपना चमत्कारिक असर दिखलाता है। ऐसी जीर्ण वात व्याधियों में डाक्टर और हकीम जहरी कुचले की बहुत तारीफ करते हैं और उसका बहुत उपयोग भी करते हैं और इसमें सन्देह नहीं कि जहरी कुचला वास्तव में एक बहुत अच्छा "नरव्हाइन टॉनिक" है पर इस बात को न भूलना चाहिये कि कुचला एक विष है और गूगल विष नहीं है। कुचले को २।४ महिने तक लगातार खाने से जिनको वात व्याधि या धनुर्वात नहीं है उनको भी होने का डर रहता है। मगर गूगल को २। ४ बरस लगातार खाने पर भी किसी तरह की हानि की आशंका नहीं रहती।

अपने वातहर गुण की वजह से गूगल बिगडे हुए और कमजोर पडे हुए तन्तुओं को बल देता है। मगज के यह तन्तु सारे शरीर में फैले हुए रहते हैं। विशेषकर बडे २ मर्म स्थानों में तो इनका जाल बिछा हुआ रहता है। उदाहरणार्थ स्त्रियों का गर्भ स्थान इन तन्तुओं से व्याप्त होने की वजह से गूगल की गर्भ स्थान पर बहुत अच्छी किया होती है जिसके परिणाम स्वरूप स्त्रियों के ऋतु दोष सुधारने में और उनको सन्तानोत्पत्ति के योग्य बनाने में गूगल बहुत सहायक होता है। यह बात शास्त्र और अनुभव से सिद्ध है।

वातहरके सिवाय गूगल में कृमिनाशक गुण भी बहुत उत्तम है। यह अफसोस की बात है कि पाश्चात्य ढग से चिकित्सा करने वाले इस देश के देशी डॉक्टर गूगल के समान कृमि नाशक और सर्वोत्तम द्रव्य को तरफ लक्ष्य नहीं देते। गूगल अति उत्तम कृमिनाशक द्रव्य है। ऐलोपैथी की कृमि नाशक दवाइयें अक्सर जहरीली होती हैं मगर गूगल जन्तुघ्न होते हुए भी एक निरुपद्रवी औषधि है। बिगडे हुए रक्त को सुधार कर शरीर के अन्दर संचित भिन्न २ दोषों और जन्तुओं को नष्ट करने में यह वस्तु बहुत ही शक्ति शालिनि है। जब शरीर के मर्म स्थान बिगड़ते हैं और उनका योग्य प्रतिकार नहीं होने से शरीर की रस, रक्त, मज्जा, हड्डी, वीर्य इत्यादि सप्त धातुएं उत्तरोत्तर दूषित होती जाती हैं। उस समय योग राजगूगल आशीर्वाद की तरह काम करता है। शरीर के अन्दर के मर्म स्थानों के

दोषों को सुधारने के लिये यह एक बड़े से बड़ा निर्भय डिसइनफेक्टंट (Disinfectant) अर्थात् जन्तुघ्न उपाय है।

वातहर तथा कृमि नाशक गुण के अतिरिक्त गूगल में रोपक, सारक और पौष्टिक गुण भी रहते हैं। शरीर के अन्दर संचित दोषों को खोदकर निकाल देने का यह एक विश्वसनीय उपाय है।

गूगल के सिवाय योगराज गूगल का प्रधान द्रव्य त्रिफला अर्थात् हरड़, बहेड़ा और आंवला है। ये तीनों आयुर्वेद की महान रसायन औषधियां हैं। ये तीनों शोधक, सारक और धातु परिवर्तक हैं। त्रिफला गूगल की उष्णता और उग्रता को कम करके उसके गुणों की वृद्धि करता है।

इस प्रकार गूगल और त्रिफला का यह महान योग चर्मरोग, कुष्ट, बवासीर, प्रमेह, ग्रहणी और भगंदर के समान दुष्ट व्याधियों को नष्ट करने में समर्थ हो तो इसमें विशेष आश्चर्य की बात नहीं। अगर योगराज गूगल को लंबे समय तक उचित पथ्य और परहेज के साथ सेवन किया जाय तो यह विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है कि वैद्यक शास्त्र में बतलाये गये बहुत से रोगों में यह औषधि बहुत उत्तम परिणाम बतलाती है।

योगराज गूगल की बनावट में तीसरी मुख्य वस्तु उसमें पड़ने वाली धातुओं की भस्में हैं। इन भस्मों में से लोह और मंडूर परम रक्त को शुद्ध करती हैं। चांदी की भस्म मगज को ताकत देती है। अभ्रक, बंग और नाग भस्म भिन्न भिन्न मर्म स्थानों को बल देती हैं और रससिन्दूर पारे की बनावट होने की वजह से सब रोगों में योग वाही के रूप से कार्य करती है।

यह योगराज गूगल त्रिदोषनाशक माना जाता है। पित्त का कार्य पाचन वगैरह क्रियाओं को करने का है। इस कार्य में अगर शिथिलता हो जाय तो योगराज गूगल उसको दूर कर देता है। इसी प्रकार कफ का कार्य सारे शरीर की रसक्रिया को व्यवस्थित रख के शरीर में स्निग्धता और तृप्ति प्रदान करने का होता है। इस कार्य में भी योगराज गूगल सहायता करता है। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि पित्त तथा रस को उत्पन्न करने वाली आशयों सिस्टम्स को योगराज नियमित करता है। इन दोनों दोषों को नियमित करने की शक्ति योगराज गूगल में इसीलिये है कि वह मज्जा तंतु (Nerves) और मज्जा तंतु समूह (Nerve centers) के ऊपर अपना सीधा प्रभाव बतलाता है। मज्जातंतुओं पर असर होने की वजह से सारे मर्म स्थान और पित्त तथा कफ की क्रिया नियमित हो जाती हैं। क्योंकि पित्त और कफ की क्रिया मज्जा तंतु और वायु चक्रों की क्रिया के आधीन रहती है। इसीलिये आयुर्वेद के अन्दर कफ और पित्त को पंगु बतलाया गया है। सच बात तो यह है कि शरीर का सारा व्यापार वात तंत्र अर्थात् नर्व्ह सिस्टम के आधीन है और योगराज गूगल उसी वात तंत्र पर अपना सीधा असर डालकर उसकी क्रिया को व्यवस्थित कर देता है और उसी के द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वह सारे शरीर के दोषों को दूर करता है।

झंडू फार्मेसी के संस्थापक सुप्रसिद्ध वैद्य झंडू भट्टजी अपने जाम नगर के धन्वन्तरी धाम पर आने वाले सभी रोगियों को योगराज गूगल देते थे और इसके त्रिदोष नाशक गुण का अनुभव करते

थे। उन्होंने कितने ही असाध्य रोगियों को पांच पांच और दस दस रतल योगराज गूगल खिला कर आराम किये थे।

गोहिरे का विष और गूगल—

गोहिरा एक अत्यन्त जहरी प्राणी होता है। इसका आकार बड़ी छिपकली की तरह होता है। अगर यह किसी मनुष्य अथवा पशु को काटता है तो वह तुरन्त मर जाता है। ऐसा कहा जाता है कि सब जानवरों के जहर की औषधि होती है मगर गोहिरे के विष की कोई औषधि नहीं है। मगर आयुर्वेद महामहोपाध्याय रसायन शास्त्री भागीरथ स्वामी ने धन्वन्तरी पत्र के सिद्ध योगांक में इस विष के लिये गूगल का एक प्रयोग बतलाया है, वह इस प्रकार है।

अगर देवयोग से किसी को गोहिरे ने काटा हो तो उसको गूगल उबाल कर पिला देना चाहिये अथवा उसकी गोली बनाकर खिला देना चाहिये। इससे अगर किसी के प्राण कण्ठ में भी आकर उनका नाम मात्र शेष रह गया होगा तो भी वह मनुष्य बच जायगा। ज्यों २ इस औषधि का असर होता जाता है त्यों २ विष का विकार कम होकर बेहोश मनुष्य होश में चला आता है। इसलिये जहां तक पूरी तरह से जहर का असर दूर नहीं हो जाय तब तक पांच २ अथवा दस २ मिनिट के अंतर से १॥ माशे से लेकर तीन माशे तक गूगल खिलाते अथवा पिलाते रहना चाहिये। अगर किसी घर के अंदर भींत के ऊपर अथवा दूसरे स्थान पर गोहिरे का निवास हो उस स्थान पर गूगल की धूप देने से उसका धुआं पहुँचते ही गोहिरा बेहोश होकर पड़ जाता है और फिर कभी उस स्थान पर नहीं आता है।

बनावटें—

योगराज गूगल—सोंठ, पीपलामूल, पीपर, चव्य, चित्रक की जड़, भुनी हुई हींग, अजमोद, सरसों, सफेद जीरा, कालाजीरा, रेणुका, इद्रंजौ, पाडल, वायविड़ंग, गज पीपल, कुटकी, अतीस, भारंगी घोड़ा वच्छ, और मूर्वा। इन २० औषधियों को एक २ तोला और त्रिफला ४० तोला लेकर सब को कूट छान कर चूर्ण करलें। इसके बाद ६० तोला उत्तम शुद्ध की हुई कणगूगल को लेकर उसको पाव भर पानी के साथ कढ़ाही में चढ़ाकर नीचे हलकी आंच जलावे जब गूगल पानी में घुलकर अवलेह के समान हो जाय तब ऊपर लिखा ६० तोला चूर्ण उसमें मिलादे और उसके साथ ही ४ तोला रस सिंदूर, २ तोला स्वर्ण भस्म, ४ तोला चांदी की भस्म, ४ तोला बंग भस्म, ४ तोला नाग भस्म, ४ तोला फ़ौलाद भस्म, ४ तोला शत पुटी अभ्रक भस्म और ४ तोला मण्डूर भस्म भी उसमें मिलादें। उसके बाद उस सब औषधि को पत्थर के खरल में डालकर चार २ तोले घी डालते हुए कूटना शुरू करें जब एक लाख चोट उस पर पड़ जाय और वह एक दिल हो जाय तब उसकी आधे २ माशे की गोलियां बनालें। इसी योग को महा योगराज गूगल कहते हैं। इस योग में से आठों प्रकार की धातु भस्मों को निकाल देने से लघु योगराज गूगल बनता है।

इस बनावट को बनाने में मुख्य बात ध्यान में रखने की यह है कि इसमें जिस गूगल का उपयोग किया जाय, वह बहुत उत्तम और असली होना चाहिये। इसका दूसरा प्रधान अंग त्रिफला

है वह भी बहुत उत्तम और नवीन देखकर लेना चाहिये। औषधियां भी उतनी ही उत्तम और नवीन देख कर लेना चाहिये। औषधियें जितनी ही उत्तम और भस्में जितनी ही विश्वसनीय होंगी, योगराज गूगल उतना ही ज्यादा लाभदायक होगा।

योगराज गूगल की अनुपान विधि —

वातरक्त—योगराज गूगल को वृहत्मंजिष्ठादि क्वाथ अथवा गिलोय के क्वाथ के साथ देने से वात रक्त के समान दारुण रक्तरोग में भी बहुत लाभ होता है।

प्रमेह—दारू हलदी के क्वाथ के साथ योगराज गूगल को देने से प्रमेह में लाभ होता है।

पांडुरोग और सूजन—गौ मूत्र के साथ योगराज गूगल को देने से पाण्डु रोग और सूजन नष्ट होती है।

मेद वृद्धि—शहद के साथ योगराज गूगल को देने से मेद वृद्धि के रोग में लाभ होता है। मेद रोग में शरीर के ऊपर चरबी के थर जम जाते हैं। इनको नष्ट होने में बहुत लम्बा समय लगता है। इसलिये इसमें धैर्य के साथ बहुत दिनों तक इस औषधि का सेवन करना चाहिये। अगर योगराज गूगल के साथ शिलाजीत भी ली जाय तो विशेष लाभदायक हो सकती है।

प्रसूति रोग—प्रसूति रोग में दश मूल क्वाथ के साथ योगराज गूगल को देने से अच्छा लाभ होता है।

नेत्र रोग—त्रिफला के क्वाथ के साथ योगराज गूगल को लेने से कितने ही प्रकार के नेत्र रोग दूर हो जाते हैं।

उदर रोग—पुनर्नवादि क्वाथ के साथ योगराज गूगल को देने से सब प्रकार के उदर रोग मिटते हैं।

नष्टार्तव—स्त्रियों का गर्भस्थान जब वायु, कफ और चर्बी से आच्छादित हो जाता है तब उनको मासिक धर्म होना बन्द हो जाता है और सन्तान होना भी रुक जाती है। ऐसे समय में उनको एक दो लंघन देकर एक दो महिने तक योगराज गूगल का सेवन कराने से बड़ा सन्तोष जनक परिणाम दृष्टि गोचर होता है।

स्नायु शूल—शरीर के भिन्न २ अंगों में स्नायु शूल (PainNeuralgia) होता हो और उसमें दूसरी औषधियें निष्फल हो गई हों तो योगराज गूगल को देने से जरूर लाभ होता है। अगर ऐसे शूल का मूल कारण गर्मी (Syphilis) हो तो उस हालत में वृहत्मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ योगराज गूगल लेने से बहुत लाभ होता है, मगर धीरज के साथ दवा लेते रहना चाहिये।

कुष्ट—नीम की छाल के क्वाथ के साथ योगराज गूगल का सेवन करने से कष्टसाध्य कुष्ट भी आराम होते हैं।

इसके अतिरिक्त उदावर्त्त, क्षय, गुल्म, मृगी, मदाग्नि, श्वास, खांसी, अरुचि तथा मनुष्य का वीर्य दोष और स्त्री के रजोदोष इस महान औषधि के सेवन से दूर होते हैं।

किशोर गूगल—त्रिफला १२८ तोले, गिलोय ४२ तोले ८ मा०, इन दोनों चीजों को लोहे की कढाही में डालकर पकावे जब आधा जल बाकी रह जाय तब उसको उतार कर छानलें फिर उस

क्वाथ में उत्तम शुद्ध गूगल ४२ तोला ८ माशा मिलाकर आग पर चढ़ा दें और कलछी से बराबर चलाते जाय। जब वह अवलेह के समान गाढा हो जाय तब उसमें हर्र १० तोला ८ माशा, गिलोय ५ तोला ४ माशा, सोंठ ३२ माशे, मिर्च ३२ माशे, पीपर ३२ माशा, वायबिडंग ३२ माशे, निसोथ १६ माशे तथा जमाल गोटे की जड़ १६ माशे। इन सब को मिलाकर घी का हाथ लगा लगा कर खूब कूटें, जब एक दिल हो जाय तब तीन २ माशे की गोलियां बनाकर चिकने पात्र में रखदें। इन गोलियों में से एक से लेकर दो गोली तक गरम जल, दूध या मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ युक्ति पूर्वक देने से सब प्रकार के कुष्ठ, व्रण, गुल्म, प्रमेह पीठिका, उदर रोग, मंदाग्नि, खांसी, सूजन, पांडु रोग को नष्ट होते हैं। यह किशोर गूगल उत्तम रसायन है और इसका सेवन करनेवाला किशोर अवस्था के समान बल को प्राप्त करता है।

त्रिफला गूगल—त्रिफले का चूर्ण १६ तोला, छोटी पीपर का चूर्ण ५ तोला ४ माशा, गूगल शुद्ध २६ तोला ८ माशा इन सब को एक मे मिलाकर खूब कूटें। एक दिल होने पर चार २ माशे की गोलियां बनालें। इनमे से रोगी के बलाबल के अनुसार एक से लगाकर दो गोली उचित अनुपान के साथ देने से भगन्दर, गुल्म, सूजन और बवासीर का नाश होता है।

कांचनार गूगल—कचनार की छाल ५३ तोला ४ माशे, त्रिफला ३२ तोला, सोंठ, मिर्च और पीपर तीनों मिलाकर १६ तोला, वरना की छाल ५ तोला ४ माशे, इलायची, तज और तेजपात प्रत्येक सोलह २ माशे। इन सब चीजों का बारीक चूर्ण करके चूर्ण के वजन के बराबर ही शुद्ध गूगल लेकर उसको थोड़े पानी में डाल कर आग पर गलालें और गल जाने पर यह सब चूर्ण उसमें मिला कर खरल में खूब कुटवावें, उसके बाद चार २ माशे की गोलिया बनालें। इस गूगल को उचित अनुपान के साथ देने से गण्डमाला, अर्बुद, गाठ, व्रण, भगन्दर, कुष्ठ, अग्निमांद्य गुल्म इत्यादि सब रोग नष्ट होते हैं।

गोक्षुरादि गूगल—गोखरू १५० तोला लेकर ६०० तोला पानी में औटावें। जब आधा जल रह जाय तब उसमें ४२ तोले शुद्ध गूगल डालकर कलछी से चलावें, जब अवलेह की तरह गाढा हो जाय, तब उसमे सोंठ, मिर्च, पीपर, हर्र, बहेड़ा, आवला और मोथा ये सब औषधियां प्रत्येक सोलह २ माशे लेकर बारीक चूर्ण करके मिलादें और चार २ माशे की गोलिया बनालें। यह गोक्षुरादि गूगल उचित अनुपानो के साथ प्रमेह, मूत्र कृच्छ्र, प्रदर, मूत्राघात, वातरक्त, रक्तपित्त, वीर्य दोष और पथरी को नष्ट करता है।

सिंहनाद गूगल—त्रिफला, खस, वायबिडंग, जमाल गोटे की जड़, पुनर्नवा, कमल, चित्रक, सोंठ, गिलोय, रासना, हलदी, देवदारू, पीपला मूल, इलायची, गज पीपल यह सब औषधियां सोलह २ माशे लेकर चार सेर जल में इनका क्वाथ बनालें, जब आधा जल रह जाय तब उस जल को छानकर उसमें २० तोला गूगल मिलाकर कलछी से चलावे। जब अवलेह की

तरह गाढ़ा हो जाय तब उसमें सोंठ, मिरच, पीपर, वायविडंग, गिलोय, दारुहलदी, हर्र, तेज-पात, इलायची, तज और निशोथ इन सब औषधियों का सोलह २ माशे चूर्ण मिलाकर खूब कुटवावें और फिर किसी बर्तन में बन्दकर एक महिने तक किसी धान के ढेर में गाड़दें और फिर उपयोग में लें। इस गूगल के सेवन से तिल्ली की वृद्धि, सूजन, उदररोग, नाभि व्रण, बवासीर, संग्रहणी, वातरक्त, कुष्ठ और कष्टसाध्य पाण्डु रोग भी दूर होते हैं।

चन्द्रप्रभा गूगल —बेल का गूदा, सोंठ, मिरच, पीपर, हर्र, बहेड़ा, आवला, सेंधा नमक, संचर नमक, कालानमक, सज्जी खार, जवखार, चव्य, निशोथ, पीपला मूल, नागर मोथा, जीरा, सनाय, धनिया, तज, कंज, देवदारु, गज पीपल, चिरायता, जमाल गोटे की जड़, हलदी, तेजपात, इलायची, अतीस, नीम ये सब औषधियां सोलह २ माशे, बायबिडंग ५ तोला ४ माशे, लोह-भस्म ५ तोला ४ माशे, गूगल ५४ तोला, शिलाजीत ४२ तोला, मिश्री २२ तोला। इन सबको एक दिल करके चार २ माशे की गोली बनालें।

इसमें से प्रतिदिन एक गोली घी अथवा शहद के साथ सेवन करने से बवासीर, प्रदर, विषमज्वर, नासूर, पथरी, मन्दाग्नि, उदर रोग, पाण्डुरोग, कामला, क्षय, भगन्दर, प्रमेह पीठिका, गुल्म, अरुचि, वीर्य दोष, इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। इसके सेवन से वीर्य और बल बढ़कर वृद्ध मनुष्य भी युवा के समान हो जाता है।

गूगलधूप

नाम—

संस्कृत—गूगल धूप। कनाड़ी—गूगल धूप। तामील—पेदमरम। मराठी—हेम्मर, गूगल धूप। तेलगू—पेदमनु। लेटिन—Ailanthus Malabarica (एलेंथस मलेबेरिका)

वर्णन—

यह बड़ा वृक्ष कर्नाटक, कोकण, पश्चिमीय घाट, भारतवर्ष की दक्षिणी टोंक और लंका में पैदा होता है। इसके पत्ते १ से १॥ फुट तक लम्बे, फूल सफेद, छाल मोटी, खरदरी, लकड़ी हलकी और नरम तथा फल लाल बादामी रंग का होता है। इसकी छाल में चीरा लगाने से एक प्रकार का गोंद निकलता है जो काले और खाकी रंग का सख्त और अपार दर्शक होता है। इसको दक्षिण में लादन, ऊद मलयालम में मट्टिपाल, तेलगू में मट्टिपाल और कनाडी में बागाधूप कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

गूगल धूप स्नेहन, संग्राहक, उत्तेजक और कफ नाशक होती है। इसकी छाल पौष्टिक, संग्राहक और ज्वर नाशक होती है। यह अग्निमांद्य और ज्वर के अन्दर पौष्टिक द्रव्य की तरह दी जाती है। पेचिश और वायु नलियों के प्रदाह पर भी यह एक उत्तम औषधि है। इसकी मात्रा १० रत्ती से ३० रत्ती

यह एक उत्तेजक औषधि है जो आंतों के ऊपर अपना प्रभाव दिखाती है। यह छोटी और बड़ी आंतों की श्लेष्मिक झिल्लियों को उत्तेजित करती है। इस वृक्ष में से एक सुगन्धित राल प्राप्त की जाती है जो कि मूतिपल या विमदआ के नाम से मशहूर है। इसे दक्षिण भारत के जेलखानों में पेचिश की बीमारी को मिटाने के लिये दिया जाता है। करीब १५ बीमारों को इसके छिलटे का रस दिया गया और परिणाम सन्तोष जनक रहा। कुनानेर के सेन्ट्रल जेल के मेडिकल ऑफिसर ने इसको पेचिश की बीमारी का उत्तम इलाज अनुभव किया है। मेन्सन ने भी अपनी ट्रॉपिकल डिसीज नामक पुस्तक में इस औषधि की बहुत तारीफ की है।

इसके फल को चांवल के साथ मिलाकर नेत्र रोगों के उपयोग में लिया जाता है। इसकी जड़ की छाल को कुचल कर तिल के तेल में भिगोकर कोबरा सर्प के काटे जाने पर विष दूर करने के लिये पिलाया जाता है।

इसकी सूखी हुई छाल में दालचीनी की तरह गन्ध आती है। इसीलिये दक्षिण कोकण में दालचीनी के बदले भी यह वस्तु उपयोग में ली जाती है। इसको जंगली दालचीनी भी कहते हैं। इसकी ताजी छाल २॥ तोले की मात्रा में पीस कर पेचिश की बीमारी में दी जाती है। पुराने कफ रोग। में भी यह एक उत्तम गुणकारी वस्तु है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह पेट के आफरे को दूर करने वाली, ज्वर निवारक और पेचिश में लाभदायक है। इसे सर्पदंश के उपयोग में भी देते हैं। इसमें क्वेसिन और एलेग्थिक एसिड पाये जाते हैं।

केस और महस्कर के मतानुसार यह औषधि सर्पदंश में निरुपयोगी है।

—०—

गूगल

नाम—

हिन्दी—गूगल। बंगाल—गूगल। लेटिन—Boswelli Glabra (बासवेलिया-ग्लेबरा)

वर्णन—

यह सालर के वर्ग का एक वृक्ष होता है। जो उत्तर पश्चिमी भारत और दक्षिण में गोदावरी से मैसूर तक पैदा होता है। इसके गोंद को भी गूगल कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह सुगन्धित, शान्ति दायक, विरेचक, धातु परिवर्तक और ऋतु स्राव नियामक है। यह चर्मरोग और सन्धिवात में उपयोगी है।

—०—

गूगल (धूप)

नाम—

पंजाब—गूगल, धूप, कनगार। कश्मीर—धूप। लेटिन—Jurinea macrocephla (जुरीनिया मेक्रोसेफला)

वर्णन—

यह वनस्पति कश्मीर से कुमाऊं तक ११००० फीट से १४००० फीट की ऊंचाई तक होती है। इसके प्रकांड नहीं होता। इसको भी गूगल बोलते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

स्टेवर्ट के मतानुसार इसकी जड़ को कुचलकर फोड़ों पर लगाया जाता है। इसका काढ़ा उदरशूल और प्रसूति ज्वर में लाभदायक है। यह हृदय को उत्तेजना देता है।

गूंदी

नाम—

संस्कृत—लघुश्लेष्मान्तकः, मुक्ताफल, बिन्दुफल, पक्वरक्तफलः। मारवाड़ी—गूंदी। हिन्दी—गूंदी। गुजराती—गूंदी। मराठी—गोंदनी। पंजाबी—गूंदी। लेटिन—Cordia Rothii. (कोर्डिया रोथी)।

वर्णन—

गूंदी का वृक्ष पंजाब, सिंध, राजपुताना, गुजरात, दक्षिण और कर्नाटक में पैदा होता है। यह वृक्ष २० से ३० फुट तक ऊँचा होता है। इसके पिंड की गोलाई ३ से ५ फीट तक होती है। इसकी शाखाएं फैली हुई और उनके अन्त का भाग अक्सर झुका हुआ रहता है। इसके पिंड की छाल मोटी और भूरे रंग की होती है। इसके पत्ते बरछी के आकार के और खुरदरे रहते हैं। इसके फूल छोटे २ और सफेद रंग के होते हैं। इन फूलों पर छोटे २ हरे फलों के गुच्छे लगते हैं। इसके फल पकने पर गहरे सिंदूरीरंग के मकोय के दानों की तरह होते हैं। इन फलों में एक मीठा और चिकना रस भरा हुआ रहता है। माघ और फागुन में इसके नवीन पत्ते आते हैं। गर्मी के दिनों में इसके फूल लगते हैं और वर्षा ऋतु में फल पकते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से गूंदी मधुर, शीतल, कृमिनाशक और वात कारक होती है। इसकी छाल संकोचक होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका पका हुआ फल गरम और तर, कच्चा फल सर्द और तर तथा पत्ते भी सर्द होते हैं।

इसका फल कब्जियत को दूर करता है, पेट के कीड़ों को नष्ट करता है, आवाज को सुधारता है, वीर्य को गाढ़ा करता है, कामेंद्रिय की शक्ति को बढ़ाता है। खांसी को दूर करता है। गूदी के लुआबमें बराबर वजन की शकर की चासनी और बबूल का गोंद मिलाकर देने से खांसी में चमत्कारिक लाभ होता है। यह नुस्खा खांसी के लिये बहुत मुफीद है। गूदी के फल को बीज समेत सुखाकर, उसका चूर्ण करके समान भाग शकर मिलाकर खाने से कमर का दर्द, वीर्य की कमजोरी और कामेंद्रिय की दुर्बलता नष्ट होती है। इसके पत्ते एक तोला, मुनक्का १ तोला और गेरू १ माशा, इन सबको पानी में पीसकर पीने से जोरशोर से बहता हुआ खून बन्द हो जाता है। इसके पत्ते, जड़ और छाल को चबाने से मुंह के छाले अच्छे हो जाते है। इसकी जड़ को जोश देकर कुल्लियां करने से दांतों का दर्द मिट जाता है। औरतों की नाभि और गर्भाशय के टल जाने पर भी यह औषधि लाभ पहुँचाती है। इसके पत्तों को काली मिरच के साथ घोट छानकर पीने से धातुपुष्ट होती है। इसकी तीन वर्ष की जड़ को जमीन से निकाल कर उसका टुकड़ा मुँह में रखने से पित्त के विकार से बैठा हुआ गला खुल जाता है।

गूमा (द्रोणपुष्पी)

नाम—

संस्कृत—द्रोणपुष्पी, द्रोणा, फलेपुष्पा, सुपुष्पी। हिन्दी—गूमा, गोमा, देलदोना। मराठी—देवकुंभा, कुंभा, तुंबा। बंगाली—द्रोणपुष्पी, घलघसे, पलकशा। गुजराती—कूबो। पंजाब—छत्र, फूमिआन गुलदोदा। संथाली—औदिअबुहर। लेटिन—Leucas cephalotus (लिउकस-सिफेलोटस)।

वर्णन—

गूमे के पौधे वर्षा ऋतु में सब दूर पैदा होते हैं और जाड़े के पश्चात् सूख जाते हैं। कहीं २ यह वनस्पति बारहों मास भी पाई जाती है। इसके पौधे आधे से १॥ फुट तक लम्बे होते हैं। इसके अन्दर घनी शाखाएं निकलकर ऊपर की ओर बढ़कर जरा नीचे को ओर झुकती है। जिससे इसके सारे पौधे का दृश्य एक गुम्मच की तरह हो जाता है। इसके पत्ते एक से तीन इंच तक लम्बे, आधे से एक इंच तक चौड़े और सुहावने होते हैं। इसके फूल डण्डियों पर लगते हैं। प्रत्येक डंडी पर प्रायः ५० से १५० तक छोटे सफेद रंग के फूल एक गुच्छे रहते हैं। इस सारे पौधे के ऊपर सफेद या भूरे रंग के रुंए रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से यह वनस्पति उष्ण, दुष्पच्य, भारी, स्वादिष्ट, रूखी, गरम, वात पित्त कारक; तीक्ष्ण, खारी, पचने में स्वादिष्ट, चरपरी, दस्तावर, तथा कफ, आम, कामला, सूजन, तमक श्वास

श्रोदल के मतानुसार गूमा चरपरा, गरम, रुचिकारक तथा वात, कफ, मंदाग्नि और पक्षाघात रोग को नष्ट करने वाला है।

गूमा के पत्ते स्वादिष्ट, रूखे, भारी, पित्तकारक, भेदक तथा कामला, सूजन, प्रमेह और ज्वर को नष्ट करने वाले होते हैं। खांसी, पीलिया, प्रदाह, दमा, अग्निमांद्य, रक्त विकार और मूत्र सम्बन्धी रोगों में ये लाभदायक हैं। इसका ताजा रस खुजली पर लगाने के काम में लिया जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह गरम और खुश्क होता है, दस्त को साफ करता है, वायु और कफ को मिटाता है, पीलिया में लाभ दायक है, पेट के कृमियों को नष्ट कर देता है, इसका काढ़ा और लोंग के साथ पीने से कफ का ज्वर मिट जाता है। सांप के विष पर इसके ताजा रस की बूंदें पिलाने से और कुछ नाक में टपकाने से बड़ा लाभ होता है। गूमा के एक फल को आध पाव पानी में पीस कर उसमें २ तोले मिश्री मिलाकर पिलाने से टपड देकर आने वाला बुखार रुक जाता है। इसके पेड़ को जड़ से उखाड़ कर उसका रस आंख में आजने से पीलिया मिट जाता है। इसके रस की मात्रा बालकों के लिये ३ माशे से ६ माशे तक और बड़े मनुष्यों के लिये १ तोले से २ तोले तक होती है।

बालकों की खांसी में इसका तीन माशे रस थोड़ी सी सुहागी और थोड़ीसी शहद के साथ मिला कर देने से लाभ होता है। इसके रस में लींडी पीपर का चूर्ण मिलाकर पिलाने से सन्निपात में लाभ होता है। इसके रस में काली मिरची का चूर्ण मिला कर कपाल पर लेप करने से वायु और कफ की वजह से होने वाला भयकर सिरदर्द भी आराम होता है।

सर्प का विष और गूमा—

सर्प के विष के ऊपर भी यह औषधि बहुत कामयाब सिद्ध हुई है। पायोनिअर नामक सुप्रसिद्ध इंगलिश पत्र में कुछ वर्षों पहले एक डाक्टर का इस वनस्पति के सम्बन्ध में एक नोट प्रकाशित हुआ था, जिसमें लिखा था कि:—

Goomee this a purely an Indian one. I have not beena ble to as certain its English equelent.

A Girl about fourteen years of age was brought to at night in a Comatose cordition, The relatives stating she had been bitten by a snake about 15 months before. I saw her and that she had six faintirrs fits, not having any relible remedy at hand. I obtaired some leaves of the gooma plant ard after extracting the juice had it blown in her nostrils The effect was instantareous the girl. Set up, as she had never been out of her sense

To make sure that the snake was poisonous one, I examined the foot and found two punctures in the skin.

I was told about this plant some years ago by an old Fakir.

अर्थात् गूमा यह एक उत्तम भारतीय वनस्पति है जिसके साथ किसी भी अंग्रेजी वनस्पति की तुलना करने मे मैं कृत निश्चय नहीं हूं।

एक दिन रात के समय एक चौदह वर्ष की लड़की बहुत खराब हालत में मेरे पास लाई गई। उसके सम्बन्धियों ने मुझे बतलाया कि करीब १५ महिने पहिले इसको साप ने काटा था। बातचीत चलते-चलते मैंने देखा कि वह लड़की रह २ कर ६ बार मूर्छित होगई। उस समय मेरे पास कोई भी दूसरी औषधि मौजूद नहीं थी। इसलिये मैंने गूमा का एक पौधा उखाड़ कर उसके पत्तों को मसल कर उसका रस उसके नाक में दोनों तरफ टपकाया। इस रस का असर इतना जल्दी हुआ कि वह लड़की तुरन्त उठ कर बैठ गई और उसके बाद फिर कभी बेहोश नहीं हुई।

उस लड़की को जिस सांप ने काटा था वह जहरी था या नहीं इसकी परीक्षा करने के लिये मैंने उसके पैरों को जाचे तो उनकी चमड़ी पर दो छिद्र नजर आये। इस औषधि में सर्प विष नाशक गुण हैं यह बात कुछ वर्षों के पहिले मुझे एक फकीर ने बतलाई थी।

गूमा का सत्व निकालने की विधि—

गूमा के पत्तों को कुचल कर उनको कपड़े में दबा कर उनका रस निकाल लेना चाहिये। जितना यह रस हो उतना ही उसमें पानी मिला कर किसी कलई के बरतन में उसको भरकर २४ घण्टे तक स्थिर पड़ा रहने देना चाहिये। दूसरे दिन उस बर्त्तन को बहुत धीरे से उठाकर उसका ऊपर का पानी नितार लेना चाहिये। उसके नीचे जो सत्व जमा हो उसको एक थाली में रखकर १ मोटे देग में पानी भरकर उस देग को आग पर चढ़ाकर, उस देग के ऊपर इस सत्व की थाली को रख देना चाहिये। उस देग की भाफ से थाली गरम होकर वह सत्व सूख जायगा। तब उसको नीचे उतारकर एक शीशी में भरकर रख लेना चाहिये। इस सत्व की मात्रा एक माशे की है।

कामला रोग में इस सत्व को शहद के साथ मिलाकर आंजना चाहिये। अफीम के विष पर इस सत्व को पानी के साथ प्रति आधे घण्टे में देना चाहिये। सर्पदंश से अगर कोई मनुष्य बेहोश हो गया हो तो इस सत्व को कागज की एक नली मे भरकर रोगी की नाक में फूंकना चाहिये। और सुध आने के बाद पानी में घोलकर पिलाना चाहिये।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह विरेचक, उत्तेजक, कृमि नाशक और पसीना लाने वाली है। इसमें उड़नशील तेल और उपक्षार रहते हैं।

केस और महस्कर के मतानुसार यह साप और बिच्छू के जहर मे निरुपयोगी हैं।

बनावटे —

अग्नि स्थायी हरताल रस—शुद्ध हरताल को ७ दिन तक गूमा के रस में खरल करके फिर उसकी एक एक रुपये भर की टिकड़िये बनाकर धूप में सुखा लेना चाहिये। इन टिकड़ियों को एक मिट्टी की हांडी में रखकर उस हाडी पर एक दूसरी हाडी को औंधी ढककर कपड़

मिट्टी कर देना चाहिये (डमरू यंत्र)। उसके बाद इस डमरू यंत्र को चूल्हे पर चढ़ाकर २४ घण्टे की हल्की आंच देना चाहिये। जब तक आंच लगे तब तक ऊपर वाली हाडी के ऊपर एक आठ तह किया हुआ कपड़ा पानी में तर करके रखना चाहिये। जैसे ही वह कपड़ा गरम हो जाय वैसे ही उसे बदल कर दूसरा कपड़ा रख देना चाहिये। २४ घण्टे के बाद उस यंत्र को ठण्डा करके ऊपर की हाडी में जमे हुए सत्व को निकाल लेना चाहिये और उस के बाद उस सत्व को फिर गूमा के रस में तीन दिन तक खरल करके टिकड़िये बांधकर डमरू यंत्र में आठ पहर की आंच देना चाहिये। उसके पश्चात् उसे खोलकर जो पका हुआ सत्व नीचे की हांडी में रहा हो उसको तथा ऊपर की हांडी वाले सत्व को मिलाकर फिर गूमा के रस में घोटकर डमरू यंत्र में आंच देना चाहिये। इस प्रकार आठ दस बार करने से वह सब सत्व स्थिर होकर नीचे की हांडी में रह जायगा। जब सब सत्व नीचे रह जाय तब उसको आकड़े के दूध में खरल करके डमरू यंत्र में खूब तेज आंच आठ पहर की देना चाहिये। ऐसी तीन आंच देने के पश्चात् यह सत्व पूर्ण तथा सिद्ध हो जाता है।

इस सत्व को दो रत्ती मात्रा में उचित अनुपान के साथ देने से श्वास, खांसी, क्षय की प्रथमावस्था, कुष्ठ, वातरक्त, उपदंश, बवासीर इत्यादि रोगों में बहुत अच्छा लाभ होता है। (जंगलनी-जड़ी बूटी)।

इसी गूमा की एक जाति और होती है जिसे गुजराती में डूँगरो कूबो, फारसी में मिश्क तरमस और लैटिन में ल्यूकस स्टेलिगेरा कहते हैं। यह वनस्पति, उत्तेजक, पेट का आफरा दूर करने वाली और ऋतुस्राव नियामक होती है।

गूलर

नाम—

संस्कृत—औदुम्बरम्, उदुम्बर, हेमदुग्धक, जंतुफल, क्षीर वृक्ष। हिन्दी—गूलर, ऊमर, परोआ गुजराती—ऊमरो। मराठी—ऊँबर, गूलर। बंगाली—यज्ञ डुंबर, जगनोडुंबर। पंजाब—ददुरि, काकमल। अरबी—जमीका। तामील—अत्तिमरम। तेलगू—अत्तिमाणु। फारसी—अंजीरे आदम। लैटिन—Ficus Glomerata (फिकस ग्लोमीरेटा)

वर्णन—

गूलर बड़, पीपल और अंजीर के वर्ग का वृक्ष है। इसका वृक्ष २० से ३० फुट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते बड़ के पत्तों से मिलते हुए मगर उनसे छोटे रहते हैं। इसकी डालियों से इसके फल फूटते हैं। इसके किसी अंग में चीरा देने से उसमें से दूध निकलता है। इसके फल अंजीर के फलों की तरह होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से गूलर शीतल, गर्भ रक्षक, व्रण को भरने वाला, मधुर

रूखा, कसैला, भारी, हड्डी को जोड़ने वाला, वर्णों को उज्वल करने वाला तथा कफ, पित्त, अतिसार और योनिरोग को नष्ट करने वाला है। इसकी छाल अत्यन्त शीतल, दुग्ध वर्द्धक, कसैली, गर्भ को हितकारी और वर्ण विनाशक है। इसके कोमल फल स्तम्भक, कसैले, रुधिर के रोगों को नष्ट करने वाले और तृषा पित्त तथा कफ को दूर करने वाले होते हैं। इसके मध्यम कच्चे फल शीतल, कसैले, रुचि कारक तथा प्रदर को नष्ट करने वाले होते हैं। इसके पके हुए फल कसैले, मधुर, कृमि पैदा करने वाले, अत्यन्त शीतल, रुचि वर्द्धक, कफ कारक तथा रुधिर विकार, पित्त, दाह, क्षुधा, तृषा, श्रम, प्रमेह और मूर्छा को हरने वाले होते हैं।

यूनानी मत— यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और पहले दर्जे में तर है। कुछ लोगों के मत से यह सर्द और तर है। इस पेड़ का फल पेट में फुलाव पैदा करता है। यह सूखी खांसी, सीने का दर्द, तिल्ली और गुर्दे के दर्द में मुफीद है। आंख की बीमारियों में भी इसके फल खाने से अच्छा लाभ होता है। अगर वर्ष भर में १०। २० दफे इस के फल खा लिये जांय तो वर्ष भर में नेत्र रोग होने का डर नहीं रहता। इसकी तरकारी बनाकर रोटी के साथ खाने से बवासीर से जाने वाला खून बन्द हो जाता है। इस पेड़ के पचांग का काढ़ा बनाकर उसमें शक्कर मिलाकर पीने से खांसी और दमा में लाभ होता है। खांसी के लिये यह एक आजमूदा चीज है। इस वृक्ष का दूध लगाने से कठिन सूजन भी बिखर जाती है। इसकी छाल को पानी में घिस कर पीने से जहर का असर दूर हो जाता है।

एक यूनानी हकीम के मतानुसार गूलर खून की खराबी, बेहोशी और गरमी को मिटाता है। यह भूख को बढ़ाता, शरीर को पुष्ट करता और गर्भवती स्त्रियों के लिये बहुत लाभदायक है। यह अधिक मात्रा में खाने से मेदे को नुकसान पहुँचाता है और पेट में फुलाव पैदा करती है। इसके दर्प नाशक अनीसून और सिकंजबीन हैं।

जिन २ रोगों में शरीर के किसी अङ्ग से खून बहता है और रुकता नहीं है उन रोगों में गूलर एक उत्तम औषधि है। नाक से खून बहना, पेशाब के साथ खून जाना, मासिक धर्म में अधिक खून का जाना, गर्भपात, वगैरह रोगों में इसके पके हुए फलों को शकर के साथ देने से फौरन लाभ होता है। अगर इससे जल्दी लाभ नहीं तो फलों के साथ इसकी अन्तर छाल को भी देना चाहिये। गर्भपात को रोकने के लिये यह औषधि देने से गर्भ को किसी प्रकार का नुकसान नहीं होता है। प्रमेह और मधुप्रमेह के रोगों में भी गूलर के फल बहुत लाभदायक हैं। ये पौष्टिक होने से धातु की कमजोरी को भी मिटाते हैं।

चेचक की बीमारी में शरीर की जलन को कम करने के लिये इसके फल दिये जाते हैं। तीव्र रक्तातिसार में गूलर का दूध देते हैं। छोटे बच्चों के "सूखा रोग" में, जबकि उनको खाया हुआ पचता नहीं है, दस्त और उल्टियां होती रहती हैं। उस हालत में गूलर के दूध की दस २ बून्द दूध में मिलाकर देने से अच्छा लाभ होता है। कण्ठमाला, बदगांठ और दूसरे फोड़े फुन्सियों पर तथा सूजन पर इसके दूध को लगाने से बहुत जल्दी लाभ होता है। कमर के दर्द में कमर के ऊपर और दमे के रोग में छाती पर इसके दूध को लगाने से अच्छा फायदा होता है।

गूलर की जड़ें अतिसार में दी जाती हैं। इसकी जड़ों का रस शीतल, स्तम्भक और उत्तम पौष्टिक होता है। जिन रोगों में शरीर से खून निकलता है। उन रोगों में यह बहुत लाभदायक है। सुजाक में इसको देने से मूत्र नलिका की सूजन कम होती है। इसकी छाल की फाट बनाकर अत्यधिक रजः स्राव पर दी जाती है।

कर्नल कीर्त्तिकर और बसु के मतानुसार इसके पत्ते, छाल और फल देशी औषधियों में काम में लिये जाते हैं। इसकी छाल संकोचक औषधि के काम में आती है। शेर या बिल्ली के द्वारा मनुष्यों या पशुओं को जो जखम हो जाते हैं उनके विष को दूर करने के काम में भी यह लिया जाता है। इसकी जड़ को छेद करके उसमें से एक रस निकाला जाता है। इसके पत्तों को पीसकर शहद के साथ मिलाकर देने से पित्त के रोग दूर होते हैं। इसके पत्तों पर छोटी २ फुन्सियाँ रहती हैं। उनको दूध में पीसकर शहद के साथ मिलाकर चेचक की बीमारी में अधिक मवादन होने देने के लिये देते हैं। इसके फल संकोचक अग्नि वर्धक, अत्यधिक रजःस्राव और मुंह से खून जाने की बीमारी में मुफीद है। इसका दूध बवासीर और अतिसार में उपयोगी है। इसको तिल के तेल के साथ मिलाकर लगाने से नासूर में भी लाभ होता है। इसका ताजा दूध बहुमूत्र और मूत्र नाली सम्बन्धी अन्य रोगों में भी मुफीद है। बम्बई में इसका रस बहुत ही प्रचलित औषधि है। यह कण्ठमाल, बदगाठ तथा अन्य प्रकार के प्रादाहिक फोड़ों पर काम में लिया जाता है।

ढोरों की महामारी में इसकी छाल को प्याज, जीरा और नारियल की डाढ़ी के साथ पीसकर सिरके में मिलाकर दिया जाता है।

तामील बोलने वाले लोग इसकी छाल के शीत निर्यास को अत्यधिक रजःस्राव की बीमारी में काम में लेते हैं।

बिहार के एक सुप्रसिद्ध वैद्य ने इसके रस से "औदुम्बर सार" नामक एक औषधि तैयार की थी यह औषधि हर तरह की सूजन, फोड़े, फुन्सी, कण्ठमाला, बदगांठ, घाव, शस्त्र के जखम इत्यादि पर बहुत ही मुफीद साबित हुई थी।

कर्नल चोपरा के मतानुसार गूलर की छाल, पत्ते, फल और दूध सब औषधियों के काम में आता है इसकी छाल का शीतनिर्यास और इसके पत्ते संकोचक हैं। इन्हें मसूड़ों की बीमारी में और खास कर बहु छिद्र युक्त मसूड़ों की बीमारी में कुल्ले करने के काम में लेते हैं। पेचिश, अत्यधिक रजःस्राव और मुँह से कफ के साथ खून निकलने की बीमारी में इनको पिलाने मे अच्छा लाभ होता है। इसके पिण्ड का निस्सरण बहुमूत्र रोग की उत्तम औषधि मानी जाती है। इसका दूध आमवात और गठिवात पर लगाने के काम में लिया जाता है।

केस और महस्कर के मतानुसार साँप और बिच्छू के जहर में यह औषधि निरुपयोगी है।

इसकी मात्रा, छाल की आधे तोले से एक तोले तक, फल की २ से ४ नग तक और दूध की १० से २० बूंद तक है।

उपयोग —

घाव—इसकी छाल के क्वाथ से साधारण और जहरीले घाव को धोने से वह जल्द भर जाता है।

आमातिसार—इसकी जड़ के चूर्ण की फक्की देने से आमातिसार मिटता है।

बल वृद्धि—इसकी जड़ में छेद करने से एक प्रकार का मद टपकता है। उस मद को लगातार कुछ लेने से बल बढ़ता है।

पित्त विकार—इसके पत्तों को पीस कर शहद के साथ चटाने से पित्त के विकार शान्त होते हैं।

खूनी बवासीर—

इसके १० बूंद से २० बूंद तक दूध को जल में मिलाकर पिलाने से खूनी बवासीर और रक्त विकार मिटता है।

बहुमूत्र—इसकी जड़ से निकाले हुए मद को पिलाने से बहुमूत्र रोग मिटता है।

कर्णमूल शोथ—इसके मद का लेप करने से कर्ण मूल की सूजन और दूसरी पेशियों की पित्त की सूजन मिटती है।

मूत्रकृच्छ्र—इसका ४ तोला मद रोज पिलाने से मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

दन्त रोग—इसके काढ़े से कुल्ले करने से दांत और मसूड़ों के रोग मिट कर दांत मजबूत होते हैं।

रक्त प्रदर—इसकी छाल का शीतनिर्याय पिलाने से रक्त प्रदर मिटता है।

रुधिर की वमन—कमलगट्टे और इसके फलों के चूर्ण को दूध के साथ देने से रुधिर की वमन बन्द होती है।

नं० २—इसके सूखे या हरे फलों को पानी में पीस कर मिश्री मिलाकर पीने से रुधिर की वमन, रक्तातिसार, रक्तार्श और मासिक धर्म में अधिक रुधिर का जाना बन्द होता है।

नकसीर—इसके पिण्ड की छाल को पानी में पीसकर तालू पर लगाने से नकसीर बन्द होती है।

गर्भस्राव—इसकी जड़ को कूटकर उसका काढ़ा करके पिलाने से होता हुआ गर्भस्राव रुक जाता है।

नासूर—इसके दूध में रूई का फोया भिगोकर नासूर और भगन्दर के अन्दर रखने से और उसको रोज बदलते रहने से नासूर और भगन्दर अच्छा हो जाता है।

मूत्र रोग—इसके दूध को दो बताशों में भरकर रोज खिलाने से मूत्र रोग मिटते है।

भिलावें की सूजन—इसकी छाल को पीस कर लेप करने से भिलावें के धुएं से पैदा हुई सूजन उतर जाती है।

पित्त ज्वर—इसकी जड़ की छाल के हिम में शक्कर मिलाकर पिलाने से तृषायुक्त पित्तज्वर छूट जाता हैं।

श्वेत प्रदर—गूलर का रस पिलाने से श्वेत प्रदर मिटता है।

प्रमेह पीठिका—गूलर के दूध में बावची के बीज भिगोकर और पीसकर लेप करने से सब प्रकार की पीडिका और व्रण मिट जाते हैं।

बच्चों का भस्मक रोग—इसकी अन्तर छाल को स्त्री के दूध में पीसकर पिलाने से बच्चों का भस्मक रोग मिटता है।

श्वेत कुष्ठ—इसकी छाल और लाला के बीजों को बराबर पीसकर ४० दिन तक फक्की लेने से श्वेत कुष्ट में लाभ होता है।

रक्तपित्त—गूलर के रस में शहद मिलाकर पिलाने से रक्त पित्त मिटता है।

—•—

गेंदा

नाम—

संस्कृत—स्थूल पुष्प, कंडुगा, कंडू। हिन्दी—गेंदा, हजारी, गुलजाफरी, मखमली। गुजराती—गलगोटो। बंगाल—गेंदा। मराठी—रोजाचे फूल, केंडू, मखमाल। बम्बई—गुलजाफरी। पंजाब—गेंदा, मेन्ताक, सद्बर्गी, टंगला। नसीराबाद—गुलगेंदो। काठियावाड़—गुलगोटो। अरबी—हजई, इमहमा। फारसी—सदावर्ग, कजेखलग। उर्दू—गेंदा। लेटिन—Calendula officinalis केलेंड्यूला आफिसिनेलिस, Tagates Erecta टेगेटस इरेक्टा, अंग्रेजी—Mary-Gold.

वर्णन—

यह एक मशहूर पौधा है। जो बरसात में जमता है। इसका पौधा करीब ३।४ फीट तक होता है। इसके पत्ते १ से २ इंच तक लंबे और चौथाई इञ्च चौड़े होते हैं। ये कंगूरेदार होते हैं। इन पत्तों के अन्दर बड़ी मस्त खुशबू आती है। इसके फूल नींबू के समान पीले रंग की पंखड़ियों से भरे हुए और बड़े २ रहते हैं इसकी कई जातियां होती हैं। एकजाति के फूल की पंखड़िया बड़ी २, रंग पीला और पत्तियां कम होती हैं। इसकी शाखाएं पतली, हरी और नीलापन लिये होती हैं। इसको जाफरी कहते हैं। दूसरी जाति का फूल बड़ा होता है। इसका रंग पीला और सुनहरी होता है। इसको सदाबर्ग और हजारा भी कहते हैं। तीसरी जाति के फूल की पंखड़ियां पीली छोटी २ और लिपटी हुई होती हैं। इसको हबशी कहते हैं। चौथी जाति के फूल की पंखड़ियां जरा बड़ी और लिपटी हुई रहती हैं इसको सुरनाई कहते हैं। पांचवी जाति के फूल की पंखड़ियां लाल रंग की, नीचे के तरफ मुड़ी हुई और भीतर की छोटी पंखड़ियां पीले रंग की, बहुत खुशनुमा होती हैं। इसको मखमली बोलते हैं। फूल की पंखड़ियों के बीच में काले रंग की बारीक केशर रहती है यही इसका बीज है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसका फूल स्वाद में तीक्ष्ण, कड़वा, और कसैला होता है। यह ज्वर और मृगी रोग में लाभदायक है। यह रक्त संग्राहक और सूजन को दूर करता है। इसके पंचांग का रस संधियों की सूजन और मोच तथा सोच के ऊपर लगाने के काम में लिया जाता है।

इसके फूल की पंखड़ियों को आधे तोला से एक तोला तक घी में भूनकर देने से बवासीर से बहने वाला खून बन्द हो जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में गरम और दूसरे या तीसरे दर्जे में खुश्क है। इसके पत्तों का रस कान में डालने से कान का दर्द बन्द होता है। इसको स्तनों पर लगाने से स्तनों की सूजन बिखर जाती है। दाद के ऊपर इसके पत्तों का रस लगातार लगाते रहने से दाद नष्ट हो जाता है। इसके पत्तों के काढे से कुल्ले करने से दांतों का दर्द फौरन दूर होता है। इसके फूल के बीच की घुंडी का चूर्ण करके शक्कर और दही के साथ लेने से दमा और खांसी दूर होते हैं।

गेंदे के पत्तों का अर्क खींचकर पीने से बवासीर का खून फौरन बन्द हो जाता है। इसका अर्क बनाने की तरकीब इस प्रकार है—

गेंद के पत्ते एक पाव और केले की जड़ २ सेर। इनको शाम को पानी में भिगोकर सुबह भबके से अर्क खींचलें। इस अर्क को पौने दो तोले की मात्रा में देना चाहिये। गेंदे के पत्ते एक तोला पीसकर मिश्री मिलाकर पीने से रुका हुआ पेशाब खुल जाता है। इसका अधिक सेवन मनुष्य की काम शक्ति को नुकसान पहुँचाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार गेंदा धातु परिवर्तक और खूनी बवासीर में लाभदायक है। इसमें एक उड़नशील तेल और Quercetagetin नामक पीले रंग का पदार्थ रहता है।

—o—

गेनती

वर्णन—

यह एक छोटी जाति की बेल होती है जो अक्सर जमीन पर बिछी हुई रहती है। इसके पत्ते अंनार के पत्तों की तरह मगर उनसे छोटे रहते हैं। इसके फूल कासनी के फूल की तरह होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह गरम और खुश्क है। सर्प के विष पर इसके सूखे पत्तों को पीस कर सुंघाने से फायदा होता है।

गेनिका

नाम—

हिन्दी—गेनिका। लेटिन—Kaolinum (केओलिनम)

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह हैजा, पेचिश, अतिसार और शरीर के अन्दर के घावों को दूर करने में लाभदायक है।

गेरू

नाम—

संस्कृत—गैरिक, स्वर्णगैरिक, पाषाण गैरिक। हिन्दी—गेरू, सोनागेरू। पंजाब—गिरि। अरबी—मुग़रा। लेटिन—Silicate of Alumira (सिलिकेट आफ एल्यूमिना), Oxide of Iron) ओक्साइड आफ आयर्न

वर्णन—

यह एक प्रकार की लाल रंग की मिट्टी है। जो विशेष कर सोने के रंग को चमकाने के काम में आती है। कुछ लोगों के मत से यह उपधातु है। हमने नागपुर के पंडित गोवर्धन शर्मा छांगाणी के यहां गेरू देखा था जो लाल रंग का अत्यन्त चमकदार और एक उपधातु की तरह नजर आता था। यह उनके यहां तीन रुपये तोले के भाव में हिन्दू युनिव्हरसिटि से आया था। मगर साधारण गेरू जो बाजार में बिकता है वह तो लाल रंग की मिट्टी की तरह होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से गेरू दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क है। यह कब्जियत और खुश्की पैदा करने वाला और पेट के कृमियों को नष्ट कर देने वाला होता है। आंख के रोग, स्तन और यकृत के लिये यह फायदे मन्द है। शरीर के किसी भी हिस्से से बहते हुए खून को रोकता है। इसका लेप करने से सूजन बिखर जाता है। इसको दूध में घोल कर कान में टपकाने से बहरेपन में लाभ होता है। उबटन की दवाइयों में इसको मिलाने से शरीर की चमक बढ़ जाती है। इसको आग पर गरम करके पानी में बुझा कर उस पानी को पिलाने से वमन और जी का मिचलाना बन्द होता है।

खजाइनुल अदविया के लेखक का कथन है कि पौने दो तोला गेरू और पौने दो तोला चीनी को डेढ़ पाव पानी में शाम को भिगोकर सवेरे घोट कर पिलाने से ३ दिन में सुजाक आराम हो जाता है। लेकिन इसमें पानी पीना मना है, प्यास लगने पर दूध पानी की लस्सी पीना चाहिये। गेरू को शिकञ्जबीन सादा के साथ चाटने से पित्ती में फायदा होता है।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से गेरू रक्त पित्त, रक्त विकार, कफ, हिचकी और विष का नाश करता है। यह नेत्रों को हितकारी, बलकारक, वमन को दूर करने वाला और हिचकी को रोकने वाला है।

सुवर्ण गेरू स्निग्ध, मधुर, कसैला, नेत्रों को हितकारी, शीतल, बलकारक, व्रण रोपक, विशद कान्ति जनक तथा दाह, पित्त, कफ, रुधिर विकार, ज्वर, विष, विस्फोटक, वमन; अग्नि से जले हुए व्रण, बवासीर और रक्त पित्त को हरने वाला है।

इसके चूर्ण को शहद में मिलाकर चटाने से बच्चों की हिचकी बन्द होती है।

यह औषधि तिल्ली और आंतों को नुकसान पहुँचाती है और पित्त पैदा करती है। इसके दर्प नाशक शहद और शाल पर्णी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह शरीर के भीतरी भाग से होने वाले रक्त बहाव को मिटाती है।

गेहूं

नाम—

संस्कृत—अरूपा, बहुदुग्धा, गोधूमा, क्षीरी, म्लेच्छ भोजन, यवना, गेहूं, मिहूं, कुनक। मराठी—गहू, गहूगा। गजराती—घऊं। बंगाल—गम। अफगानिस्तान—गनम, गदम। फारसी—गंदुम। लेटिन—Triticum Aistivum. (ट्रीटिकम एस्टिव्हम), T. Vulgare (ट्रीटीकम व्हलगेरा)।

वर्णन—

गेंहू सारे भारत वर्ष में खाद्य पदार्थ की तरह काम में लिये जाते हैं। इसलिये इनके विशेष वर्णन की आश्यकता नहीं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से गेहू शीतल, पौष्टिक, वीर्य वर्धक, भारी, मधुर, स्निग्ध, कामोद्दीपक, रुचि कारक, देह को स्थिर करने वाले, वात पित्त नाशक और कुछ दस्तावर हैं।

यूनानी मत- यूनानी मत से गेहू एक उत्तम पौष्टिक पदार्थ है। इसकी रोटी तन्दुरुस्ती के लिये दूसरे सब अन्नों से अच्छी है। यह खून पैदा करती है। शरीर को मोटा करता है और कामेंद्रिय को ताक़त देती है। गेहूं के मग़ज को शक्कर और बादाम के साथ पीने से सीने का दर्द दूर होता है। अगर कोई जहरीला कीड़ा काट खावे तो गेहू के आटे को सिरके के साथ मिलाकर लगाने से फायदा होता है। अगर किसी को कुत्ता काटे तो उसकी काटी हुई जगह पर गेहू के आटे को पानी में मिला कर बांधदे। थोड़ी देर के बाद उसको खोल कर किसी कुत्ते के आगे डाले अगर कुत्ता उस आटे को नहीं खावे तो समझ लेना चाहिये कि उस आदमी को पागल कुत्ते ने काटा है।

गेहू को जलाकर उसमें समान भाग गुड मिलाकर थोड़े २ घी के साथ डेढ़ तोले की मात्रा में रोज खाने से चोट और मोच का दर्द बिलकुल जाता रहता है। यहा तक कि चोपाये का चोट को भी इससे फायदा होता है। इस औषधि को मोमियाई हिन्दी कहते हैं।

गेहू में से पाताल यन्त्र के द्वारा एक प्रकार का तेल निकाला जाता है। यह तेल दाद, झाई, सफेद दाग और सिर की गंज में बहुत मुफीद है। इसको लगाने से सूजन मुलायम होकर बिखर जाती है। और जलन मिट जाती है।

उपयोग—

खुजली—इसके आटे का ठण्डा या गरम लेप करने से त्वचा की दाह, खुजली, पीब युक्त फोड़े फुन्सी और अग्नि के जले हुए पर लाभ होता है।

खांसी—१। तोले गेहू और दो माशे सेंधे निमक को पाव भर पानी में औटाकर तिहाई पानी रहने पर छानकर पिलाने से सात दिन में खांसी मिट जाती है।

नारू—गेहू और सन के बीजों को पीसकर घी में भूनकर उसमें गुड़ मिलाकर लड्डू बांध कर खाने से नारू गल जाता है।

पथरी—गेहू और चनों को औटाकर उनका पानी पिलाने से वृक्क, गुर्दा और मूत्राशय की पथरी गल जाती है।

मूत्रकृच्छ्र—दो तोले गेहू के सत को रात को भिगोकर सवेरे पीने से मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

गेहूं जङ्गली

इसका पौधा गेहू से बिलकुल मिलता जुलता होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह पहले दर्जे मे गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क है। यह वायु की सूजन को बिखेरता है। खुश्की पैदा करता है। सख्त जगह को मुलायम करता है। मेदे के कीड़ो को मारता है। चाकसू और मिश्री के साथ इसको पीसकर आख में लगाने से आख के भीतर के सर्द और गूंगनी कट जाती है। इसका लेप सूखी खुजली में फायदे मन्द है। (खजाइनुल अदविया)

—०—

गैदर

नाम—

बम्बई—गैदर, बादर रोटी। तेलगू—कदेलू-चेवि-युक। अंग्रेजी—केवेजट्री। लेटिन—Notonia Grandiflora (नोटोनिया ग्रेंडिफ्लोरा)

वर्णन—

यह एक क्षुप जाति की वनस्पति पहाड़ों पर पैदा होती है। यह झाड़ीनुमा पौधा है। इसका तना मोटा और दलदार होता है। इसके बहुत शाखाएँ नहीं होतीं। इसके पत्तों के गिर जाने से इसके पेड़ पर कुछ खड्डे से हो जाते हैं। इसके पत्ते ६.२ से १२.५ से० मी० तक लम्बे और २.५ से ७.५ से० मी० तक चौड़े होते हैं। ये बहुत दलदार होते हैं। इसके फूल डाली के सिरे पर झूमकों में लगते हैं। ये हलके पीले रग के होते हैं। इसकी मजरी लम्ब-गोल होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

सन् १८६० में डाक्टर ए० गिप्सन ने इस वनस्पति को पागल कुत्ते के जहर पर लाभदायक बताया। उन्होंने इसके उपयोग का तरीका इस प्रकार बतलाया, इसकी ताजा डालियों को ४ औंस लेकर एक पिंट ठण्डे पानी में रात को भिगो देना चाहिये। सवेरे इनको मसलने से इनमे से एक तरह का हरा

रस निकलता है। उस हरे रस को पानी के साथ मिलाकर पी लेते हैं। फिर इसी तरह शाम को यह रस निकाल कर आटे के साथ मिलाकर खाने के उपयोग में लेते हैं। इस तरह लगातार ३ रोज तक करने से कुत्ते के विष में बहुत लाभ होता है।

डॉक्टर वारिंग का कहना है कि यह औषधि पागल कुत्ते पर अजमाइ गई। इसके जो भी परिणाम सामने आये उनके आधार पर कोई निश्चित सम्मति नहीं दी जा सकती। कुत्ते के काटते ही काटे हुए स्थान पर दाहक वस्तुएं लगाई गई और उसके पश्चात् इस औषधि का प्रयोग किया गया। ऐसी स्थिति में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इस वस्तु की रोग निवारक शक्ति कितनी है।

डायमाक का कथन है कि इस वनस्पति का रस डॉक्टर लेन्स ने और हमने कुत्तों पर अजमाया और बाद में यही सन १८६४ में बम्बई के अस्पताल में अजमया गया। १ ड्राम की मात्रा में देने पर यह अपना मृदु विरेचक गुण बतलाता है। इसके सिवाय इसका कोई भी दूसरा प्रभाव दृष्टि गोचर नहीं हुआ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति पागल कुत्ते के काटने के कारण पैदा हुए रोग पर लाभ दायक है।

—०—

गोखुरू छोटा

नाम —

संस्कृत— बहुकंटका, त्रिकंट, इक्षुगन्धा, गोक्षुर, क्षुद्रगोक्षुर। हिन्दी—गोखरू, छोटागोखरू, बम्बई—गोखरू। गुजराती—गोखरू, मीठा गोखरू, नहाना गोखरू। पंजाब— भाखरा, देशी गोखरू, लोटक। बंगाल—गोखरि। अरबी— बस्तीतज, बिस्तेरूमी। फारसी— खरेखशक, खुसुक। लेटिन— Tribuls Terrestris (ट्रिब्यूलस टेरेस्ट्रिस)

वर्णन—

गोखरू के पौधे वर्षाऋतु में बहुत पैदा होते हैं। ये जमीन के ऊपर छत्ते की तरह फैले हुए रहते हैं। इनके पत्ते चनों के पत्तों की तरह मगर उनसे कुछ बड़े होते हैं। इसके फूल पीले रंग के और कांटे वाले होते हैं। इसके सारे पौधे पर रुआं होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से गोखरू की जड़ और फल शीतल पौष्टिक, कामोद्दीपक रसायन, भूख बढ़ाने वाले तथा पथरी, और मूत्र सम्बन्धी बीमारियों में लाभदायक हैं। प्रमेह, श्वास, खांसी हृदय रोग, बवासीर, रक्त दोष, कुष्ट और त्रिदोष को ये नष्ट करते हैं।

इसके पत्ते कामोद्दीपक और रक्त शोधक होते हैं। इसके बीज शीतल, मूत्रल, सूजन को नष्ट

करने वाले, आयु को बढ़ाने वाले तथा सुजाक, प्रमेह और सुजाक को दूर करने वाले होते हैं। इनका चार मधुर, शीतल, कामोद्दीपक, वात नाशक और रक्त शोधक होता है।

गोखरू मूत्रपिंड को उत्तेजना देने वाले, वेदना नाशक और बल दायक होते हैं। मूत्रेन्द्रिय की श्लेष्म त्वचा पर इनका प्रत्यक्ष असर होता है। गोखरू को जड़ आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध दशमूल क्वाथ का एक अंग है। सुजाक और बस्तिशोथ में भी गोखरू अच्छा काम करते हैं। इनमें वेदना नाशक गुण कम होने की वजह से ऐसे कष्टप्रद रोगों में इनको खुरासानी अजवायन के साथ देते हैं। बस्तिशोथ अथवा मूत्रपिण्ड की सूजन में जबकि मूत्र चार स्वभावी, दुर्गंध पूर्ण और गन्दला होता है, तब इनका क्वाथ शिलाजीत के साथ दिया जाता है। इनमें वाजिकरण धर्म भी बहुत उत्तम है। गोखरू और तिलों का सम भाग चूर्ण शहद या बकरी के दूध के साथ देने से हस्त मैथुन की वजह से पैदा हुई नपुंसकता दूर होती है। गर्भाशय को शुद्ध करने तथा बन्ध्यत्व का मिटाने के लिये भी इनका उपयोग किया जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका फल तर और भूत्रल,होता है। इसके चूर्ण को फक्की देने से स्त्रियों का बंध्यत्व मिटता है। इसके पत्ते को २ घण्टे तक पानी में भिगाकर मल छानकर पिलाने से सुजाक में लाभ होता है। २ ताले से लेकर ७ ताले तक गोखरू का काढ़ा दिन में ३।४ बार पिलाने से मसाने की पुरानी सूजन उतर जाती है। गोखरू के फल और उसके पत्तों का स्वरस दिन में २।३ बार २ से ५ तोले तक पिलाने से पेशाब को जलन मिट जाती है। छोटे गोखरू के ६ माशे चूर्ण को मिश्री के साथ फक्की देने से प्रमेह में लाभ होता है। गोखरू को शतावरी के साथ ओटाकर पिलाने से कामेंद्रिय की शक्ति बढ़ती है। इसके ३ माशे चूर्ण को शहद के साथ में मिलाकर चटाने से तथा ऊपर से बकरी का दूध पिलाने से पथरी गल जाती है।

इसके अधिक सेवन से सिर, तिल्ली, गुर्दा और पट्ठों को नुकसान पहुँचता है। कभी २ यह कँपकँपी भी पैदा कर देता है इसके दर्प को नाश करने के लिये बादाम का तेल, गाय का घी और शहद का प्रयोग करना चाहिये। इसकी मात्रा ६ माशे से १॥ ताले तक की है।

दक्षिणी हिन्दुस्तान में गोखरू को एक प्रभाव शाली मूत्रल औषधि मानते हैं। वहां इसके फल और इसकी जड़ को चावल के साथ पानी में उबाल कर बीमार को देते हैं। जिससे फौरन पेशाब उतर जाता है।

चीन में इसका फल पौष्टिक और संकोचक माना जाता है। वहां इसे खांसी, खुजली, अनैच्छिक रजः स्राव, रक्त न्यूनता और नेत्र रोगों में काम में लिया जाता है। पेचिश में और रक्त स्राव में भी यह बहुत लाभ दायक माना जाता है। मसूड़ों के फूलने पर और मुख क्षत पर इसके काढ़े के कुल्ले कराये जाते हैं।

दक्षिणी आफ्रिका में यह संधिवात रोग को दूर करने के काम में लिया जाता है। इसकी जड़ का शीत आमाशय निर्यासके प्रदाह में लाभदायक माना जाता है।

कोमान के मतानुसार यह सारा वृक्ष खासकर इसके फल शीतल, मत्रल, पौष्टिक और कामो-

दीपक होते हैं। यह पथरी और नपुंसकता में विशेष फायदा पहुंचाते हैं। इन्हें जलोदर की बीमारी में और खासकर ब्राइट्स डिसीज में काम में लिया जाता है। ऐसे कई बीमारों को इससे बहुत लाभ हुआ। सुजाक और आमवात से पीड़ित रोगियों को भी यह दिया गया और उनको भी इससे काफी लाभ हुआ। इन रोगो में इसे Bdellium के साथ में दिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार गोखरू का सारा वृक्ष और विशेषकर इसके फल और जड़ें उपचार में काम में ली जाती हैं। इसके फल शीतल, मूत्रल, पौष्टिक और कामोद्दीपक होते हैं। मूत्र सम्बन्धी व्याधियों, नपुंसकता और पथरी में ये लाभ दायक हैं। इनका शीत निर्यास उत्तरी भारत में खांसी, हृदय रोग और मूत्र सम्बन्धी विकारों को दूर करने के लिये दिया जाता है। दक्षिणी यूरोप में इसको मृदु विरेचक और मूत्रल पदार्थ के रूप में काम में लेते हैं। इस वनस्पति का प्रभाव मूत्र मार्ग की श्लेष्मिक झिल्लियों पर प्रत्यक्ष होता है। इस कार्य में (अर्थात् मूत्र सम्बन्धी व्याधियों को दूर करने के लिये इसको अफीम अथवा खुरासानी अजवायन के साथ में देते हैं।

रासायनिक विश्लेषण—

रासायनिक विश्लेषण के द्वारा इसमें कुछ उपक्षार और एक प्रकार का सुगन्धित तत्व पाया गया। इसके उपक्षारों को अलग करने के बाद जो पदार्थ इसमें बचते हैं उनमें शक्कर वगैरा रहती है जो कि औषधि शास्त्र में विशेष उपयोगी नहीं होती।

इसके रस को औषधि क्रिया को पूरी तरह पर जाचने से मालूम होता है कि यह रक्त भार को बढ़ा देता है। गुर्दे पर भी इसका प्रभाव होता है। इसमें मूत्रल गुण भी मौजूद है। इसका यह मूत्रल गुण इसके बीजों में पाये जाने वाले नाइट्रेट और उड़न शील तेल की वजह से ही होता है इसके सिवाय दूसरी बीमारियों में जो इसकी उपयोगिता बतलाई जाती है वह सिद्ध नहीं हो सकी।

के० एल० दे के मतानुसार यह वनस्पति खास करके इसके सूखे फलों का शीत निर्यास इसके मूत्रल गुणों की वजह से भारतवर्ष में बहुत उपयोग में लिया जाता है। कुछ वर्षों के पहिले डाक्टर थामस फिरट्री एफ० एल० एस० लन्दन ने छोटे गोखरू के एक्स्ट्रेक्ट और शरबत को अनैच्छिक वीर्य स्राव, मूत्रक्रियाप्रणाली तथा जननक्रियाप्रणाली के कई रोगियो पर बहुत सफलता के साथ अजमाया था।

मतलब यह कि यह वनस्पति मूत्र सम्बन्धी रोग, सुजाक, पथरी, नपुंसकता, अनैच्छिक, वीर्य स्राव और सन्धि वात पर बहुत उपयोगी है।

गोखरू बड़ा

नाम—

संस्कृत—गोक्षुर, त्रिकंटक। हिन्दी—बड़ा गोखरू, मालवी गोखरू, फरीद बूंटी, कड़वा गोखरू। गुजराती—उभो गोखरू, मालवीर। मराठी—मोठे गोखरू। पंजाब—गोखरूकलां। फारसी—

खस्केकला। तामील—आनेनेरिजल। तेलगू—एनुगपल्लेरू। मलेयामल—काकमुल्लु। लेटिन—Pedalium Murex (पेडेलियम मुरेक्स)।

वर्णन—

बड़े गोखरू के पौधे बरसात में बहुत पैदा होते हैं ये एक फुट से १॥ फुट तक ऊँचे होते हैं। इनकी डालिया जमीन पर झुकी हुई रहती हैं। इनके पत्ते इमली के पत्तों से कुछ छोटे, फूल पीले और फल ३ या ५ कांटेवाले होते हैं। इनकी जड़ केशरिया और पौधे लुआवदार होते हैं। यह वनस्पति काठियावाड़, गुजरात, कोकण, राजपुताना और मध्यभारत में खेतों के किनारे और रेतीली जमीन में बहुत होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से गोखरू की जड़ और फल मीठे, शीतल, पौष्टिक, मज्जावर्द्धक, कामोद्दीपक और धातु परिवर्तक होते हैं। पथरी, मूत्राशय के रोग और गुदाभ्रंश रोग में यह लाभदायक है। यह जलन को कम करते हैं। त्रिदोष को नष्ट करते हैं। कफ रोग, दमा और श्वास कष्ट में फायदा पहुँचाते हैं। चर्मरोग, हृदयरोग, बवासीर और कुष्ठ में मुफीद हैं। इनके पत्ते कामोद्दीपक और रक्तशोधक होते हैं। इनका क्षार शीतल, कामोद्दीपक, वातनाशक और रक्तशोधक होता है।

गोखरू, कौंच बीज, सफेद मूसली, सफेद सेमर की कोमल जड़ें, आंवला, गिलोय का सत्व और मिश्री इन सातों चीजों को समान भाग लेकर चूर्ण बनाया जाता है। इस चूर्ण को वृद्धदण्ड चूर्ण कहते हैं। इस चूर्ण को एक तोला से डेढ़ तोले तक की मात्रा में प्रतिदिन दो बार दूध के साथ सेवन करने से हर तरह की नपुंसकता, वीर्य की कमजोरी, हस्तक्रिया के विकार, स्वप्नदोष और अनैच्छिक वीर्यस्राव बन्द होते हैं।

अपस्मार रोग के ऊपर भी यह वनस्पति बहुत उपयोगी साबित हुई है। इस रोग के लिये इस औषधि का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है गोखरू की ताजा हरी जड़ों के ऊपर की छाल सोलह तोले लेकर उसको चटनी की तरह बारीक पीसकर लुग्दी बनाकर उस लुग्दी को एक कलईदार पीतल की कढाई में रखदे और उस कढ़ाई में २५६ तोले पानी और ६४ तोले घी डालकर मन्दी आंच से पकावे, जब सब पानी जलकर केवल घी शेष रह जाय तब उसको उतारकर छान लें। इस घी को एक से चार तोले तक की मात्रा में सबेरे शाम लेने से और भोजन में केवल दूध और भात खाने से अपस्मार का भयंकर रोग नष्ट हो जाता है।

नये सजाक में इसकी ताजा वनस्पति का शीत निर्यास दोनों टाइम देने से बहुत लाभ होता है। अगर ताजा वनस्पति मिलने की सुविधा न हो तो गोखरू का काढ़ा बनाकर उसमें मुलेठी और नागरमोथा मिलाकर देने से भी सुजाक में अच्छा लाभ होता है। स्वप्नदोष, पेशाब के साथ वीर्य-जाना, और काम शक्ति की कमी में गोखरू का फांट बनाकर दिया जाता है अथवा फलों का चूर्ण ६ माशे की मात्रा में शक्कर, घी और दूध के साथ देते हैं। बड़े गोखरू का पौष्टिक और वाजिकरण

धर्म कभी २ बड़ा स्पष्ट नजर आता है। प्रसूति रोग में इसके फलों का काढ़ा देने से लाभ होता है। यकृत और तिल्ली की बढ़ती में भी इसका काढ़ा अथवा पचांग का रस देने से बहुत फायदा होता है। इसका मूत्रल गुण बहुत उत्तम और बहुत जल्दी दृष्टिगोचर होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से गोखरू प्रमेह, यकृत की गरमी, सुजाक, पेशाब की जलन और मूत्राशय के रोगों में मुफीद है। यह पेशाब और मासिक धर्म को साफ करता है। गुरदे और मसाने की पथरी को तोड़कर निकाल देता है। कमर का दर्द, जलोदर और वायु के उदर शूल में लाभ पहुंचाता है। वीर्य को बढ़ाता है। कामोद्दीपक है। इसको पानी में उबालकर उस पानी को कमरे में छिड़कने से पिस्सू भाग जाते है। इसको पीसकर गरम करके लेप करने से सूजन बिखर जाती है। गोखरू को तीन बार दूध में जोश देकर तीनों बार सुखाकर उसके बाद उनका चूर्ण बनाकर खाने से कामेन्द्रिय की शक्ति बहुत बढ़ती है। इसकी तरकारी खून को साफ करती है। इसके पचांग को पानी में भिगोकर खूब मसलने से इसका लुआब निकल आता है इस लुआब में मिश्री मिलाकर पीने से सूजाक और पेशाब की जलन मे बहुत लाभ होता है।

जख्मों या घावों के ऊपर भी यह वनस्पति अच्छा काम करती है। इसके जोशांदे से घावों को धोने से या इसका रस लगाने से घावों का मवाद साफ होकर घाव जल्दी भर जाते हैं। नेत्र रोगों के ऊपर भी इस वनस्पति का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसका ताजा रस आंख में लगाने से आंख की बीमारियों में लाभ होता है। इसको ताजा कुचलकर आंख के ऊपर बांधने से आंख की ललाई, आंख से पानी का बहना और आंख के खटकने में फायदा होता है। इसको पानी में जोश देकर उस पानी से कुल्ले करने से मसोड़ों के जखम और बदबू मिटजाती है। हलक की सूजन भी इससे नष्ट हो जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार गोखरू रात्रि के समय होनेवाले अनैच्छिक मूत्रस्राव और स्वप्न-दोष तथा नपुंसकता और धातु दौर्बल्य में काम में लिया जाता है।

उपयोग—

पथरी—गोखरू और पाषाण भेद का शीतनिर्यास अथवा काढ़ा बनाकर पिलाने से पथरी गल जाती है।

(२) भेड़ के दूध में शहद मिलाकर उसके साथ इसके चूर्ण को फंकाने से पथरी दूर होती है।

आमवात—गोखरू और सूंठ का काढ़ा प्रतिदिन सवेरे पिलाने से आमवात में लाभ होता है।

प्रसूति रोग—गोखरू का जोशांदा बनाकर पिलाने से प्रसूति के बाद गर्भाशय में रही हुई गन्दगी साफ हो जाती है।

पुराना सुजाक—गोखरू के पंचांग का जोशांदा बनाकर उसमें जवखार मिला कर पीने से पुराना सुजाक मिटता है।

बनावटें—

गोखरू रसायन—गोखरू के पौधे पर जब उसके फल कच्चे हों तब उसको उखाड़ कर छाया

में सुखा लेना चाहिये। उसके पश्चात् उसको कूट कर उसका बारीक चूर्ण कर लेना चाहिये। उसके पश्चात् उस चूर्ण को हरे गोखरू का रस निकालकर उस रस में तर करके सुखाना चाहिये। इस प्रकार उसे सात बार हरे गोखरू के रस में तर करके सुखा लेना चाहिये। इस चूर्ण को प्रतिदिन २ तोले की मात्रा में दूध मिश्री के साथ सेवन करने से और तेल,खटाई,लाल मिर्च इत्यादि चीजों का परहेज करने से पुरुष के धातु सम्बन्धी सभी विकार दूर हो जाते हैं। पेशाब में खून का गिरना, पेशाब का रुक २ कर कष्ट से आना, पथरी, प्रदर, प्रमेह इत्यादि सब रोग नष्ट हो जाते हैं। शरीर का सौन्दर्य और बल बहुत बढ़ता है। कामशक्ति में अत्यन्त वृद्धि होती है। यह रसायन परम वाजिकरण है।

गोक्षुरादि चूर्ण—गोखरू, शतावरी, तालमखाना, कौंच के बीज, खिरेंटी के बीज और नगेरन की जड़ इन छः चीजों को समान भाग लेकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इस चूर्ण को १ तोला की मात्रा में १ तोला मिश्री मिलाकर सवेरे, शाम गाय के दूध के साथ लेने से काम शक्ति बढ़ती है।

गोखरू पाक—गोखरू एक सेर लेकर उनका बारीक चूर्ण करके चार सेर दूध में उनको डालकर मन्दी आंच पर उनका खोआ बनालें। फिर जावित्री, लौंग, लोध, काली मिर्च, कपूर, नागरमोथा, सेमर का गोंद, रुद्रवंती, इलायची, अकला, पीपल, केशर, नाग केशर, सफेद इलायची, पत्रज, दालचीनी, कौंच के बीज, अजवायन ये सब चीजें दो २ तोले, धुली हुई भाग ४ तोले और अफीम १ तोला इन सबका चूर्ण करके उस खोए में मिलादे और बत्तीस तोले घी में उन सब औषधियों को भूनलें। उसके बाद सब औषधियों का जितना वजन हो, उतने ही वजन की शक्कर की चासनी करके उस चासनी में इन औषधियों को मिलाकर एक २ छटाक के लड्डू बना लें। इस पाक को सवेरे, शाम दूध के साथ सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेह और सब प्रकार के वीर्य दोष मिटकर काम शक्ति बहुत प्रबल होती है।

गोखरूकलाँ

नाम—

हिन्दी—गोखरूकलाँ, देशी गोखरू। पंजाब—बाखरा, हसक, लोटक। सिन्ध—लटक, निन्दोनिकुरद, त्रिकुण्डी। उर्दू—बाखरा। लेटिन—Tribulus Alatus (ट्रिब्यूलस एलेटस)

वर्णन—

यह भी एक गोखरू की जाति है जो सिंध, कच्छ और पश्चिमी राजपुताने के रेगिस्थान और बलुचिस्थान में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका फल उत्तम, क्षुधा वर्धक पदार्थ है। यह ऋतुस्राव नियामक है और प्रदाह को कम करता है। इसके गुण छोटे गोखरू के समान ही हैं। बलुचिस्थान में इसके फल प्रसूति के बाद के गर्भाशय के विकारों को दूर करने के लिये दिये जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके गुण दोष और प्रभाव गोखरू के गुण दोष और प्रभाव से मिलते जुलते हैं।

गोगलमूल

नाम—

हिन्दी—गोगलमूल। लेटिन—Gerish Elatum (गेरिश इलेटम)

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ पौष्टिक, संकोचक और कृमि नाशक होती है।

— o —

गोइला

नाम—

मराठी—गोइली, तुगेलमी। कनाड़ी—कुर्गिनिशालि। लेटिन—Ipomoea Kampanulata (आयपमोइया कंपेन्यूलेटा)

वर्णन—

यह वनस्पति दक्षिण, कोकण, पश्चिमी घाट, सीलोन और मलाया में पैदा होती है। यह एक लम्बी पराश्रयी वेल है। इसकी कोमल शाखाएं रुएदार और पुरानी शाखाएं मुलायम होती हैं। इसके पत्ते अण्डाकार, लंबी नोक वाले, मोटे, फिसलने और दोनो तरफ रुएदार होते हैं। इसकी फली लम्बगोल और मुलायम रहती हैं, इसके बीजों पर हलका मखमली रुआ होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि सर्पदंश में उपयोगी मानी जाती है।

— o —

गोगी साग

नाम—

पंजाब—गोगीसाग, नाना, नारपनीरक, सोनचाल, सप्परा। लेटिन—Malva Parviflora (मालवा परवीफ्लोरा।

वर्णन—

यह वनस्पति बंगाल, संयुक्त प्रदेश, काश्मीर, पंजाब, सिन्ध, बम्बई, मैसूर, मदूरा और अफगानिस्थान में पैदा होती है। यह एक कांटेदार और फैलने वाली वनस्पति है। इसके बीज काले और मुलायम होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका शीत निर्यास स्नायु मण्डल के लिये एक पौष्टिक पदार्थ है। घाव और सूजन पर इसके पत्तों का पुल्टिस बांधने से लाभ होता है। इसके पत्तों का काढ़ा आंतों के कृमियों को नष्ट करता है और अत्यधिक रज स्राव को कम करता है। इसके बीज खांसी और गुर्दे की तकलीफ में शान्ति दायक वस्तु की तरह दिये जाते हैं।

—•—

गोंज

नाम—

हिन्दी—गोंज। बंगाली—नवलता। पंजाब—गुंज। उरिया—कमेचो। तामील—अनई-कट्टु, कोडिपुंगु, पुनलकोडी, तापल, तिरानी। तेलगू—चेरटलट्टु। लेटिन—Derris Scandens. (डेरिस स्केन्डन्स)।

वर्णन—

यह एक बहुत बड़ी पराश्रयी लता है। इसकी लम्बाई ७०, ८० फीट तक होती है। इसके पत्ते ७.५ से १५ सेंटिमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल बहुत लगते हैं। इसकी फली २॥ से ७॥ से टिमीटर तक लम्बी होती है। यह देल दगाल, चिटगांव और मध्यभारत में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी छाल पित्त निस्सारक और सर्पदंश में उपयोगी मानी जाती है। पेस और महरकर के मतानुसार सर्पदंश में इसका कोई प्रभाव नहीं है।

गोनयुक

नाम—

कश्मीर—गोनयुक। लेटिन—Lepidium Latifolium (लेपिडियम लेटिफोलियम)।

वर्णन—

इसका पौधा बहुत छोटा रहता है इसके पत्ते और पापडे लम्ब गोल होते हैं। यह वनस्पति कश्मीर और उत्तर पश्चिमी एशिया में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति दस्तावर, शीतादि रोग प्रतिशोधक और चर्म रोगों में उपयोगी है।

गोपाली

नाम—

बम्बई—गोपाली। लेटिन—Anisomeles Indica (एनीसोमेलस इण्डिका)।

वर्णन—

यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होती है। इसका पौधा छोटे कद का शाखाएँ चौकोर, पत्ते मोटे, फल गोलाकार, कुछ चपटे और पकने पर काले हो जाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह पेट का आफरा उतारने वाली, संकोचक और पौष्टिक है। इसमें पाया जाने वाला इसेंशिअल ऑइल गर्भाशय की तकलीफों में लाभदायक है।

गोबरी

नाम—

नैपाल—गोबरी। गढ़वाल—बनग। लेटिन—Aconitum Balfourii (एकोनिटम बेलफोरी।

वर्णन—

यह वनस्पति नैपाल से लगाकर गढ़वाल तक हिमालय के प्रांतों में पैदा होती है। इसका तना सीधा और कई फीट ऊंचा होता है। इसके पत्ते शुरू में रुएंदार और बाद में चिकने तथा फिसलने हो जाते हैं। इसके बीज लम्बे और गहरे बादामी रंग के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसमें ·४ प्रतिशत सिऊड एकोनिटम नामक विषैला पदार्थ पाया जाता है।

गोपीचन्दन

नाम—

संस्कृत—सौराष्ट्री, पर्पटी, कालिका, सती, सुजाता, गोपीचन्दन। हिन्दी—गोपीचन्दन, सोरठ की मिट्टी। बंगाली—सौराष्ट्र देशीय मृतिका। मराठी—गोपीचन्दन। गुजराती—गोपीचन्दन।

वर्णन—

यह एक जाति की मिट्टी है। जो किसी कदर खुशबूदार होती है। इसका रंग मटमैला होता है। यह सौराष्ट्र देश की तरफ पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से गोपी चन्दन शीतल,दाह नाशक, तृषा को दूर करने वाली, विष निवारक, और विसर्प रोग को हरने वाली है। प्रदर,रुधिर विकार तथा पित्त और कफ को यह नष्ट करता है। इसका लेप करने से गिरता हुआ गर्भ रुक जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह सर्द है। गर्मी की जलन को मिटाती है। खून का फसाद, मासिक धर्म की अधिकता, योनिद्वार से सफेद पानी का बहना, जलन और जहर के उपद्रवों को दूर करती है। इसको पानी में घोल कर शक्कर मिलाकर छान कर पीने से मासिक धर्म की अधिकता और श्वेत प्रदर में लाभ होता है। फोड़े फुन्सियों पर इसका लेप करने से लाभ होता है।

—०—

गोमेद मणि

नाम—

संस्कृत—पिंगस्फटिक, गोमेद, पीत रत्नक। हिन्दी—गोमेद मणि। बंगाल—गोमेद। तेलगू—गोमेदकम्। लेटिन—Onyx (ओनिक्स)

वर्णन—

गोमेद मणि हिमालय और सिन्ध में होती है। स्वच्छ कान्ति वाली, भारी, चिकनी, दीप्तिमान व गोल, गोमेद मणि उत्तम होती है। जाति के भेद से यह चार प्रकार की होती है। सफेद रंग की ब्राह्मण, लाल रंग की क्षत्रिय,पीले रंग की वैश्य और नीले रंग की शूद्र होती है। सफेद रंग की,चिकनी, अत्यन्त पुरानी, गोमेद मणि को धारण करने से लक्ष्मी और धन की वृद्धि होती है। हलके, कुरूप, खरदरी और मलिन गोमेद मणि को धारण करने से सम्पत्ति, बल और वीर्य्य का नाश होता है। जो दोष हीरे में हैं, वे ही दोष गोमेद मणि में भी होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मय से गोमेद मणि कफ, पित्त नाशक, क्षय रोग को दूर करने वाली, नेत्रों को हितकारी, पाण्डुरोग को नष्ट करने वाली, दीपन, पाचक, रुचि कारक, त्वचा को हितकारी, बुद्धि वर्द्धक और खांसी को दूर करने वाली होती है।

—०—

गोभी

नाम—

संस्कृत—अधोमुखा, अनडुजिव्हा, दरवी, दर्विका, गोजिव्हा, गोभी। हिन्दी—गोभी, फूलगोभी। बंगाली—गजियालता, दधियाला, यामदुलम। बम्बई—हस्तिपदा, महका, पथरी। मराठी—

गोजीभ,पथरी। गुजराती—गोभी। फारसी—कलनेरूमी। अरबी—क़िबनरति। तामील—अ नशोवदि। तेलगू—इदुमलि केचडु, इनुगविरा, इरि गवक्रा। उर्दू—गोभी। लेटिन—Elephantopus Scaber (एलीफेण्टापस स्केबर)।

वर्णन—

फूल गोभी की तरकारी सारे भारतवर्ष में सब दूर खाई जाती है। इसको सब लोग जानते हैं। इसलिये इसके वर्णन की आवश्यकता नहीं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति शीतल, तीक्ष्ण, कड़वी, कसैली, घाव को भरने वाली, आंतों को सिकोडने वाली, ज्वर निवारक और कृमि नाशक है। यह वात को पैदा करने वाली, कफ पित्त नाशक, हृदय को लाभ कारी तथा प्रमेह, खसो, रक्त विकार, व्रण और ज्वर को नष्ट करने वाली है। यह मुंह की बदबू को दूर करती है। रक्त रोग, हृदयरोग, मूत्ररोग, रक्तवाहिनियों की जलन, विष के उपद्रव और छोटी माता में भी इसको देने से लाभ होता है। इसके पचांग का काढ़ा मूत्रकृच्छ्र में लाभ-दायक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क है। किसी २ के मत से यह सर्द और खुश्क होती है। यह कामेन्द्रिय की शक्ति को बढ़ाती है। पेट में फुलाव पैदा करती है। पेशाब अधिक लाती है। दिमाग को नुकसान पहुँचाती है। अगर अच्छी तरह हज़म न हो तो पेट और पसलियों के बीच में दर्द पैदा करती है। शराब पीने से पहले अगर इस को खाली जाय तो शराब का नशा नहीं आता।

नुस्खा सईदी में लिखा है कि गोभी वायु पैदा करती है, काबिज है, पित्त और खून के विकारों को मिटाती है। उस प्रमेह को जो सुजाक के बाद पैदा होता है, लाभ पहुँचाती है। खांसी और फोड़े फुन्सी में मुफीद है। इसके पत्तों को पानी में पीसकर पिलाने से वमन के साथ आने वाला खून बन्द हो जाता है। इसके पत्तों के जोशान्दे (काढ़ा) से धार देने से गठिया में लाभ होता है। इसके पत्तों को पकाकर खाने से ३ दिन में खूनी बवासीर से बहता हुआ खून बन्द हो जाता है। इसके पत्तों को पीसकर उनकी टिकिया बनाकर उस टिकिया को कोरे मिट्टी के बर्तन पर गरम करके आंख पर बांधने से दूखती हुई आंख अच्छी हो जाती है।

सुश्रुत के मतानुसार गोभी सर्पदंश में लाभदायक है मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्पदंश में निरुपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह हृदय को पुष्ट करने वाली, धातु परिवर्तक, ज्वर निवारक और सर्पदंश में उपयोगी है।

उपयोग—

मूत्राघात—गोभी की जड़ का काढ़ा पिलाने से मूत्राघात मिटता है।

आमाशय की सूजन—गोभी के पत्तों को कूटकर चांवलों के साथ औटाकर छानकर पिलाने से आमाशय की सूजन और पीड़ा मिटती है।

ज्वर—इसकी जड़ का क्वाथ पिलाने से ज्वर छूट जाता है।

मूत्र कृच्छ्र—इसके पत्तों को औटाकर उस पानी को छानकर उसमें मिश्री मिलाकर पीने से मूत्र कृच्छ्र मिटता है।

रुधिर की वमन—इसको पानी के साथ पीसकर तोले सवा तोले की मात्रा में पिलाने से रुधिर की वमन और कफ के साथ खून का जाना बन्द होता है।

स्वर भंग—इसके पत्ते और डालियों को पानी में औटाकर उस क्वाथ में शहद मिलाकर पिलाने से स्वर भंग मिटता है।

बवासीर—इसके पत्तों का शाग बनाकर खाने से खूनी बवासीर मिटता है।

गोभी जंगली

वर्णन—

इसके पत्ते मूली के पत्तों की तरह होते हैं। गोभी के पत्तों से इसके पत्तों का रंग ज्यादा सफेद होता है। यह स्वाद में कड़वी होती है। इसके बीज सफेद मिर्चों की तरह मगर उससे कुछ छोटे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह दस्त लाती है, खुश्की पैदा करती है, इसके पत्तों के लेप से जख्म भर जाते हैं, इसके पत्तों का रस लगाने से सूखी और गीली खुजली मिट जाती है। इसके बीज या सूखी हुई जड़ सात माशे पीसकर शराब के साथ पिलाने से सर्प विष उतर जाता है। (ख० अ०)

गोरख इमली

नाम—

संस्कृत—चित्रला, दीर्घदण्डी, सर्पदण्डी, गोरक्षी, गन्धबहुला, पंचपर्णिका। हिन्दी—गोरख इमली। मराठी—गोरखचिंच, गोरख इमली। गुजराती—गोरख इमली, गोरम्बली, रुखड़ो। पोरबन्दर—गोरख इमली। अजमेर—कल्पवृक्ष, कल्पवृक्ष। तामील—अनेइपुलि, पेरुक्कु। तेलगू—ब्रम्ह-अमलिका। लेटिन—Adansonia Digitara एडेनसोनिया डिजिटेरा।

वर्णन—

इस वृक्ष का मूल उत्पत्ति स्थान आफ्रिका है। भारतवर्ष में भी यह कई स्थानों पर लगाया

जाता है। इसका पिंड नीचे से बहुत मोटा और ऊपर से पतला होता हुआ चला जाता है। इसकी ऊँचाई ६० से ७० फ़ुट तक होती है। इसके पिंड की गोलाई १६ से ४० फ़ुट तक होती है। इसके फूल बड़े और सफेद कमल के समान होते हैं। गर्मी में इसके पत्ते खिर जाते हैं और बरसात में नये आजाते हैं। इसका फल १ फ़ुट लंबा लौकी या तूंबी की तरह होता है। कहीं २ इसके फल नीम्बू की तरह छोटे भी रह जाते हैं। इसका फल स्वाद में कुछ खट्टा होता है और इसमें भूरे बीज निकलते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत से गोरख-इमली मधुर, शीतल, कड़वी और ज्वर निवारक तथा दाह, पित्त, विस्फोटक, वमन और अतिसार को दूर करती हैं। इसके फलों का गूदा शीतल, स्नेहन, रोचक और हृदय को बल देने वाला होता है। इसके पत्ते स्नेहन और संग्राहक तथा छाल शीतल, दीपन, स्नेहन और संग्राहक होती है। इसके कोमल पत्तों का लेप व्रण की सूजन पर करने से सूजन की जलन और सख्ती कम होती है।

इसके सूखे पत्तों का चूर्ण अतिसार और ज्वर में लाभ दायक है। इसके फल का गूदा प्रादाहिक ज्वर या साधारण ज्वर में प्रदाह की हालत में लाभदायक होता है। यह गरमी को कम करके प्यास को बुझा देता है। बम्बई में इसके गूदे को मट्ठे के साथ आमातिसार और रक्तातिसार को दूर करने के लिये देते हैं। कोकण में दमे के रोग को दूर करने के लिये इसके गूदे को अंजीर के साथ देते हैं। इसको शक्कर और जीरे के साथ देने से पित्त से पैदा हुई मन्दाग्नि मिटती है।

यूरोप के अन्दर इसकी छाल ज्वर को नष्ट करने के लिये सिनकोना की प्रतिनिधि मानी जाती है। गायना में इसके फल से बनाया हुआ खट्टा चूर्ण आमातिसार और ज्वरातिसार में उपयोगी माना जाता है। इसके पत्ते स्निग्ध, मूत्रल, ज्वर निवारक और गठान को पकाने वाले माने जाते हैं। इसके बीजों को भूंजकर उनका चूर्ण दांतों की पीड़ा और मसूड़ों की सूजन को दूर करने के काम में लेते हैं। इसकी छाल के तन्तुओं का काढ़ा ऋतुस्राव नियामक माना जाता है।

गोल्डकास्ट, गेम्बिया और मध्य अफ्रिका में इसकी छाल को कुनेन की तरह प्रभाव शाली ज्वर निवारक औषधि मानते हैं। सक्रामकज्वरों में इसके फल का गूदा बहुत उपयोगी माना जाता है। पेचिश के रोगों में भी इन देशों के अन्दर इसका फल बहुत उपयोगी माना जाता है।

कीर्तिकर और बसु के मतानुसार पार्यायिक ज्वरों में ३० से ४० ग्रेन तक की मात्रा में इसकी छाल का चूर्ण दिन मे ३।४ बार देने से अच्छा लाभ होता है।

डॉक्टर मूडीन शरीफ के मतानुसार इसके फल का गूदा प्रादाहिक ज्वरों की गर्मी को कम करता है और प्यास को बुझाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका गूदा मृदुविरेचक, शांतिदायक और ज्वर तथा पेचिश में उपयोगी है।

वर्तमान अनुभवों से यह निर्णय प्राप्त किया जा चुका है कि यह क्षय रोग में रात के समय

होने वाले पसीने को और ज्वर की गर्मी को शांत कर देती है। इसकी छाल अविराम और सविराम दोनों ही प्रकार के ज्वरों में चाहे वे साधारण हों, चाहे उपद्रव युक्त हों कुछ लाभ अवश्य पहुँचाती है।

रासायनिक विश्लेषण—

इसके फल के गूदे में ग्लुकोज, लुआब, टारटारिक एसिड, एलकेलाइड एसीटेट और पोटेशियम बाय टारट्रेट पाये जाते है। इसमें घुलनशील टेनिन, मोम, क्लोराइड आफ सोडियम और गोंद के समान पदार्थ रहता है। इसकी छाल की राख में खासकर क्लोराइड आफ सोडियम और कारबोनेट्स आफ पोटास एण्ड सोडा पाये जाते है।

इसके अन्दर पाये जाने वाले टारटारिक एसिड की तादाद २ प्रतिशत और पोटेशियम बाय टारट्रेट की तादाद १२ प्रतिशत होती है। इसमें एडेन्सोनिन नामक एक चमकीला पदार्थ भी पाया जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके फल का मगज का दूसरे दर्जे में सर्द और तर होता है। इसके फल का गूदा पित्त को दस्त की राह से निकाल देता है वमन और जी का मिचलना रोकता है। मेदे में कब्ज पैदा करता है। इसके पत्ते पतले वीर्य को गाढ़ा करते हैं।

मतलब यह कि यह औषधि ज्वर के ऊपर अपना प्रभाव शाली असर बतलाती है। कई देशों में इसका महत्व ज्वर के लिये कुनेन या सिनकोना के बराबर समझा जाता है। पेचिश और अतिसार के अन्दर भी इसके पत्ते और फल अच्छा लाभ पहुँचाते हैं। गर्मी की वजह से होने वाली घबराहट और बहुत प्यास लगने के लक्षण को भी यह वनस्पति दूर करती है। दमे के ऊपर इसके फल के गूदा को सूखे अंजीर के साथ कुछ दिनों तक लगातार लेने से दमा हमेशा के लिये चला जाता है।

उपयोग—

आमातिसार—इसके फल के गूदे को आधी रत्ती से दस रत्ती तक मट्ठे के साथ खिलाने से अतिसार और आमातिसार मिटता है।

ज्वर—इसकी २॥ तोले छाल को १५ छटांक जल में औटाकर १० छटाक जल रहने पर छानकर उसकी चार खुराक कर दिन में चार बार पिला देने से ज्वर उतर जाता है। इसकी छाल के चूर्ण की फक्की देने से बारी से आने वाला ज्वर छूट जाता है।

पाचन शक्ति की कमजोरी—इसके क्वाथ पर पीपल का चूर्ण सुर भुरा कर पीने से पाचन शक्ति बढ़ती है।

त्वचा रोग—त्वचा या चर्म रोगों पर इसकी गिरी का लेप करने से लाभ होता है।

मस्तक शूल—इसकी छाल का काढ़ा पिलाने से पित्त का मस्तक शूल मिटता है।

मूत्रावरोध—इसकी छाल के क्वाथ में जौखार डालकर पिलाने से मूत्र की रुकावट दूर होकर मूत्र अधिक होता है।

दमा— इसके फल के गूदा के चूर्ण को सूखे अंजीर के साथ लगातार कुछ दिनों तक सेवन करने से दमा मिटजाता है।

गोरख मुण्डी

नाम—

संस्कृत— अरुणा, महामुंडी, मुंडितिका, नील कदम्बिका स्पर्शिनि, श्रावणी। हिन्दी— गोरखमुंडी, मुंडी। बंगाल— गोरख मुंडी, मुरमुरिया, चकुलनाद। मराठी—मुंडी, मुदरी, गोरख मुंडी। गुजराती— गोरख मुंडी, मुरडी, बड़ियोबलर। पंजाब— गोरखमुंडी, मुंडी, कमद्रुस, जख्मी ह्यात। तामील— कोट करंडई। तैलगू— बोड सोरम,बोडतरपू। अरबी— कमकामियुस, कमदारियुस। फारसी— कम्दुरियुस। उर्दू— कमदरयुस, मुंडी। लेटिन— Sphæranthus Indicus (स्पेरेन्थस इंडिकस), S. Mollis (एस० मोलिस)।

वर्णन—

यह क्षुप आधे से लेकर डेढ़ फुट तक ऊँचा होता है। इसका पौधा विशेषकर जमीन पर फैला हुआ रहता है। इस सारे पौधे के ऊपर सफेद जाति के रूएँ रहते हैं। इसकी जड़ के सिरे पर से इसकी शाखाएँ निकलती हैं जो सुतली के समान मोटी होती हैं। इसके पत्ते आधे से २ इंच तक लंबे होते हैं। इनकी किनार के ऊपर छोटे २ दांते कटे हुए रहते। ये गेंदे के पत्तों की तरह होते हैं। इसके पत्तों का रंग फीका हरा होता है। डालियों के सिरे पर गुलाबी या बैंगनी रंग के फूल आते हैं। फूलों की घुंडी होती है। यह १/४ से १/२ इंच के व्यास की होती है इस घुंडी में पास २ बहुत से छोटे फूल गुंथे हुए रहते है। इनकी गन्ध बहुत तीव्र होती है। यह वनस्पति वर्षा ऋतु के बाद तर जमीन में पैदा होती है। इसकी दो जातियां होती हैं, एक को मुंडी और दूसरी को महामुंडी कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत— आयुर्वेदिक मत से मुंडी कसैली, पचने में चरपरी, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, मधुर, दस्तावर, हलकी, बुद्धिवर्धक, बलदायक, धातु परिवर्तक तथा कण्ठमाल, अजीर्ण, क्षय की ग्रंथियां, वायु नलियों का दाह, पागलपन, श्लीपद, पांडुरोग, अरुचि, योनिशूल, गर्भाशय और योनि सम्बन्धी व्याधियां, बवासीर, पथरी, पित्त, मृगी, श्वास, कृमि रोग, कुष्ठ, विष विकार, अतिसार और वमन को दूर करने वाली है। यह गुदा द्वार के शूल, छाती का ढीलापन और आधाशीशी में भी लाभदायक है।

महामुंडी मधुर, कड़वी, गरम, रसायन, रुचि कारक, स्वर को शुद्ध करने वाली प्रमेह को नष्ट करने वाली और वात विनाशक है।

चक्रदत्त के मतानुसार गोरखमुंडी के पञ्चांग का चूर्ण करके ६ माशे से लेकर १ तोला तक १ तोला घी और ६ माशे शहद के साथ मिलाकर दिन में २ बार खाने से और ऊपर से नीम गिलोय का क्वाथ पीने से भयंकर वात रक्त या कुष्ठ का रोग नष्ट हो जाता है।

भाव मिश्र के मतानुसार गोरखमुण्डी और सूंठ को समान भाग लेकर, उसका चूर्ण बनाकर गरम पानी के साथ लेने से आमवात का रोग नष्ट होता है।

बवासीर के रोग के अन्दर भी यह औषधि प्रभावशाली असर बतलाती है। इसकी जड़ की छाल के चूर्ण को ३ माशे से ६ माशे तक की मात्रा में मट्ठे के साथ पीने से थोड़े दिनों में बवासीर नष्ट हो जाता है। इसको सिलपर पीस कर लुगदी बनाकर बवासीर, कण्ठमाला और सूजी हुई गठानों पर बांधने से अच्छा लाभ होता है। इसकी जड़ के चूर्ण को सेवन करने से पेट के कृमि भी नष्ट होते हैं।

स्टेवर्ट के मतानुसार पञ्जाब में इसके फूल विरेचक, शीतल और पौष्टिक माने जाते हैं।

कोमान के मतानुसार इस वृक्ष का काढ़ा मूत्र सम्बन्धी बीमारियों में विशेष उपयोगी होता है। मूत्राशय की पथरी में इसके परिणाम बहुत सन्तोष जनक पाये गये हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति कटु, अग्निप्रवर्धक और उत्तेजक है। यह ग्रंथियों की सूजन, पथरी और पीलिया में लाभदायक है। इसमें एक प्रकार का उड़नशील तेल और स्पेरेन्था-इन नामक उपक्षार पाया जाता है।

यूनानी मत—यूनानी चिकित्सा के अन्दर गोरखमुण्डी को बहुत अधिक महत्व प्राप्त है। कई यूनानी चिकित्सकों ने इसको आबे हयात अथवा सजीवन बूटी बतलाया है।

यूनानी मत से इसकी दोनों जातियां गरम और तर होती है। किसी २ के मत से ये मोतदिल और तर होती हैं। यह वनस्पति दिल, दिमाग जिगर और मेदे को ताकत देती है। दिल की धड़कन, देहशत, पीलिया, आंखों का पीलापन, पित्त और वात से पैदा हुई बीमारियों तथा पेशाब और गर्भाशय की जलन दूर करती है। कण्ठमाला, क्षयजनित ग्रंथियां, तर और खुश्क खुजली, दाद, कोढ़ और वात सम्बन्धी रोगों में यह बहुत लाभदायक है।

गोरखमुण्डी के सारे पौधे को छाया में सुखाकर, पीसकर उसका हलवा बनाकर खाने से मनुष्य का यौवन स्थिर रहता है। उसके बाल सफेद नहीं होते। नेत्ररोगों पर भी यह वनस्पति अच्छा काम करती है। ऐसा कहा जाता है कि गोरखमुंडी की १ मुण्डी (फल) को साबित निगल जाने से १ वर्ष तक आंख नहीं आती।

मुफरेदाद इमामी नामक ग्रंथ का मत है कि अगर गोरखमुंडी को ३॥ तोले की मात्रा में रात में पानी में भिगोदें और सबेरे उस पानी को मल छानकर पीलें तो कण्ठमाला का रोग बिलकुल मिट जाता है। अगर रोगी बच्चा हो तो मात्रा कम देना चाहिये।

तालीफ शरीफ नामक मशहूर ग्रंथ के ग्रंथकार का कथन है कि गोरखमुण्डी बुद्धि को बढ़ाती है। इसके प्रयोग से पेट के कीड़े मर जाते हैं। फोड़े फुन्सी और योनि के दर्द में भी यह लाभ पहुँचाती है। शरीर के पीलेपन को मिटाती है। सुजाक में भी यह लाभदायक है। गोरखमुंडी के बीजों को पीसकर उनमें समान भाग शक्कर मिलाकर एक हथेली भर प्रतिदिन लगातार खाने से बहुत ताकत पैदा होती है और मनुष्य दीर्घायु हो जाता है।

एक यूनानी हकीम के मतानुसार जब तक इस पौधे में फल नहीं आते तब तक इस पौधे को इकट्ठा करके उसका चूर्ण करके शहद और घी के साथ खाने से ४० दिन में जवानों की सी ताकत हासिल होती है। इसके फूलों को भी ४० दिन तक खाने मनुष्य की शक्ति बहुत बढ़ती है। अगर इसकी जड़ को दूध के साथ २ साल तक लगातार खाई जाय तो मनुष्य का शारीरिक संगठन बहुत अच्छा हो जाता है और बाल कभी सफेद नहीं होते।

एक दूसरे यूनानी हकीम के मतानुसार अगर इसके पत्ते और इसकी जड़ को पीसकर गाय के दूध के साथ ३ रोज तक लगातार खायें तो मनुष्य की कामशक्ति बेहद बढ़ जाती है। इस औषधि को श्रावण और भादवे के महिने में गाय के घी के साथ, चैत और बैशाख में शहद के साथ, जेठ और आषाढ़ में शक्कर के साथ, माह और फागुन में कांजी के साथ, कुवार और कार्तिक में गाय के दूध के साथ और अगहन तथा पौस में मट्ठे के साथ सेवन करें तो मनुष्य की काम शक्ति की ताकत, स्तम्भन की ताकत और बलवीर्य्य बहुत बढ़ जाते हैं।

अगर इसके पूरे पेड़ को उखाड़ कर, सुखाकर उसकी धूनी बवासीर के मस्सों को दी जाय तो वे सूख कर खिर जाते हैं। इसके पत्तों का लेप नारू पर करने से नारू नष्ट हो जाता है।

सैय्यद महम्मद अली खा साहब अपने आबे हयात नामक ग्रंथ में लिखते हैं कि हरसाल चैत के महिने में ५।७ गोरखमुण्डी के ताजे फल थोड़े से दांत से चबाकर पानी के घूंट के साथ हलक में उतार लें तो मनुष्य की आंख की तन्दुरुस्ती और रोशनी हमेशा कायम रहती है।

मात्रा—इसके फल के चूर्ण की मात्रा २० रत्ती की है।

उपयोग—

पेट के कीड़े—इसके बीजों के चूर्ण की फक्की देनेसेट के कीड़े निकल जाते हैं।

बवासीर—इसकी छाल के चूर्ण को मट्ठे के साथ पिलाने से बवासीर मिटता है।

नपुंसकता—इसकी ताजा जड़ को पानी के साथ पीस कर उसकी लुगदी को एक कलइदार पीतल की कढ़ाई में रखकर लुगदी से चौगुना काली तिल्ली का तेल और तेल से चौगुना पानी डालकर मन्दी आंच पर पकावें। जब पानी जलकर तेल मात्र शेष रह जाय तब उसको छान कर रखलें। इस तेल का कामेन्द्रिय पर मालिश करने से तथा १० से ३० बूंद तक पान में लगाकर दिन में २।३ बार खाने से नपुंसकता मिटती है।

नेत्ररोग—इसकी जड़ को छाया में सुखाकर उसका चूर्ण बनाकर उसमें समान भाग शकर मिलाकर गाय के दूध के साथ खाने से नेत्रों के बहुत से रोग मिटते हैं।

गुल्म रोग—इसकी १ तोला जड़ को पीसकर उसको मट्ठे में छानकर पीने से गुल्म रोग मिटता है।

गण्डमाला—गोरख मुण्डी की जड़ को गोरखमुण्डी के रस के साथ पीसकर लेप करने से और इसका ४ तोला रस पीने से गण्डमाला रोग मिटता है।

वात रक्त—गोरखमुंडी के चूर्ण को कुटकी के चूर्ण में मिलाकर शहद और घी के साथ चाटने से वात रक्त में लाभ होता है।

श्वेत कुष्ट—एक भाग मुण्डी और आधा भाग समुद्र शोष का चूर्ण बनाकर २ माशे से ६ माशे तक की मात्रा में लेने से श्वेतकुष्ट में लाभ होता है।

सन्धिवात—इसके ८ माशा चूर्ण को गरम जल के साथ फक्की लेने से सन्धिवात मिटता है।

कंप वात—लौंग के चूर्ण के साथ इसके चूर्ण की फक्की लेने से कम्पवात मिटता है।

बवासीर—गाय के दूध के साथ इसके चूर्ण को लेने से बवासीर में लाभ होता है।

अनेक रोग—इसके चूर्ण को नीम के रस के साथ लेने से नपुंसकता, शकर के साथ लेने से वीर्य की कमजोरी, बासी पानी के साथ लेने से भगन्दर, रक्तपित्त, श्वास और तेजरा, बकरी के दही के साथ लेने से मूत्रवत्सा रोग, शकर के साथ लेने से अजीर्ण, काली मिरच के साथ लेने से ज्वर, जीरे के साथ लेने से दाह, गाय के दूध के साथ लेने से चित्त भ्रम और प्रमेह, धनिये के साथ लेने से आंख का रोग, कपूर के साथ लेने से बवासीर और नींबू के रस के साथ लेने से मिरगी रोग मिटता है। जायफल के चूर्ण के साथ इसका चूर्ण मिलाकर बकरी के दूध के साथ लेने से स्त्री गर्भ को धारण करती है।

बनावटें—

गोरखमुण्डी का अर्क—गोरख मुंडी के फलों को शाम के वक्त पानी में भिगोकर, सबेरे भबके में रखकर उसका अर्क खींच लेते हैं। यह अर्क नेत्र रोग, दिल की धड़कन और हृदय की कमजोरी को दूर करता है। इसके लगातार पीने से गोली और मूली दुखनी मिट जाती है। शुरू में इसको १॥ तोले की मात्रा में लेना चाहिये। उसके बाद इसको धीरे २ बढ़ाते रहना चाहिये। इसे सेवन करते समय खट्टी और गरम चीजें, अधिक मेहनत के काम और मैथुन से बचना चाहिये।

गोरखमुण्डी का तेल—गोरखमुण्डी के पेड़ को थोड़े पानी में भिगोकर, बाद में सिल पर पीसकर पानी में छान कर जितना वह पानी हो, उसका चौथाई काली तिल्ली का तेल डालकर मन्दी आंच से पकाना चाहिये। जब पानी जलकर तेल मात्र शेष रह जाय तब उसको छान लेना चाहिये इस तेल में से ७ माशे रोजाना ४० दिन तक खाने से कामेंद्रिय को बहुत शक्ति मिलती है।

माजून गोरखमुण्डी—पीली हरड़, आंवला, बड़ी हरड़, काबुली हरड़, धनिये की मगज, शहातरा और मुलेठी एक २ तोला। गोरखमुंडी के फल ७ तोला, मिश्री ४२ तोला इन सब चीजों को लेकर पहले तीनों प्रकार की हरड को बादाम के तेल में भून लेना चाहिये। उसके बाद सबका चूर्ण करके, मिश्री की चाशनी बनाकर उसमें डाल देना चाहिये।

इस माजून में से २ तोला माजून प्रतिदिन सबेरे शाम गाय के दूध के साथ लेने से हर प्रकार के नेत्र रोगों में बहुत लाभ होता है। जिन लोगों को आंखें आने की आदत पड़ गई हो उनके लिये यह वस्तु बहुत लाभदायक है।

कुच कठोर तेल—गोरखमुंडी के पचांग को और लौंडी पीपर को समान भाग लेकर पानी के साथ सिल पर पीसकर लुगदी बनाकर उस लुगदी को कलईदार पीतल की कढ़ाही में रखकर उस लुगदी से चौगुना काली तिल्ली का तेल और तेल से चौगुना पानी डालकर हलकी आंच से पकावे। जब पानी जलकर तेल मात्र शेष रह जाय तब उसको उतार कर छानलें।

इस तेल में रुई भिगोकर उस रुई को स्तनों के ऊपर बांधने से व इस तेल को नाक के द्वारा सूंघने से स्त्रियों के ढीले पड़े हुए स्तन बहुत कठोर हो जाते है। (वंगसेन)

गोरख मुण्डी घृत—गिलोय, देवदारू हलदी, दारू हलदी, जीरा, स्याह जीरा, नच्छ नाग केशर, हरड़, बहेड़ा, आंवला, गूगल, तज, जटामांसी, कूट, तमाल पत्र, इलायची, रास्ना, काकड़ा सिंगी, चित्रक की जड़, बायविडंग, असगन्ध, शिलारस, लेन्धानिमक, कुटकी, तगर, इन्द्रजौ, अतीस और चन्दन इन सब चीजों को एक २ तोला लेकर चूर्ण करके पानी के साथ मिलाकर पीसकर लुग्दी बना लेना चाहिये। इस लुग्दी को एक कलईदार बड़ी पीतल की कड़ाही में रखकर उस कड़ाही में गोरख-मुंडी का रस ६४ तोला, अडूसे के पत्तों का रस ६४ तोला, अरडूसी की जड़ या पत्तों का रस ६४ तोला बेल के पत्तों का रस ६४ तोला, मोगरी का रस ६४ तोला, गाय का दूध ६४ तोला, और गाय का घी ६४ तोला इन सब को डाल कर धीमी आंच से पकावें जब सब रस जलकर घी मात्र शेष रह जाय तब उसको उतारकर छान लेना चाहिये।

इस मुण्डी के घृत को १ तोले से ४ तोले तक की मात्रा में प्रतिदिन सबेरे शाम दूध के साथ देने से अण्ड वृद्धि, आंत वृद्धि, हिरनिया इत्यादि अण्डकोष के तमाम रोग, अण्डकोष में वायु उतरने से, आंत उतरने से, पानी भरने से अथवा मेद वृद्धि से होने वाली गण्ड माला, अन्तर गांठ तथा श्लीपद, यकृत या लीव्हर की वृद्धि, तिल्ली की वृद्धि, वगैरह इत्यादि तमाम रोग नष्ट होते हैं।

ज्वर नाशक भस्म—२० तोले शुद्ध वंगपत्र को लेकर उसको २ सेर मुंडी के पंचांग के रस में घोटकर टिकड़ी बना लेना चाहिये। दूसरी तरफ गोरख मुंडी को पीसकर उसकी लुग्दी बनाकर उस लुगदी में इस टिकड़ी को रखकर कपड़ मिट्टी करके २० सेर कण्डे की आंच में रख देना चाहिये। ठंडी होने पर उस कपड़ मिट्टी को हटाकर उसके भीतर की राख को खरल करके रख लेना चाहिये। इसमें से ३ रत्ती से ६ रत्ती तक भस्म तुलसी के रस और शहद या शक्कर के साथ देने से सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं। (जंगलनी जड़ी बूटी)

गोरखमुण्डी रसायन—गोरख मुण्डी के पौधों को फूल आने से पहले शुभ मुहूर्त में लाकर छाया में सुखाकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इसी प्रकार काले मांगरे का भी चूर्ण बना लेना चाहिये। इन दोनों चूर्णों को समान भाग मिलाकर इनमें से एक तोला चूर्ण घी के साथ प्रतिदिन चाटना चाहिये। पथ्य में केवल दूध और भात लेना चाहिये। इस प्रकार ४।६ महिने तक लगातार इसका सेवन करने से वृद्धावस्था नष्ट होकर युवकों के समान बल, वीर्य, उमंग और कामशक्ति प्राप्त होती है।

—o—

गोरन

नाम—

बंगाल—गोरन। सिंघ—चौरी; क्रिरइ। तामील—पंडिकुदि। तेलगू—गदेरा। लेटिन—Ceriopes Candolleana सेरिओप्स।कैंडोलिएना।

वर्णन—

यह वनस्पति समुद्र के किनारों पर और सिन्ध देश में बहुत होती है। यह एक छोटी जाति का झाड़ीनुमा पौधा होता है। इसके पत्ते लंब गोल, कटी हुई किनारों के, छाल लाल और लकड़ी नारंगी रंग की होती है। इसके फूल सफेद और फल बादामी रंग का होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह सारी वनस्पति एक उत्तम संकोचक पदार्थ है। इसके छिलटे का काढ़ा रक्तश्राव को रोकने के उपयोग में लिया जाता है। इसे दुष्ट व्रणों पर लगाने के काम में भी लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी छाल का काढ़ा रक्तश्राव रोधक है। इसकी कोमल डालियां क्विनाइन की जगह पर उपयोग में ली जाती हैं।

गोरालेन

नाम—

पंजाब—गोरालेन, लनगोरा। सिंध—लनन। तेलगू—रल्लपुरा। लेटिन—Salsola Foetida (सेलसोला फोटेडा)।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति सिंध, बलूचिस्तान, पंजाब व उत्तरी गंगा के मैदानों में पैदा होती है।

यह वनस्पति कृमिनाशक है। इसको घाव पूरने के लिये काम में लेते हैं। इसकी राख खुजली पर लगाने से लाभ होता है।

गोल

नाम—

संस्कृत—जीवन्ती, जीवंती। हिन्दी—गोल। मराठी—गोल। बंगाल—चिकुन, जीवन, जवोन, जुपोंग। बम्बई—गोल, खरगुल। वरमा—सरचान। मध्यप्रदेश—गडुमनु। तामिल—मिनि, वेल्दइ, विरई, अम्बरति। तेलगू—अनकाक मुश्ति, मिराद्रु, मोरली। लेटिन—Trama orientalis. (ट्रेमा औरिएन्टे लि

वनौषधि-चन्द्रोदय

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होती है। यह एक बहुत जल्दी बढ़ने वाला वृक्ष है। इसके पत्ते खरदरे और ७ से १२॥ सेंटि मीटर तक लम्बे होते है। इसका फल पकने पर काला हो जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति मृगी रोग में उपयोगी मानी जाती है।

गोविन्द फल (गिटोरन)

नाम—

संस्कृत—गोविंदी, ग्रंथिला, किंकिणी, व्याघ्रनखी, व्याघ्रपटी। हिन्दी—गोविन्दफल। मारवाड़ी—गिटोरन। बंगाली—कालुकेर। बम्बई—ग्रन्थि, तरन्टी, वाघाटी। मराठी—गोविंदी, वाघाटी। पंजाब—हिंगुरना। तामील—अडनिदई, इदुरी। तेलगू—ग्राणिकी। लेटिन—Capparis Zeylanica. कैपेरिस भेलेनिका।

वर्णन—

यह एक बहुत बड़ी बेल होती है। इसके मुड़े हुए कांटे लगते हैं इसके फूल सफेद और बड़े होते हैं। इसके पत्ते अंडाकार और तीखी नोक वाले रहते हैं। इसका फल लम्बगोल और पकने पर लाल रंग का होता है। इसके कोमल फलों की तरकारी बनाई जाती है। औषधि प्रयोग में इसकी जड़ें काम में आती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से इसकी जड़ की छाल कड़वी, शीतल, पित्त निस्सारक, कफ नाशक, उत्तेजक, और सूजन को नष्ट करने वाली होती है। इसका फल कफ और वात को नष्ट करता है। इसकी जड़ की छाल शान्तिदायक, अग्निदीपक और पसीने को रोकने वाली होती है। सूतिका ज्वर में इसका क्वाथ बनाकर देने से लाभ होता है। गर्मी के दिनों में बगल में तथा मुंह पर जो फुन्सियां उठती हैं उन पर इसकी जड़ को ठंडे पानी में पीसकर लेप करने से लाभ होता है। नासूर और भगंदर में इसके तेल में रूई को तर करके उसकी बत्ती बनाकर रखने से घाव भर जाता है। इसकी जड़ को पानी में पीसकर जितना पानी हो उससे चौथाई तेल डालकर आग पर पकाने से पानी जल जाने पर इसका तेल तैयार होता है।

एटकिन्सन के मतानुसार उत्तरी भारतवर्ष में इसके पत्ते बवासीर, फोड़े, सूजन और जलन पर लगाने के काम में लिये जाते हैं।

कैंपबेल के मतानुसार छोटा नागपुर में इसकी छाल देशी शराब के साथ हैजे की बीमारी में दी जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह शान्तिदायक और मूत्रल है।

उपयोग—

दाह और खुजली— इसके पत्तों का लेप करने से दाह और खुजली मिट जाती है।

बवासीर की सूजन— बवासीर की सूजन मिटाने के लिये इसके पत्तों की लुगदी बनाकर बांधना चाहिये।

हैजा— इसकी छाल के चूर्ण को सिरके में घोटकर पिलाने से हैजे में लाभ होता है।

उपदंश— इसके पत्तों का क्वाथ पिलाने से उपदंश मिटता है।

गोबिल

नाम—

बंगाल— गोबिल। हिन्दी— गोबिल, पानीवेल। मारवाड़ी— पानीवेल, मुसल मुरीया। गुजरात— जंगलीदाख। पोरबंदर— जंगलीदाख। तेलगू— बदसरिया। लेटिन— Vitis Latifolia (व्हिटिस लेटिफोलिया)

वर्णन—

यह एक लता होती है। इसकी बेल पतली, चिकनी, लम्बी, सन्धियों वाली और बैंगनी रंग की होती है। इसके पत्ते द्राक्ष के पत्तों की तरह होते हैं। पत्तों के सामने की ओर से तन्तु निकलते हैं। इन तन्तुओं पर बहुत सुन्दर लाल रंग के फूलों के गुच्छे लगते हैं। इसके फल कुछ गोलाई लिये हुए काले रंग के करोंदों की तरह होते हैं हैं। इसकी बेल, पत्ते, फूल और फल सब द्राक्ष से मिलते जुलते होते हैं। मगर ये खाने के काम में नहीं आते।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति मूत्रल और धातु परिवर्तक है।

इसके पत्तों को पीस कर नारू के ऊपर बांधते हैं। इसकी जड़ को जहरी जानवरों के डंक पर लगाने से लाभ होता है।

गौ लोचन

नाम—

संस्कृत— गौरोचन, गोपित्त, वन्दनीया, मनोरमा, मंगला, शिवा, गोपित्तसंभवा, पिंगला, इत्यादि। हिन्दी— गौलोचन। बंगाल— गोरोचना। मराठी— गोरोचन। गुजराती— गोरो चन्दन, गोरोचन। तेलगू— गोरोचनम। फारसी— गयरोहन। अरबी— हजरुल बक्कर। लेटिन— Bostaurus (बोस्टॅरस)।

बयान—

गोरोचन गाय के मस्तक का पित्त होता है। इसका रंग पीला होता है। इसकी गोली चपटी, लम्बी और कोई कोई तिकोनी होती है। जब इसको निकालते हैं तब यह मोम की तरह मुलायम होती है। फिर ठंडी होने पर बुझे हुए चूने की तरह सख्त हो जाती है। इसका रंग पीला होता है। किसी किसी पर काले छींटे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से गोरोचन अत्यन्त शीतल, रुचिकारक, मंगल दायक, वशी करण, शरीर के सौन्दर्य को बढ़ाने वाला, कामोद्दीपक तथा भूत बाधा, ग्रह की पीड़ा, विष विकार, कोढ़, कृमि, उन्माद गर्भश्राव, क्षत, रक्त विकार और नेत्र रोगों को नष्ट करने वाला होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। गिलानी के मत से यह तीसरे दर्जे में गरम है। यह वायु की सूजन को बिखेरता है। पेशाब और मासिक धर्म को साफ करता है। गुर्दे और मसाने की पथरी को तोड़ता है इसका लेप करने से चेहरे के दाग और झाई मिट कर सुन्दरता बढ़ाती है। घाव पर या किसी स्थान पर बहते हुए खून पर इसको भुर भुराने से खून बन्द हो जाता है।

बच्चों की सरदी और डिब्बे की बीमारी में इसको १ जौ की मात्रा में देने से बहुत लाभ होता है। पीलिया और बवासीर में भी यह लाभ पहुँचाता है। सिर की गंज पर इसको शराब के साथ पीसकर लगाने से बाल आ जाते है। इसको आंख में लगाने से आंख का जाला कट जाता है और ज्योति तेज हो जाती है। इसको मसूर के दाने बराबर लेकर चुकन्दर के रस में पीसकर नाक में टपकाने से आंख से नजले का पानी आना रुक जाता है।

यह वस्तु चर्बी वर्द्धक भी है। इसको ४ जौ के बराबर लेकर बादाम या पिश्ते के साथ खाने से कुछ दिनों में शरीर मोटा हो जाता है।

मिरगी के रोग पर भी यूनानी हकीम इसको बहुत उपयोगी मानते हैं। चुकन्दर के हरे पत्तों के रस में इसे पीसकर नाक में टपकाने से बच्चों की मिरगी जाती रहती है। अगर एक २ माशा गोरोचन दिन में ३ बार गुलाब जल में पीसकर ३ दिन तक पिलाया जाय तो जन्म भर के लिये मिरगी आना बन्द हो जाती है मगर इसकी इतनी बड़ी मात्रा शरीर में विषैला असर दिखलाती है। इसलिये इसका प्रयोग बहुत समझ बूझकर करना चाहिये।

मात्रा—इसकी साधारण मात्रा १ रत्ती से ६ रत्ती तक की है। मगर मोहितमें लिखा है कि मिरगी वाले को इसकी २१ रत्ती तक की मात्रा दी जा सकती है।

यह गरम प्रकृति वालों को नुकसान पहुँचाता हैं और सिर में दर्द पैदा करता है। इसका दर्प नाशक कतीरा है।

—०—

घड़मकड़ा

नाम—

यूनानी—घड़मकड़ा।

वर्णन—

यह एक रोइदगी होती है जिसके बीज लाल रंग के राई के दाने की तरह होते हैं। ये बीज फलियों में रहते हैं। इसके पत्ते नागर वेल के पान की तरह, फूल काले रंग के और फली कुल्थी की फली की तरह होती है। इसकी एक जाति और होती है। जिसे दूधिया घड़ मकड़ा कहते हैं। यह सफेद और चमकीला होता है। इसके पत्ते सेम के पत्तों की तरह, फूल लाल मिर्च के फूलों की तरह, फल बड़ के वृक्ष के फलों की तरह और जड़ मूली की तरह सफेद होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से यह सर्द और खुश्क है। किसी २ के मत से पहले दर्जे में गरम और तर है। यह गुर्दे और कमर को ताकत देती है। वीर्य को गाढा करती है। काम शक्ति को बढ़ाती है। काम शक्ति को बढ़ाने वाले चूर्ण और माजूनों में कई जगह यह वस्तु डाली जाती है। (ख० अ०)

घण्टियाल

नाम—

कुमाऊ—घण्टियाली, चय, कंगुली। पंजाब—पिरी, पवानी। लेटिन—Clematis Napaulensis (क्लेमेटिस नेपलेन्सिस)।

वर्णन—

यह वनस्पति गढ़वाल से भूटान तक सम शीतोष्ण भागों में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते चमड़े को नुकसान पहुँचाने वाले होते हैं।

घनसर

नाम—

संस्कृत—भूलङ्कुशा, नागदन्ती। हिन्दी—घनसर, हड्डुम। बंगाल—बराराज। बम्बई—गनसुर, गुन्सूर। मराठी—घणसर। आसाम—[illegible]। आंध्र—[illegible]। तामील—मिलकुनरी। तेलगू—भूतल मेदी, भूतन कुसुम। लेटिन Croton Oblongifolium (क्रोटन ऑब्लांगिफोलियम)

वर्णन—

यह वनस्पति दन्ती और जमालगोटे की ही एक जाति है। यह दक्षिण कोकण और बंगाल में बहुत पैदा होती है। इसका वृक्ष मध्यम आकार का होता है। इसकी छाल चिकनी और खाकी रंग की, पत्ते आम के पत्तों की तरह पर किनारों पर कुछ कटे हुए होते हैं। ये पत्ते डण्ठल समेत ६ से १२ इञ्च तक लम्बे होते हैं। इसके फूल फीके हरे रंग के होते हैं। इसकी मञ्जरी पकने पर रुएँदार होती है। इस औषधि की छाल, पत्ते और बीज काम में आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके बीज और फल विरेचक होते हैं। सूजन को दूर करने वाली औषधियों में यह एक उत्तम औषधि है। किसी भी प्रकार की सूजन में–फिर चाहे वह शरीर के भीतर हो या बाहर–इस औषधि को देने से लाभ होता है। फेफड़े की सूजन, सन्धियों की सूजन, यकृत की सूजन इत्यादि सब प्रकार की सूजनों में में इसकी छाल को खिलाने से और पीसकर लेप करने से बहुत लाभ होता है। सूजन को नष्ट करने वाली औषधियों के वर्ग में इसका एक प्रधान स्थान है। नवीन और जाज्वल्य सूजन में इसका बहुत चमत्कारिक असर होता है। प्राचीन सूजन में इसका असर इतना प्रभावशाली नहीं होता।

इसकी मात्रा कुछ अधिक दे देने पर भी कोई विशेष हानि नहीं होती। सिर्फ कुछ दस्त अधिक होते हैं और सूजन की बीमारी में अधिक दस्त होने से कोई नुकसान नहीं होता। घनसर को अगर निर्गुण्डी और कणगच (कटकरञ्ज) के साथ दिया जाय तो विशेष अच्छा रहता है। क्योंकि कटकरंज इसकी तीव्रता को कम करके दोषों को दूर कर देता है।

नवीन ज्वर और जिस ज्वर के साथ सूजन हो अथवा जो ज्वर पित्त के दूषित होने से हुआ हो उसमें इस औषधि को सूजन को नष्ट करने और यकृत को उत्तेजित करने के लिये देते हैं। ऐसे समय में इसको नौसादर के साथ देने से यह अच्छा काम करती है। इस मिश्रण से यकृत की क्रिया सुधरती है। पित्त शुद्ध होता है। दूषित पित्त दस्त की राह बाहर निकल जाता है और बढ़ा हुआ यकृत ठीक हो जाता है। यकृत की सूजन को दूर करने के लिये वास्तव में यह एक दिव्य औषधि है।

घनसर को एक उत्तम विष नाशक औषधि भी माना जाता है। कोकण में साप के विष पर इसे १ से २ तोले तक की मात्रा मे दो २ घण्टे के अन्तर पर देते हैं। कोकण में कलेजे (लीवर) के बढ़ जाने की पुरानी बीमारी में और पार्यायिक ज्वरों में इसको भीतरी और बाहर दोनों ही प्रयोग में लेते हैं। मोच, रगड़ और सन्धिवात की सूजन पर भी इसको लगाने के उपयोग में लिया जाता है।

नागपुर की मुंडा जाति के लोग इसकी जड़ को दूसरी औषधियों के साथ मिलाकर प्राचीन आमवात और सन्धिवात को दूर करने के उपयोग में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह विरेचक और धातु परिवर्त्तक है। इसको सर्पदंश के काम में भी लेते हैं। इसमें एक प्रकार का उपक्षार रहता है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्पदंश में निरुपयोगी है।

मात्रा—इसकी मात्रा १॥ माशे से ३ माशे तक है जो उचित अनुपान के साथ देना चाहिये।

—०—

घनेरी

नाम—

हिन्दी और मारवाड़ी—घनेरी। मराठी—घनेरी। गुजराती—घनि दलियो। तामील—मकदम्बु, उनि। लेटिन—Lantana Indica (लेंटेना इण्डिका)

वर्णन—

घनेरी के पौधे २ से ५ हाथ तक ऊंचे होते हैं। ये बरसात में बहुत पैदा होते हैं। इसकी कोमल शाखाओं पर तीन २ पत्ते चक्र की तरह लगे रहते हैं। ये बहुत सुन्दर और कंगूरे दार होते हैं। इसके फूल सूक्ष्म, सफेद रंग के और अन्दर पीले रंग के रहते हैं। इसके फल काली मिरच के समान होते हैं। इस सारे पौधे में एक तीव्र गन्ध रहती है।

गुण दोष और प्रभाव—,

इसकी जड़ का काढ़ा प्रसूति कष्ट से प्रसित स्त्री को पिलाने से फौरन प्रसव हो जाता है। इसके पत्ते फोड़े-फुन्सी और घावों पर बांधने से अच्छा लाभ होता है। इस वनस्पति को सामीन में चाय की तरह इस्तेमाल करते हैं। इसके पत्तों को मसल कर सूंघने से सर्दी चली जाती है और शरीर में स्फूर्ति आती है।

इसकी एक जाति और होती है। जिसको लेटिन में लेंटेना एक्यूलिएटा तथा लेंटेना केमेरा कहते हैं। यह ज्वर निवारक, शान्ति दायक, पेट के अफरे को दूर करने वाली और आक्षेप निवारक मानी जाती है। इसका काढ़ा मलेरिया, सन्धिवात और धनुष्टंकार में दिया जाता है। यह एक तेज, पौष्टिक वस्तु है। इसमें एक प्रकार का उड़नशील तेल पाया जाता है।

घरवासा

नाम—

बलूचिस्तान—घरवासा। लेटिन—Iris Soongarica (इरिस सूनगेरिका)

वर्णन—

यह वनस्पति बलूचिस्तान, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, फारस और सूनगेरिया में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

हम्स मूलर के मतानुसार इसकी जड़ को दही के साथ अतिसार को मिटाने के लिये काम में लेते हैं।

घासलेट [मिट्टी का तेल]

नाम—

हिन्दी—घासलेट का तेल, मिट्टी का तेल। अंग्रेजी—(केरोसिन ऑइल)।

वर्णन—

घासलेट या मिट्टी का तेल हिन्दुस्तान के घर २ में काम में लिया जाता है। इसलिये इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से मिट्टी का तेल चौथे दर्जे तक गरम और खुश्क है। किसी किसी के मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह कृमिनाशक, वायु को बिखेरनेवाला और घाव को भरनेवाला होता है। इसमें कपड़े को भिगोकर योनि द्वार में रखने से मासिक धर्म साफ हो जाता है। इसको कान में टपकाने से कान का दर्द और बहरा पन चला जाता है। इस तेल में कपड़ा तर करके जख्म को साफ करने से जख्म जल्दी भर जाता है मगर जलन बहुत होती है। सरदी की बीमारियों में भी यह बहुत लाभ दायक है। फालिज, लकवा, गठिया, धनुर्वात और स्नायु यंत्र से सम्बन्ध रखने वाली दूसरी बीमारियों में इसके प्रयोग से बहुत लाभ होता है। इसको २ माशे पानी में डालकर पीने से कफ की पुरानी खांसी और दमे में बहुत लाभ होता है। इसके अन्दर बत्ती को तर करके रखने से गुदा द्वार के फोड़े भर जाते हैं। यह गर्भाशय की वायु को बिखेरता है, सरदी को मिटाता है। बवासीर में लाभदायक है। पथरी को तोड़ता है और मरे हुए बच्चे को गर्भाशय से निकाल देता है।

मिट्टी का तेल और प्लेग—

प्लेग के ऊपर भी यह औषधि बहुत मुफीद साबित हुई है। जो लोग प्लेग के दिनों में इसका भीतरी या बाहरी प्रयोग करते रहे हैं वे इस दुष्ट बीमारी से बच गये हैं। प्लेग के ऊपर इस तेल को प्रयोग करने का तरीका यह है।

नीम और जल पिप्पली (Lippia Nodiflora) के हरे पत्ते लेकर उनका रस निकाल लेना चाहिये, जितना रस हो उतना ही घासलेट का तेल उसमें मिलाकर रख लेना चाहिये। इसमें से प्लेग के रोगी २ तोला औषधि हर दो घंटे के अन्तर से पिलाना चाहिये और गठान पर लगाने के लिये नीचे लिखा मरहम तैयार कर लेना चाहिये।

आंकड़े का दूध ४० तोला, मुर्दासिंगी २ तोला, लींडी पीपल २ तोला, भैंसा-गूगल ४ तोला, मनुष्य की हड्डी ५ तोला, पलास की जड़ ५ तोला, सिंदूर ५ तोला इन सब चीजों को एक दिल करके इसका गठान पर लेप करना चाहिये। अगर गठान बहुत सख्त हो और वह न फूटती हो तो इस लेप में ५ तोला सज्जी खार और ५ तोला बुझाया हुआ कली का चूना मिला देना चाहिये।

अगर रोगी एकदम मृत्यु के मुँह में चला गया हो और उसके बचने की उम्मीद न हो तो उसे एकदम २० तोला सफेद रंग का घासलेट पिला देना चाहिये। इस उपाय से कभी २ असाध्य अवस्था में भी लाभ हो जाता है।

जो लोग प्लेग के रोगियों की परिचर्या करते हों उनको चाहिये कि वे अपने सारे शरीर पर घासलेट का तेल चुपड़ कर रोगी के पास जावें और रोगी को भी सारे शरीर पर घासलेट का तेल चुपड़ने की सलाह देवें।

सांप का जहर और घासलेट का तेल—

सर्प विष के ऊपर भी यह तेल बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। ७।८ वर्षों के पहले यू० पी० के एक ग्राम में सर्प मृत्यु कार्यालय स्थापित हुआ था और इसी तेल के योग से एक औषधि बनाकर उसका प्रचार इस कार्यालय ने किया था। इस औषधि का नुस्खा सन् १९३४ के वैद्यकल्पतरु में प्रकाशित हुआ था वह इस प्रकार था—

सफेद मिट्टी का तेल २० तोला, पीपरमेंट के फूल ५ तोला, कपूर १० तोला, कारबोलिक एसिड २॥ तोला और युकेलिप्टस ऑइल १ तोला। इन सब चीजों को एक मजबूत काग वाली शीशी में बन्द करके काग लगाकर थोड़ी देर धूप में रखदें और जब सब चीजें एक दिल हो जायँ तब उसको उपयोग में लें।

जिस किसी को सांप काटें उसके दंश स्थान पर चाकू से जरा चीरा लगाकर ४०।५० बूँद दवा रुई में तर करके उस जगह रख कर पट्टा चढ़ा देना चाहिये और २० बूँद दवा कपड़े में डालकर वह कपड़ा रोगी को सुंघाना चाहिये। अगर जहर ज्यादा व्याप्त हो गया हो और रोगी मूर्छाग्रस्त होकर निर्जीव की तरह हो गया हो मगर उसकी आंख का प्रकाश कायम हो तो तुरन्त इस दवा का इंजेक्शन देने से वह पुनर्जीवित हो जाता है। अगर 'इंजेक्शन की तुरन्त व्यवस्था' न हो सके तो रोगी को २ तोले सरसों के तेल में १० से २० बूँद तक यह दवा डालकर पिला देना' चाहिये और ऊपर से गरम पानी पिला देना चाहिये जिससे दस्त और उल्टी के जरिये सब जहर बाहर निकल जायगा। बेहोश रोगी को होश में लाने के लिये इस दवा को १० बूँदें नाक में टपकाने से रोग होश में आ जाता है।

सांप के सिवाय कन खजूरा, छिपकली, पागल कुत्ता और पागल सियार के काटने पर भी इस दवा को लगाने और सुंघाने से फौरन आराम होता है। उक्त कार्यालय ने अपने विज्ञापन में लिखा था कि दुनियां में एक भी जहरी जानवर ऐसा नहीं है जिसका जहर इस दवा से न उतरे। बिच्छू के जहर पर अगर इस दवा के लगाने से तुरन्त फायदा न हो तो इसमें थोड़ी सी मुर्गे की बीट मिलाकर लगाने से फौरन लाभ होता है।

जहर के सिवाय इस दवा के लगाने से हर तरह के जख्म और घाव फौरन आराम हो जाते है। रक्तपित्त से अगर हाथ-पांव गल रहे हों तो इस दवा का इंजेक्शन देने से और लगाने से फौरन लाभ होता

जलोदर, पाकस्थली की शून्यता, मस्तिष्क के रोग, मलेरिया, हिचकी वगैरे सम्पूर्ण रोग इस दवा के सेवन से मिट जाते हैं। १००० भाग पानी में एक भाग दवा मिलाकर उस पानी को लेने से प्रलाप सन्निपात, प्लेग वगैरे रोगों में शांति मिलती है। इस दवा को आधी बून्द रोज लेने से कॉलेरा और प्लेग के दिनों में रोग होने का डर नहीं रहता। थोड़ी सी रुई को इस में तर करके उस रुई को दांत के खड्डे में रख देने से दांत का कीड़ा नष्ट होकर दांत का दर्द दूर हो जाता है।

उपदंश एक बहुत भयानक व्याधि है। उस के घाव और चट्ठो पर भी इस दवा को चुपड़ने से बड़ा लाभ होता है। इसी प्रकार श्वेत कुष्ठ, खूनी बवासीर, सब प्रकार के घाव, चर्म रोग, कार बंकल आदि भयंकर रोगों पर भी यह औषधि बहुत लाभ करती है।

पसली के दर्द के ऊपर साम्हर के सींग को घिसकर उसमें इसको मिलाकर चुपड़ने से और ऊपर से सेक करने से फौरन लाभ होता है।

अगर किसी का कान बहता हो तो इस दवा को २ से ४ बून्द तक लेकर सफेद फूल की हुल हुल के १० बून्द रस में मिलाकर बदाम के तेल के साथ सवेरे शाम कान में टपकाने से बहुत लाभ लाभ होता है।

बवासीर के मस्सों पर भी इसे लगाते रहने से थोड़े दिनों में मस्से मुरझाकर खिर जाते हैं।

नारू पर अरीठे के फल की मग़ज, अफीम, और गुड़ को समान भाग लेकर बारीक पीसकर उसमें इस औषधि की २।४ बून्द डालकर नारू के स्थान पर रखकर ऊपर धतूरे के पत्तों को गरम करके बांधने से थोड़े दिनों में नारू भीतर ही भीतर गल कर साफ हो जाता है।

मात्रा—यूनानी मत से इसकी मात्रा खाने के लिये १ माशे से २ माशे तक है। यह गरम मिजाज वालों के लिये जिगर, फेफड़ा और शिर को नुकसान पहुंचाता है। इसके दर्प को नष्ट करने के लिये इसब गोल का लुआब और कतीरा मुफीद है।

घरी

नाम—

हिन्दी—घरी, घरइकश्माल, तुख्म लीयलंगा। बम्बई—तुख्म बलंगू। पंजाब—घरइ, कश्मालु, तुख्म बलंगू। उर्दू—बलगा। लेटिन—Lallemantia Royleana. (लेलीमेंटिया रोइलीएना)।

वर्णन—

यह वनस्पति बलुचिस्तान और पंजाब के मैदानों तथा पहाड़ियों पर होती है। यह एक वर्ष जीवी वनस्पति है। इसमें कुछ कांटे होते हैं। इसका फल लम्ब गोल और फिसलना होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत के अनुसार इसके बीज हृदय और मस्तिष्क के विकार, पागलपन, पुरातन प्रमेह, प्यास, वायु नलियों का प्रदाह, मसूढ़ों से खून बहना, और आंतों के दर्द में लाभदायक है। ये कामोद्दीपक होते हैं और यकृत के लिये एक पौष्टिक पदार्थ के-रूप में काम देते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार ये शीतल, शान्तिदायक और कब्जियत को दूर करने वाले होते हैं।

—०—

घिया तरोई

नाम—

संस्कृत—हस्तिपर्णा, राजकोष्टकी, महापुष्पा, महाफला, इत्यादि। हिन्दी—घियातरोई, निनुआ, पुरला, गिल्की। मराठी—घोसाले, घडघोसड़ी। गुजराती—गलका, तुरिया, गोंथली। तामील—पिकं। तेलगू—गुरिबिरा, नेटिबिरा, नूनेबिरा। बंगाल—दस्तोधोषा, धुन्दल। फारसी-खीया। लेटिन—Luffa Pentandrea (ल्यूफा पेन्टेन्ड्रिया)।

वर्णन—

यह वनस्पति भारतवर्ष में सब दूर तरकारी बनाने के काम में आती है। यह एक पराश्रयी लता होती है। इसके पत्ते लम्बे की अपेक्षा चौड़े ज्यादा होते हैं। ये कटे हुए रहते है। इसके फल तुरई की तरह होते है मगर उनके ऊपर तुरई की तरह रेखा नहीं रहती।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मतानुसार इसका फल स्निग्ध, रक्त पित्त नाशक, मृदु विरेचक और घाव को भरने वाला होता है। इसके अन्दर व्रण रोपक गुण विशेष मात्रा में मौजूद रहता है। इसका बनाया हुआ मरहम सब प्रकार के व्रणों पर लाभ पहुँचाता है। इसका मरहम इस प्रकार बनाया जाता है।

इसके पत्तों का रस २ तोला, घी १ तोला इन दोनों को मिलाकर गरम करना चाहिये। जब रस जलकर घी मात्र शेष रह जाय तब उसमें २ माशे मोम डालकर फिर गरम करना चाहिये। जब मोम गल जाय तब उसको छानकर इसके पानी के बरतन पर रख देना चाहिये। इस मरहम को लगाने से सब प्रकार के व्रणों पर लाभ होता है।

इसके रस में गुड़, सिंदूर और थोड़ा सा चूना मिला कर बदगाठ पर लेप करने से बदगाठ बैठ जाती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह कफ निस्सारक, पौष्टिक तथा पित्त, तिल्ली के रोग, कुष्ट, बवासीर, ज्वर, फिरंग रोग, और पेशाब के साथ खून जाने की बीमारी में लाभदायक है। इसके बीज वमन कारक और विरेचक होते हैं।

गायना में इसके फूलों का पुल्टिस गठानों पर बांधते है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीज वमन कारक और विरेचक होते हैं। इसमें सेपानिन रहता है।

घी

नाम—

संस्कृत—घृत, नवनीतक, वन्हिभोग्य। हिन्दी—घी, घृत। बंगाल—घी, घृत। मराठी—तूप। गुजराती—घी। तेलगू—नेइ। फ़ारसी—रोगनेजर्द। अरबी—समन, दुहनुलबकर। लेटिन—Butyrum Depuratum (ब्यूटीरम डेप्यूरेटम)

वर्णन—

घी एक मशहूर पदार्थ है जो गाय, भैंस, बकरी इत्यादि पशुओं के दूध में से प्राप्त होता है।

आयुर्वेदिक मत—सुश्रुत के मतानुसार घी सौम्य, शीत वीर्य्य, कोमल, मधुर, अमृत के समान गुणकारी, स्निग्ध और उदावर्त, उन्माद, मृगी, उदरशूल, ज्वर और पित्त को दूर करने वाला, अग्नि-दीपक तथा स्मरण शक्ति, बुद्धि, मेधा, सौंदर्य, स्वर, लावण्य, सुकुमारता, ओज, तेज और बल तथा आयु को बढ़ाने वाला, वीर्य वर्धक, अवस्था को स्थापन करने वाला, नेत्रों को हितकारी, विष नाशक और राक्षस बाधा को दूर करने वाला होता है।

यह अजीर्ण, उन्माद, क्षय, रक्त पित्त, तृषा, रुधिर विकार, व्रण, दाह, योनि रोग, नेत्र रोग, कर्ण रोग, दाद, शिरोरोग, सूजन और त्रिदोष को नष्ट करने वाला है। यह अविराम वातज्वर वाले को हितकारी और आमज्वर पर विष के समान हानि कारक है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में गरम और तर है। यह दस्त को साफ करता है। शरीर को पुष्ट करता है। पित्त और कफ के जमे हुए [illegible] को बिखेरता है। सीने और गले की जलन को दूर करता है। गले की खुश्की को मिटाता है। दिमाग को [illegible] देता है। बच्चों के मसूड़ों पर इसको मलने से उनके दांत जल्दी निकल आते हैं। गरम और खुश्क जहरों के उपद्रव को दूर करता है। नमक के साथ घी को खाने से वात के उपद्रव दूर होते हैं। सोंठ, काली मिरच और लेंडी पीपर के साथ घी खाने से कफ की बीमारी में काम देता है। सोंठ और ज्वाखार के साथ घी को खाने से मेदा की कमजोरी मिटती है और भूख बढ़ती है। १३॥ माशे नवसार के साथ २ तोला घी को मिला कर चाटने से रुका हुआ पेशाब खुल जाता है। रात को सोते समय घी को मुंह पर मलने से चेहरे के काले दाग मिट जाते हैं।

किसी भी जुलाब को लेने के पहले अगर तीन दिन तक घी को काली मिरच के साथ खा ले तो आंते मुलायम होकर [illegible] जाती हैं और [illegible] आसानी [illegible] के साथ निकल जाती है।

धोया हुआ घी बाह्य उपचारों के लिए बहुत अच्छी चीज है। इसका मलहम गठिया, शरीर की सुन्नता, पट्ठों का दर्द, जोड़ों की सूजन और हाथ पांव की जलन में लगाने से लाभ होता है। सौ बार का धोया हुआ घी सिर पर मलने से रक्त पित्त में लाभ होता है। इसी घी को हाथ पांव पर मालिश करने से हाथ पाव में होने वाली वादी की सूजन मिट जाती है। इसकी मालिश से भिड़ और मक्खी का जहर भी उतर जाता है।

गाय का घी—

आयुर्वेदिक मत— आयुर्वेदिक मत से गाय का घी सब प्रकार के घी से उत्तम होता है। यह बुद्धि, कान्ति और स्मरणशक्ति को बढ़ाने वाला, वीर्यवर्द्धक, मेधाजनक, वातकफनाशक, श्रम निवारक, पित्त को दूर करने वाला, हृदय को हितकारी, अग्नि दीपक, पचने में मधुर और यौवन को स्थिर करने वाला होता है। यह अमृत के समान गुणकारी, विष को नष्ट करने वाला, नेत्रों की ज्योति बढ़ाने वाला और परम रसायन है।

यूनानी मत—यूनानी मत से भी गाय का घी सब घी से बढ़कर है। यह जहर को दूर करता है। चित्त मे प्रसन्नता पैदा करता है। शरीर को मजबूत करता है। कफ, पित्त और वात के रोग, सीने का दर्द और शरीर की बेचैनी को मिटाता है।

गाय का दूध और घी मिलाकर पिलाने से अफीम वगैरह स्थावर पदार्थों के विष में लाभ पहुंचता है। गाय का घी शहद और गाय के गोबर के रस में मिलाकर पिलाने से रक्त पित्त में लाभ होता है। गाय का गरम घी पिलाने से हिचकी बन्द हो जाता है। खाना खाने के बाद गाय के घी में काली मिरच मिलाकर चटाने से आवाज की खराबी मिट जाती है। गाय का गरम घी सुंघाने से आधाशीशी में भी लाभ होता है।

भैंस का घी—

भैंस का घी, उत्तम, स्वादिष्ट, रक्तपित्त नाशक, वात निवारक, बल कारक, शीतल, वीर्य-वर्धक, भारी, हृदय को हितकारी और पाक में स्वादिष्ट है।

यूनानी मत—यूनानी मत से भैंस का घी मेदे को ढीला करता है। इसको सवेरे खाली पेट शक्कर के साथ खाने से पित्त के उपद्रव शान्त होते हैं। यह वायु को मिटाता है। भूख कम करता है और वीर्य वधक है।

बकरी का घी—

आयुर्वेदिक मत— आयुर्वेदिक मत से बकरी का घी अग्नि वर्धक, नेत्रों को हितकारी, श्वास, खांसी और क्षय रोग में लाभ दायक, पाक में कड़वा तथा कफ और राजयक्ष्मा रोग को दूर करने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत से बकरी का घी गरम है। यह खांसी, दमा और तपेदिक में लाभ

पहुँचाता है। कान के बहरे पन में मुफीद है। भूख बढ़ाता है, जल्दी हजम हो जाता है तथा पित्त को फायदा पहुँचाता है।

भेड़ का घी—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से भेड़ का घी पाक में हलका, पित्त को कुपित करने वाला, विष नाशक, हड्डियो को बढ़ाने वाला तथा पथरी और मूत्र में जाने वाली शक्कर को दूर करने वाला होता है। यह वात, कंप और सूजन में हितकारी है।

यूनानी मत—यूनानी मत से भेड़ का घी कफ और वायु की बीमारियां पैदा करता है। सब प्रकार के घी से यह घी खराब होता है। गर्भाशय और कम्पन की बीमारियों में यह लाभदायक है।

घोड़ी का घी—

आयुर्वेदिक मत—घोड़ी का घी मधुर, किंचित अग्नि दीपक, कसैला, चरपरा, मल मूत्ररोधक, किंचित वात कारक, गरम, भारी, विषनाशक, नेत्र रोगों को दूर करने वाला तथा कफ और मूर्च्छा को हरने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत से घोड़ी का घी देर से हजम होने वाला और वायु को दूर करने वाला होता है।

नवीन घी—

ताजा घी तृप्ति कारक, दुर्बल मनुष्यों के लिये लाभदायक, रुचिकारक, नेत्रों के लिये लाभदायक और पांडु रोग को नष्ट करने वाला होता है। भोजन, तर्पण, श्रम, बलक्षय, पांडुरोग, कामला और नेत्र रोग में हमेशा ताजा घी का ही प्रयोग करना चाहिये।

पुराना घी—

पुराना घी तिमिर रोग, जुकाम, आम, खांसी, मूर्च्छा, कुष्ट, विष, उन्माद, ग्रह की पीड़ा और मृगी रोग को नष्ट करता है। दस वर्ष का रखा हुआ, उग्र गन्ध वाला, लाख के समान लाल रंग वाला घी पुराना घी कहलाता है। घी जितना २ अधिक पुराना होता है उतना ही अधिक गुणवान होता है। भाव मिश्र ने १ वर्ष के घी को पुराना घी कहा है। मगर दूसरे आचार्यों ने १० वर्ष के घी को ही पुराना घी माना है।

सौ बार धोया हुआ घी—

१०० से १००० बार तक ठण्डे जल से धोया हुआ घी कई रोगों को मिटाता है। धोया हुआ घी साबुन के झाग जैसा कोमल हो जाता है। यह ठंडा और शिथिल करने वाला होता है। स्नायु सम्बन्धी मस्तक पीड़ा, श्वास, गठिया, जोड़ों का दर्द, हाथ पैरों की जलन इत्यादि कई रोगों में यह बाहरी उपचार के काम में आता है। खाने के काम में यह घी नहीं लिया जाता।

उपयोग—

चातुर्थिक ज्वर—पुराने घी में हींग मिलाकर उसको सुंघाने से चातुर्थिक ज्वर में लाभ होता है।

पांडु रोग—सोंठ की लुगदी से सिद्ध किया हुआ घी संग्रहणी, पांडुरोग, प्लीहा, खांसी, इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचाता है।

हिचकी—थोड़ा सा गरम २ ताजा घी पिलाने से हिचकी बन्द हो जाती है।

स्वर भंग—भोजन किये पश्चात् घी में काली मिरच का चूर्ण मिलाकर पिलाने से स्वर भंग मिटता है।

मन्दाग्नि—जीरा और धनिये की लुगदी से सिद्ध किया हुआ घी वमन, अरुचि और मन्दाग्नि में लाभ पहुँचाता है।

शुक्र दोष—धनिया और गोखरू के क्वाथ और लुगदी से सिद्ध किया हुआ घी मूत्राघात, मूत्र कृच्छ्र और शुक्रदोष को मिटाता है।

अण्डवृद्धि—गाय के घी के अन्दर सेन्धा नमक मिलाकर पीने से और उसका लेप करने से अंड वृद्धि में लाभ होता है।

विसर्प रोग—सौ बार के धोये हुए घी का लेप करने से विसर्प रोग में लाभ होता है।

रक्तपित्त—चार भाग अडूसे के रस में एक भाग घी को सिद्ध करके सेवन करने से रक्तपित्त में लाभ होता है।

अम्ल पित्त—शतावरी की लुगदी से सिद्ध किया हुआ घी अम्लपित्त, रक्त पित्त, तृषा, मूर्च्छा और श्वास में लाभ पहुँचाता है।

आमवात—चार भाग कांजी के जल में १ भाग घी मिलाकर उसके बीच में सोंठ की लुगदी रखकर आग पर सिद्ध करके उस घी का सेवन करने से आमवात और मन्दाग्नि मिटती है।

परिणाम शूल—पीपल के क्वाथ और कल्क से घी को सिद्ध करके उस घी में असमान भाग शहद मिला कर चाटने से परिणाम शूल मिटता है।

हृदय रोग—अर्जुन के स्वरस और उसकी लुगदी से घी को सिद्ध करके उसको सेवन करने से सब प्रकार के हृदय रोग मिटते हैं।

बनावटें—

फलघृत—मेदा, मजीठ, मुलेठी, कूट, त्रिफला, खरेंटी, काकोली, क्षीर काकोली, असगन्ध अजवायन हलदी, हींग, कुटकी, नीलकमल, दाख, सफेदचन्दन का बुरादा, लाल चन्दन का बुरादा, ये सब चीजें दो २ तोला लेकर बारीक चूर्ण करके सिलपर पानी के साथ पीसकर इनकी लुगदी बना लेना चाहिये। उस लुगदी को कलईदार पीतल की कढ़ाही में रखकर उसमें चार सेर घी और चार सेर शतावरी का रस डालकर हलकी आंच से पकाना चाहिये जब वह रस जल जाय तब उसमें और चार सेर शतावरी का रस डालना चाहिये। इस प्रकार १६ सेर शतावरी का रस उसमें पचा देना चाहिये। जब सब रस जल जाय तब उसमें १६ सेर गाय का दूध भी चार २ सेर करके पचा देना चाहिये। उसके बाद उसको उतारकर छानकर रख लेना चाहिए। यह घी खून बढ़ानेवाला, कामोद्दीपक और अत्यंत वाजिकरण है स्त्रियों के योनिरोग, हिस्टीरिया और उन्माद पर भी यह बहुत लाभ पहुँचाता

है। वंध्यास्त्री के रजोदोष को मिटाकर उसे सन्तान उत्पत्ति के योग्य बनाता है। इसकी मात्रा १ तोले से २ तोले तक है।

त्रिफलादि घृत—त्रिफला, बच, दन्तीमूल, निशोथ, और कबीला। इन पाचों चीजों को सोलह सोलह तोला लेकर पानी के साथ सिलपर पीसकर लुगदी बनाकर उस लुगदी को कलईदार कढ़ाही में रखकर उसमें ४ सेर गाय का घी और १६ सेर गोमूत्र डालकर हल्की आंच पर पकाना चाहिये। जब घी मात्र शेष रह जाय तब उतारकर छान लेना चाहिये। इस घी को ४ से ६ माशे की मात्रा में दूध के साथ लेने से सब प्रकार के कृमि रोग नष्ट होते हैं।

बृहत्कल्याण घृत—नागरमोथा, कूट, हलदी, दारू हलदी, पीपल, कुटकी, काकोली, क्षीर काकोली, बायबिडंग, त्रिफला, बच, मेदा, रासना, असगंध, इन्द्रायण, प्रियंगू, दोनों सारिवा, शतावर, लक्ष्मणा, दन्ती, मुलेठी, कमल, अजमोद, महामेदा, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, चमेली के फूल, बंशलोचन, मिश्री, हींग और कायफल। इन सब चीजों को दो दो तोले लेकर सिलपर पानी के साथ पीसकर लुगदी बनालें। इस लुगदी को कलईदार तांबे की कढ़ाही में रखकर उसमें तीन सेर गाय का घी और १२ सेर गाय का दूध भरकर पुष्य नक्षत्र में मन्दाग्नि से पकाना चाहिये। जब दूध जलकर घी मात्र शेष रह जाय तब उतारकर छान लेना चाहिये।

जिस स्त्री के गर्भ न रहता हो, गर्भ रहकर नष्ट हो जाता हो, मरी सन्तान पैदा होती हो, सन्तान होकर मर जाती हो अथवा जिसके लड़कियां ही लड़कियां पैदा होती हों, ऐसी स्त्रियों को इस घी का १ तोले से २ तोले तक की मात्रा में दूध के साथ लम्बे समय तक सेवन करने से सुन्दर और बलवान पुत्र प्राप्त होता है। अगर पुरुष इस घी का सेवन करे तो उसकी काम शक्ति बहुत बढ़ जाती है।

बृहत्फल घृत—मोथा, हलदी, दारू हलदी, कुटकी, इन्द्रायण, कूट, पीपल, देवदारू, कमल, काकोली, क्षीर काकोली, त्रिफला, बायबिडंग, मेदा, महामेदा, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, रासना, प्रियंगू, दन्ती, मुलेठी, अजमोद, बच, चमेली के फूल, दोनों तरह की सारिवा, कायफल, वंश लोचन, मिश्री और हींग। इन सब चीजों को दो २ तोला लेकर लुगदी बनाकर उसमें दो सेर घी और आठ सेर दूध डालकर ऊपर बतलाये तरीके से मन्दाग्नि पर सिद्ध कर लेना चाहिये।

यह घी भी उचित मात्रा में सेवन करने से बृहत् कल्याण घृत की तरह ही फायदा बतलाता है।

अशोक घृत—अशोक की छाल १ सेर लेकर आठ सेर पानी में पकाना चाहिये। जब १ सेर जल रह जाय तब उसको छान लेना चाहिये। फिर चिरोंजी, फालसा, रसोत, मुलेठी, अशोक की छाल, शतावर, चौलाई की जड़, मेदा, महामेदा, काकोली, जीवक, ऋषभक, इन औषधियों को दो २ तोला लेकर और उनकी लुगदी बनाकर उस लुगदी को कलईदार

कढ़ाही में रख कर, उसमें १० तोला मिश्री, ऊपर बताया हुआ २ सेर अशोक का काढ़ा १ सेर चांवलों का धोवन, १ सेर बकरी का दूध, १ सेर कुकुर भागरे का रस, १ सेर जीवक का रस, और १ सेर घी डालकर मन्दाग्नि पर पकाना चाहिये। जब सब चाजें जलकर घी मात्र शेष रह जाय तब छान लेना चाहिये।

इस घी के सेवन से श्वेत प्रदर, रक्तप्रदर, नील प्रदर, गर्भाशय का दर्द, कमर का दर्द, योनि का दर्द, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डुरोग, श्वास और खांसी नष्ट होते हैं। स्त्री रोगों के लिये यह बहुत अच्छी वस्तु है।

इसी प्रकार सब प्रकार के उन्माद को नष्ट करने के लिये कल्याण घृत, बुद्धि को बढ़ाने के लिये महापैशाचिक घृत, उदर रोगों के लिये मनिष्ठादि घृत, महातिक्त घृत, मस्तक रोग के लिये षड्बिंदु घृत इत्यादि अनेक प्रकार के घृत आयुर्वेद में बतलाये गए हैं। जिन्हें चिकित्सा ग्रंथों में देखना चाहिये।

घी गुवार

नाम—

संस्कृत—घृत कुमारी, दीर्घ पत्रिका, बहुपत्री, स्थूलदला, रसायनी। हिन्दी—घी ग्वार, ग्वार पाठा। बंगाली—कोमारी, घृत कोमारी। मराठी—कोरफल, कोरकाड। गुजराती—कड़वी कुंवार, कुंवार। तामील—अगनि, कटलई, कोड़ियन, चिरू कत्तारे। तेलगू—चिकलबन्दा, कलबद। फारसी—दरख्तेसिन्न। अरबी—मुसब्बर। उर्दू—घीकुआर। लेटिन—Aloe Vera (एलो व्हेरा)

वर्णन—

घी ग्वार के क्षुप, खारी जमीन, रेतीली भूमि तथा नदी के तट पर प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होते हैं। इसके पत्ते दो २ फुट तक लम्बे और चार २ इंच चौड़े होते हैं। इनके दोनों तरफ कांटे होते हैं। ये पत्ते बहुत मोटे और दलदार होते हैं। इन पत्तों को छीलने से इनके भीतर घी के समान गूदा निकलता है। इनके ऊपर लम्बी २ फलियां लगती हैं जिनकी शाग बनाई जाती है।

घी ग्वार के रस को सुखाकर उसका १ पदार्थ बनाया जाता है। जिसको संस्कृत में कुमारी रस कृष्ण बोल, हिन्दी में एलवा, बंगाली में मोशब्बर, मराठी में एलिया, गुजराती में एलियो और तेलगू में मुशाम्बर कहते हैं। उत्तम एलुआ, कुछ सुनहरी और भूरे रंग का, बाहर से कठिन और भीतर से नरम तथा पारदर्शी होता है। इसका चूर्ण नारंगी रंग का होता है। यह सकोतरा से आता है। जाफराबाद का एलुआ काला होता है। यह दूसरे दर्जे का होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से घी ग्वार मीठा, कडुआ, शीतल, विरेचक, धातु परिवर्तक, मज्जा वर्धक, पौष्टिक, कामोद्दीपक, कृमिनाशक और विष निवारक होता है। नेत्र रोग, अर्बुद,

तिल्ली की वृद्धि, यकृत रोग, वमन, ज्वर, खांसी, विसर्प, चर्म रोग, पित्त, श्वास, कुष्ठ, पीलिया, पथरी और व्रण में यह लाम दायक होता है।

इसकी फलियां मधुर तथा पित्त और कृमियों को नष्ट करने वाली होती हैं।

आयुर्वेद के अंदर धीरे २ लेकिन निर्भयता के साथ निश्चित और रामबाण लाभ पहुँचाने वाली जो थोड़ी सी प्रभावशाली और अमूल्य औषधियां हैं, उनमें घी गुवार अपना एक प्रधान स्थान रखती है। यह औषधि सम शीतोष्ण होने की वजह से चाहे जैसी हवा में, चाहे जैसी ऋतु में और चाहे जैसी प्रकृति के रोगी को देने से अपना निश्चित असर बतलाती है। इसके सेवन से मल शुद्धि होती है। और शरीर में संचित रोग जनक तत्व निकल जाते हैं। जठराग्नि प्रदीप्त होकर भोजन का पाचन व्यवस्थित रूप से होता है। रस रक्त वगैरह सप्त धातुओं की शुद्धि होती है। जिससे हर प्रकार की खांसी, श्वास, क्षय, उदर रोग, वात व्याधि, अपस्मार, गुल्म, नष्टार्तव, भोजन के पीछे होने वाला उदर शूल, मंदाग्नि कब्जियत, तिल्ली और लीवर के रोग, इकतरी बुखार, कामला, पाडु, अम्लपित्त, कृमि रोग इत्यादि सब रोग इसके सेवन से नष्ट होते हैं।

लेप के लिए भी यह एक उत्तम वस्तु है, इसके गूदा को पेट के ऊपर बांधने से पेट के अन्दर की गांठ गल जाती है। कठिन पेट मुलायम हो जाता है और आतों में जमा हुआ मल बाहर निकल जाता है। कामला रोग के अन्दर घी गुवार को देने से दस्त साफ आता है पित्त का जमाव बिखर जाता है जिससे आंख और शरीर का पीलापन मिटकर रोग आराम हो जाता है। इस औषधि में रक्त शोधक गुण होने की वजह से विस्फोटक इत्यादि चर्म रोगों में भी यह बहुत लाभ पहुँचाती है। जिन रोगों में खून के अन्दर पित्त का जोर बढ़ जाता है। उनमें इसका उपयोग करने से निश्चित लाभ होता है। इसके उपयोग से मगज की गर्मी शान्त होती है। मस्तिष्क का भ्रम दूर होता है। आंखें ठंडी होती हैं और गर्मी की वजह से अगर आंखों में कोई खराबी पैदा हो जाय तो इसके सेवन से दूर हो जाती है। घीगुवार की जड़ को एक रुपया भर लेकर गरम पानी के साथ पिलाई जाय तो वमन होकर बहुत दिनों का पुराना विषम ज्वर मिट जाता है।

इसके रस से बनाये हुए एलुवे में भी इसी के समान गुण रहते हैं। मगर यह इसकी अपेक्षा विशेष गरम होता है। नष्टार्तव, अनार्तव, मासिक धर्म की अनियमितता, हिस्टीरिया, वगैरह स्त्रियों के रोगों पर इसका असर बहुत उत्तम होता है। कब्जियत के ऊपर तो यह एक रामबाण औषधि है। इसके उपयोग से बिना किसी उपद्रव के साफ विरेचन हो जाता है। अगर दूसरी अग्निदीपक औषधियों के साथ इसका उपयोग किया जाय तो बहुत पुराना अग्निमांद्य, कब्जियत, गोला, कृमिशूल, आफरा और वायु के सब उपद्रव शान्त होते हैं। एलुवा गरम और भेदक होने की वजह से गर्भिणी स्त्री को नहीं देना चाहिये। क्योंकि इससे गर्भपात होने की सम्भावना रहती है। इसी प्रकार दूसरे मनुष्यों को भी इसे लगातार कई दिनों तक नहीं लेना चाहिये क्योंकि इससे गुदा में दाह और मरोड़ी पैदा होती है।

(जंगलनी जड़ी बूटी)

डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार इस वनस्पति की प्रधान क्रिया पाचन नली के ऊपर होती है। यह पाचन क्रिया और यकृत की क्रिया को सुधारती है। बड़ी मात्रा में लेने से एलुवा विरेचक मूत्रल, कृमिघ्न और आर्तव प्रवर्तक गुण बतलाता है। इसके लेने से मरोड़ी पैदा होकर १०।१२ घण्टे में जोर का दस्त होता है। इसकी प्रधान क्रिया बड़ी आंत और उत्तर गुदा पर विशेष होती है। गर्भाशय, बीज कोष, और बीज वाहक नलियों पर इसका दाह जनक प्रभाव होकर आर्तव शुरु हो जाता है।

घी ग्वार का स्वरस नेत्राभिष्यन्द, स्तनकोप, विद्रधि, बवासीर और अग्नि से जले हुए व्रण की शान्ति के लिये हलदी के साथ मिलाकर दिया जाता है। इससे दाह की कमी होती है। इसके रस को थोड़ी हलदी और सेंधे निमक के साथ खिलाने से कब्ज, मन्दाग्नि, मन्दाग्नि की वजह से पैदा हुई खांसी मासिक धर्म की रुकावट, पाण्डुरोग, गुल्म, इत्यादि में बहुत लाभ होता है। इससे पाचन क्रिया सुधर कर आंतों में जोश पैदा होता है। दस्त साफ होता है। रस क्रिया शुद्ध होती है। रस ग्रंथि की विनिमय क्रिया सुधरती है। नवीन और शुद्ध रक्त उत्पन्न होता है और शक्ति बढ़ती है। छोटे बच्चों और स्त्रियों के लिये यह विशेष उपयोगी पड़ता है। फीका रंग, मोटा पेट, कब्जियत और इन लक्षणों के साथ होने वाली स्त्रियों की मासिक धर्म की रुकावट को दूर करने के लिये घी ग्वार के समान दूसरी औषधि नहीं है। ज्वर में कब्जियत के साथ जीभ की सफेदी और दाह होने पर इस वनस्पति का उपयोग किया जाता है।

बड़ी आंत की शिथिलता, अरुचि, अग्निमांद्य, अजीर्ण, कब्ज, शारिरिक थकावट, पाण्डु रोग और मासिक धर्म की रुकावट में एलुवे का बहुत अधिक प्रयोग होता है।

यौवन के प्रारम से घी ग्वार के गूदा का नियमित रूप से सेवन करने से और उस पर नीम गिलोय का स्वरस बराबर पीते रहने से प्रौढावस्था और वृद्धावस्था में जब कि इन्द्रियों की शिथिलता का का युग प्रारम होता है, मनुष्य का यौवन इस औषधि के प्रभाव से सुरक्षित रहता है। हमारे सामने एक ऐसा व्यक्ति मौजूद है जिसकी अवस्था इस समय ८२ वर्ष की है। जो घर का बहुत गरीब है। जिसको जीवन में कभी पौष्टिक अन्न नसीब नहीं हुआ और जो मांसाहार से हार्दिक घृणा करता है। यह व्यक्ति २० वर्ष की उम्र से अभी तक लगातार घी ग्वार का सेवन करता रहा है। उसका कहना है कि मैं प्रति दिन ४।५ ग्वार पाठे छीलकर उनका गूदा निकाल कर खा लेता हूँ और उसके ऊपर नीम गिलोय को सिलपर पीसकर उसको आधासेर पानी में छान कर पी लेता हूं। इसके सिवाय जीवन भर में कभी दूसरी औषधि का सेवन नहीं किया। इस आदमी की हालत यह है कि शरीर पर १ धोती और पगड़ी के सिवाय उसने कभी कोई वस्त्र धारण नहीं किया। कड़ाके की सर्दी और जेठ महिने की भयकर गर्मी में वह हमेशा नंगे बदन और नगे पैर रहता है। रात को भी उसे ओढ़ने की जरूरत नहीं पड़ती। उसके दांत की बत्तीसी मोती के दानों की तरह अखड सुरक्षित है और उसका कण्ठस्वर आज भी बालकों की तरह है। वह आज भी बालकों की तरह गाता है। वह आज भी दिन भर में ४० मील बिना थकावट अनुभव किए चल

सकता है । हमने अपने लड़के को भी इसी औषधि का सेवन कराया जिसका प्रभाव यह है कि वह लड़का भी अत्यन्त हट्टा-कट्टा और स्वस्थ है । एक औसत दर्जे के आदमी से वह दुगना तिगुना परिश्रम करता है । अभी तक वह २ शादियें कर चुका है और तीसरी की फिक्र में है । खाने को बिलकुल सादा कम कीमत का भोजन खाता है ।

इसी प्रकार और भी कुछ केसों पर घी ग्वार और नीम गिलोय का साथ प्रयोग करके हमने देखा है और उसमें बहुत अच्छी सफलता प्राप्त हुई है ।

यूनानी मत—यूनानी मत से घी ग्वार दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क होता है । किसी २ के मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और तर है । यह पित्त और कफ की खराबियों को दस्त की राह निकाल देता है । तिल्ली की सूजन और पेट के दर्द के लिए लाभ दायक है । पाचन क्रिया को तीव्र करता है । कामेंद्रिय की ताकत को बढ़ाता है । घी ग्वार का लुआब, आबी हलदी और सफेद जीरे को मिलाकर सूजन पर लेप करने से सूजन बिखर जाती है । इसका हलवा वात की बीमारियों को दूर करता है । सत गिलोय के साथ इसका गूदा खाने से मधुमेह रोग में लाभ होता है । इसकी साग बनाकर खाने से नारू में लाभ होता । घी ग्वार के गूदा मे हलदी का चूर्ण मिलाकर गरम करके पैरों के तलवे पर बाध देने से दुखती हुई आंखे आराम हो जाती हैं ।

बहुत से यूनानी हकीम बवासीर को नष्ट करने के लिये इसको एक बहुत उत्तम औषधि मानते हैं । गन्धना नामक वनस्पति के काढ़े मे एलुवे को मिलाकर उसमे साप की काचली का चूर्ण डाल कर वे उसका बवासीर के मस्सों पर लेप करते हैं । उनका ऐसा खयाल है कि बवासीर के रोग को नष्ट करने के लिये इससे उत्तम दूसरी औषधि नहीं है ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका ताजा रस विरेचक, शीतल और ज्वर में उपयोगी होता है । इसका गूदा गर्भाशय पर असर दिखलाता है । इसकी जड़ उदर शूल में लाभदायक है । इसमें एलोइन (Aloin), आयसोबारबेलोइन (Isobarbaloin), और एमोडिन (Emodin) नामक तत्व रहते हैं ।

उपयोग—

नेत्राभिष्यन्द—इसकी गूदा पर हलदी डालकर गरम कर बांधने से नेत्र की पीड़ा मिट जाती है ।

तिल्ली—गवार पाठे के गूदा पर सुहागी भुरवाकर खिलाने से तिल्ली कट जाती है ।

फोड़ा—गवार पाठे के गूदा को पकाकर बांधने से फोड़ा जल्दी पक जाता है ।

वायुगोला—गवार पाठे का गूदा ६ माशे, गाय का घी ६ माशे, हरड़ का चूर्ण एक माशा, सेंधा नमक एक माशा मिलाकर खाने से वायुगोला मिट जाता है ।

मासिक धर्म की अनियमितता—घीकुवार के गूदा पर पलाश का खार भुरभुराकर लेने से मासिक धर्म शुद्ध होने लगता है ।

उदर रोग—अजवायन को गुवार पाठा के रस सात भावनाएँ देकर फिर नींबू के रस की सात भावनाएँ देना चाहिये। इस अजवायन को ३ माशे से ६ माशे तक की मात्रा में देने से अजीर्ण, अफरा, मदाग्नि और सब प्रकार के उदर रोग मिटते हैं।

नेत्र रोग—इसका एक माशा गूदा लेकर उसमें २ रत्ती अफीम मिलाकर उसकी पोटली बनाकर पानी में डुबो डुबो कर आखो पर फेरने से और उसमें से एक दो बूंद नेत्र में टपका देने से नेत्र पीड़ा मिटती है।

कर्णपीड़ा—इसके रस को गरम करके जिस कान में पीड़ा हो उसकी दूसरे तरफ के कान में टपकाने से पीड़ा मिटती है।

बालक का डिब्बारोग—गुवार पाठे के रसमें ६ माशे एलवा और एक तोला बबूल का गोंद मिलाकर पीसकर पेट पर लेप करने से बालक का डिब्बा रोग मिटता है।

बनावटें—

घीगुवार का अचार—घीगुवार के पत्तों को लेकर उनका सफेद गूदा निकालकर दो दो तीन अंगुल के टुकडे करले। ऐसे पाच सेर टुकडे लेकर उनमें आध सेर नमक डालकर खूब हिलावें। उसके बाद बर्तन का मुंह बन्द करके तीन दिन तक धूप में रख देवें और दिन में दो दो तीन बार हिला दिया करें, फिर उसमें दस तोले हल्दी, दस तोले धनिया, दस तोले सफेद जीरा, पन्द्रह तोले लाल मिर्च, सवा छे तोले सेकी हुई हींग तीस तोले अजवायन, दस तोले सोंठ, साढ़े सात तोले काली मिर्च, साढ़े सात तोले पीपर, पाच तोले लौंग, पाच तोले दालचीनी, पाच तोले सुहागा, पाच तोले अकलकरा, दस तोले स्याहजीरा, पाच तोले इलायची, तीस तोले जवाहरड, तीस तोले सौंफ, तीस तोले राई इन सब चीजों को लेकर जवाहरड को छोड़कर सब चीजों का बारीक चूर्ण करके उसमें मिला दें। जवाहरड़ को साबित ही डाल दे।

इस अचार को रोगी का बलाबल देखकर ६ माशे से दो तोले तक खिलाने से सब प्रकार के उदर रोग, मन्दाग्नि और पेट के वात, कफ सम्बन्धी सभी विकार मिटते हैं। यह अचार बहुत ही स्वादिष्ट और रोचक होता है। सूख जाने पर भी इसको पीसकर दाल और साग में मिलाकर खा सकते हैं।

कुमारी आसव—घी गुवार का गूदा १०२४ तोले, गुड़ ४०० तोले, शहद २०० तोले, मडूर की भस्म २०० तोले इन सब चीजों को मिलाकर उसमें सोंठ, मिर्च, पीपर, लौंग, तज, तमालपत्र, इलायची, नागकेशर, चित्रक, पीपलामूल, बायबिडग, गजपीपर, चव्य, धनिया, कुटकी, नागरमोथा, हरड़, बहेडा, आमला, रासना, देवदारु, हल्दी, दारु-हलदी, मुलेटी, दन्ती की जड, मूरवा, कूट, बलबीज, कोंचबीज, गोखरू, सोया, अकलकरा, ऊँट कटारा के बीज, सफेद पुनर्नवा की जड, लाल पुनर्नवा की जड, चिकनी सुपारी, लोध और सोनामक्खी की भस्म सब चीजें दो दो तोले और धावड़ी

के फूल ३२ तोले लेकर उनको कूट पीस छानकर उसमें मिलाकर बरणियों में भरकर उनका मुंह बन्द करके अनाज के भीतर गाड़ देना चाहिए। एक महिने के पश्चात उनको निकालकर छान लेना चाहिये।

इस आसव को एक तोला से दो तोले तक की मात्रा में भोजन के पश्चात जल में मिलाकर पीने से रक्त शुद्ध होता है। शरीर में बल, कान्ति और वीर्य की वृद्धि होती है। जठराग्नि बहुत प्रदीप्त होती है और यकृत तथा तिल्ली के रोग, पांडु रोग, सूजन, कामला, प्रमेह, क्षय इत्यादि रोगों में बहुत लाभ होता है। घी गुवार के साथ मण्डूर का योग होने से यह योग बहुत प्रभावशाली हो गया है।

कुमारी पाक—घी गुवार की जड़ ८० तोले लेकर उसको ३२ तोले गाय के दूध के साथ औटाना चाहिये। जब सब दूध जल जाय तब उसको निकालकर छाया में सुखाकर उसका चूर्ण कर लेना चाहिये, फिर सोंठ, कालीमिर्च और छोटी पीपर आठ २ तोले और जायफल, जावित्री लौंग, मालवी गोखरू, कबाबचीनी, तज, तमालपत्र, इलायची, नागकेशर और चित्रक चार २ तोले लेकर सबका चूर्ण करके घीगुवार के चूर्ण के साथ मिला देना चाहिये। फिर ८० तोले शक्कर, ४० तोले गाय का घी, ४० तोले भैंस का दूध, और ४० तोले शहद मिलाकर, इन सबको धीमी आंच से पकाना चाहिये। जब चासनी अच्छी हो जाय और घी छोड़ दे तब उसको उतारकर ठंडी होने पर उसमें ऊपर लिखा हुआ घीगुवार वगैरह का मिला हुआ चूर्ण डाल दें और ऊपर से एक तोला उत्तम लोह भस्म, एक तोला स्वर्णभस्म और एक तोला रस सिन्दुर डाल कर अच्छी तरह मिलालें।

इस पाक को एक तोला से दो तोले तक की मात्रा में प्रतिदिन सेवन करने से जीर्णज्वर, खांसी, श्वास, क्षय, मन्दाग्नि, कर्णारी, आमवात इत्यादि अनेक रोगों में लाभ होता है। इससे स्त्रियों के गर्भाशय के सब दोष दूर होकर वे उत्तम सन्तानोत्पत्ति के योग्य बन जाती है। इसी प्रकार इसके सेवन से पुरुषों के वीर्य सम्बन्धी सब दोष दूर होकर उनकी कामशक्ति बहुत प्रबल हो जाती है।

चातुर्वङ्ग भस्म- शुद्ध किया हुआ वंग १ तोला, शुद्ध जस्ता १ तोला, शुद्ध सीसा १ तोला, शुद्ध पारा, १ तोला लेकर पहले वंग, जस्ता और सीसे को एक लोहे की कढ़ाई में डालकर आगपर चढ़ाना चाहिये। जब वे तीनों गल जाय तब इनको उतार कर फौरन उसमें पारा डालकर खूब हिलाना चाहिये। फिर उस कढ़ाई को आग पर चढ़ाकर उसमें थोड़ा २ सुहागा धीरे धीरे डालते जाना चाहिये और लोहे के मोटे डंडे से हिलाते रहना चाहिये। जब पीले रंग की भस्म तैयार हो जाय तब उसे उतारकर एक मिट्टी के सरावले में आधे भाग तक पिसा हुआ सुहागा भर कर ऊपर उस भस्म को रखकर उसके ऊपर फिर पिसा हुआ सुहागा दाब दाब कर भर देना चाहिये। जब सारा सरावला भर जाय तब उसपर ढक्कन रखकर कपड़ मिट्टी करके पच्चीस सेर जंगली कंडो की आग में फूंक देना चाहिये। ठंडी होने पर उस भस्म को निकालकर

घीगुवार के रस में घोटकर टिकड़िया बनाकर सुखालेना चाहिये और इन टिकड़ियों को फिर सराव सम्पुट में रखकर कपड़मिट्टी करके दस सेर कंडों में फूंक देना चाहिये। इस प्रकार दस बीस बार इस भस्म को घी गुवार के रस में खरल कर कर के सराव सम्पुट में फूंकना चाहिये। तब यह उत्तम पीले रंग की भस्म तैयार होती है। इस भस्म की मात्रा एक से तीन रत्ती तक है। यह भस्म सुजाक, रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, इत्यादि में बहुत लाभ पहुँचाती है।

सुजाक में इसकी एक मात्रा एक तोला मक्खन के साथ खिलाकर उसके ऊपर एक गिलास दूध की लस्सी में आधा तोला बबूल का गोंद, दस बूंद चन्दन का तेल, दस बूंद बिरोजे का तेल, दस बूंद कबाब चीनी का तेल और दस बूंद बादाम का तेल मिलाकर पीने से पहले ही दिन पेशाब की जलन बन्द हो जाती है।

रक्त प्रदर में—जिसमें धारा प्रवाहित रक्त बह रहा हो—इस भस्म को बकायन के आधा तोला रसमें मिलाकर देने से अत्यन्त चमत्कारिक प्रभाव होता है। इसके साथ ही पाताल गरुड़ के पत्तों को खिलार पीसकर उनकी लुगदी बनाकर उस लुगदी में इस भस्म को मिलाकर योनि मार्ग में रखने से बहुत जल्दी फायदा होता है। (जगलनी जड़ी बूंटी)

—०—

घीगुवार लाल

नाम—

संस्कृत—रक्त घृतकुमारी। हिन्दी—लाल घीगुवार। लेटिन—Aloe Rupescens (एलोइ रूपेसेंस)

वर्णन—

इसके पौधे बंगाल और सोमा प्रान्त में होते हैं। इसके नारंगी और लाल रंग के फूल लगते हैं इसके पत्तों के नीचे का हिस्सा बैंगनी रंग का होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

लाल घी गुवार कड़ुआ, पाचक, किञ्चित् गरम और उदर शूल, मंदाग्नि, बवासीर, तथा यकृत और तिल्ली के रोगों में लाभदायक है। इसके गूदा का हलवा बनाकर खाने से बवासीर में लाभ होता है। इसको स्पिरिट में गलाकर लेप करने से बाल काले पड़ जाते हैं। गुलाब के इत्र में मिलाकर इसे आखों में लगाने से नेत्र रोग मिटते हैं निशोत के साथ इसे देने से कब्जियत मिटती है। बच्चों की आतों के कीड़े मारने के लिये भी यह एक बहुत उत्तम वस्तु है। इसके ताजे गूदा में हलदी मिलाकर गरम करके बांधने से चोट की सूजन और पीड़ा मिट जाता है। रात को सोते समय इसको मोती देने से सबेरे साफ दस्त होकर बवासीर का पीड़ा में आराम होता है। इसके रस को गाढ़ा

करके उसमें हलदी मिलाकर गर्म करके बच्चों के पेट पर लेप करने से शूल और फेफड़े सम्बन्धी रोग मिटते हैं। इसीका बड़े आदमियों के पेट पर लेप करने से तिल्ली के रोग मिटते हैं। इसके रस से बनाये हुए एलुवे को थोड़े गन्धक के साथ गोली बनाकर देने से बवासीर की पीड़ा मिटती है। इसके गाढे किये हुए रस में शक्कर मिलाकर देने से सुजाक मिटता है। इसके कोमल गूदा को खाने से गठिया की पीड़ा में फायदा होता है। इसके गूदा पर रसौत और हलदी भुरभुराकर गरम करके बांधने से बदगांठ बिखर जाती है। इसके एक तरफ का छिलका दूर करके अग्नि पर रखकर उस पर थोड़ी अफीम और हलदी भुरभुराकर गरम होने पर उसका रस निकालकर पीने से चौथिया ज्वर छूट जाता है। (अनुभूत चिकित्सासागर)

घीगुवार छोटा

नाम—

संस्कृत—लघु घृतकुमारी। हिन्दी—घीगुवार छोटा। लेटिन—Aloe Indica (एलो इण्डिका)।

वर्णन—

यह एक छोटी जाति का गुवार पाठा है। जो मद्रास जिले के दक्षिणी किनारे पर बहुत पैदा होता है। इसके पीले फूल लगते हैं। इसके पत्ते एक बालिश्त से १ हाथ लम्बे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों के गूदा को ठण्डे पानी में धोकर उसपर मिश्री भुरभुराकर खाने से शरीर की गर्मी और रुधिर के भ्रमण का वेग कम हो जाता है। इसके गूदापर थोड़ी फुलाई हुई फिटकिरी भुरभुराकर बांधने से नेत्र पीड़ा मिटती है। शरीर को खुजलाकर इसके ताजे रस का लेप करना लाभदायक है। इसकी जड़ का क्वाथ बनाकर पिलाने से ज्वर छूट जाता है। इसके साढ़े सात तोले ताजा पत्तों का गूदा निकालकर उनमें ११। मासे नमक मिलाकर जल में औटाना चाहिये, जब पानी खौलने लगे तब उसे छानकर उसमें २॥ तोला मिश्री मिलाकर प्रातःकाल पिलाने से जुलाब लगकर तिल्ली कम हो जाती है। (अ॰ चि॰ सा॰)

घिरवेन

नाम—

पंजाब—घिरवेन, घेन, ककोलमिरच। गढ़वाल—घिरोवेन। अजमोड़ा—मिरचई। लेटिन—Elaeagnus Umbellata एलिएगनस, अम्बेलेटा।

वर्णन—

यह वनस्पति समशीतोष्ण हिमालय में काश्मीर से नेपाल तक ३००० फीट से १००००

फीट की ऊँचाई तक पैदा होता है। यह एक फाड़ीदार पौधा होता है। इसके पत्ते लम्बगोल, पीछे के बाजू सफेद और चमकीले, फूल पीले, सफेद और सुगन्धित तथा फल गाढ़, सख्त और धारीदार होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके बीज खासी में उत्तेजक वस्तु की तौर पर काम में लिए जाते हैं। इसके फूल हृदय को पुष्ट करनेवाले और संकोचक होते हैं। इसका निकाला हुआ तेल फेंफड़ों के लिये पौष्टिक वस्तु है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके फूल उत्तेजक, हृदय को बल देनेवाले और संकोचक होते हैं।

—•—

घापाण ❀

नाम—

संस्कृत—कर्पूर पाषाण, वज्राभ्र। मराठी—गिरगोना। हिन्दी—कुलनार, पाणपत्थ। अंग्रेजी—Plaster of Paris प्लास्टर आफ पेरिस लेटिन—*Gypsum Seleaite* (जिप्सम सेलेनाइट)।

वर्णन—

घापाण यह सफेद रंग का काच के समान चमकता हुआ पत्थर होता है। इस पत्थर को पीस कर दक्षिण के लोग रांगोली बनाने के काम में लेते हैं। बम्बई वगैरह के बाजारों में यह डेढ़ आना दो आना रतल के भाव से बिकता है। पकाये हुए घापाण का बारीक चूर्ण विलायत से एक २ पौंड के डिब्बों में पेक होकर यहां आता है और बिकता है। यह इमारतों के ऊपर चित्रकारी करने के काम में भी आता है।

गुण दोष और प्रभाव—

प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रंथों में इस औषधि के सम्बन्ध में कोई विवेचन नहीं पाया जाता, मगर आधुनिक गुजराती वैद्यों में इस औषधि का प्रचार धीरे धीरे बढ़ता चला जा रहा है। वे लोग इसको भस्म बनाकर उसको अंग्रेजी औषधि केलशियम की जगह पर काम में लेते हैं। इसको भस्म बनाने का तरीका इस प्रकार है—घापाण को लाकर उसके बारीक टुकड़े करके एक दिन गुंवार पाठे के रस में भिगो देना चाहिये। फिर उसे एक मिट्टी के सरावले में भरकर उनपर दूसरा सरावला ढक कर कपड़मिट्टी करके एक गज लम्बे, एक गज चौड़े और एक गज गहरे गड्ढे में डाले कण्डे भरकर उन कण्डों

❀ नोट—घापाण यह गुजराती नाम है। मगर चूंकि यह वस्तु चिकित्सा के अन्दर गुजरात में विशेष प्रयोग में आती है इसलिये इसका परिचय गुजराती नाम से ही दिया है।

के बीच में उन उपलों को रखकर आग लगा देना चाहिये। जब आग ठंडी हो जाय तब उसको निकालकर बोतल में भर लेना चाहिये।

जगलनी जड़ी बूटी नामक ग्रंथ के कर्ता लिखते हैं कि इस भस्म में हड्डियों को पोषण देने वाला केलशियम या चूने का तत्व बहुत अधिक परिमाण में रहता है। इसलिये क्षय और शोष के समान रोगों में जहां जहां पर डाक्टर केलशियम की भिन्न २ प्रकार की बनावटें प्रयोग में लेते हैं वहां यह भी काम में लिया जा सकता है। खास करके बालकों के सूखा रोग में जिसमें की बालक दिन प्रतिदिन सूखता हुआ चला जाता है उसमें यह भस्म अच्छा काम करती है। एक या दो वर्ष के बालक को ३।४ रत्ती भस्म घी, मक्खन अथवा गोरोचनादि चूर्ण के साथ मिलाकर दी जाती है और इस भस्म को घी में मिलाकर बालक के शरीर पर मालिश भी की जाती है। इस भस्म के प्रयोग से बहुत से बालकों को अच्छा लाभ होते हुए देखा गया है।

बालशोष के सिवाय अग्नि से जले हुए स्थान पर इस भस्म को तेल में मिलाकर लगाने से शान्ति मिलती है और इसी प्रकार स्त्रियों के श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, मलेरिया बुखार, बालकों की दुर्बलता और निर्बलता म भी इसको उचित अनुपान के साथ देने से अच्छा लाभ होता है।

रक्तप्रदर पर इसका जो योग बनाकर दिया जाता है वह इस प्रकार है—

पाषाण को गोमूत्र अथवा नीबू के रस में डेढ़ घंटा औटाने से वह शुद्ध हो जाता है। ऐसे पाषाण को गुवार पाठे के रस में घोटकर टिकड़िये बनाकर सुखा लेना चाहिये। सूखने पर उसको मेंहदी के हरे पत्तों की लुगदी में रख कर उसपर कपड़ मिट्टी करके एक मन कंडों की आंच में रख देना चाहिये। जब आंच ठंडी हो जाय तब उसे फिर घीगुवार के रस में घोटकर मेंहदी की लुगदी में रखकर फूंकना चाहिये। इस प्रकार सात बार फूंकने पर पाषाण की उत्तम भस्म तैयार होती है। यह भस्म रक्त प्रदर के लिये एक उत्तम वस्तु मानी जाती है। इस भस्म को ६।७ रत्ती की मात्रा में ३ माशे जीरा और ३ माशे शक्कर के साथ मिलाकर दिन में २।३ बार देने से भयंकर रक्त प्रदर भी आराम होता है। इस भस्म को साढ़े दस रत्ती की मात्रा में दो रत्ती सोना गेरू मिलाकर देने से श्वेत प्रदर में भी अच्छा लाभ होता है।

अनन्त वात और पाषाण—

अनन्त वात के रोग पर भी यह औषधि लाभदायक सिद्ध हुई है। इस रोग में इसे देने का तरीका इस प्रकार है।

गेहूं का आटा दो सेर लेकर उसमें घी का मोयण देकर उसको विषखपरे के पत्तों के एक सेर रस में घूंदना चाहिये। फिर उसकी रोटी बनाकर सेंक कर उसका चूरमा कर लेना चाहिये। उस चूरमे में एक तोला पाषाण की भस्म तथा जरूरत के मुआफिक घी और शक्कर डालकर एक एक छटांक के लड्डू बना देना चाहिये। इनमें से एक एक लड्डू प्रातःकाल ४ बजे खाकर थोड़ी देर सो जाना चाहिये और तेल, खटाई, मिरचा, इत्यादि चीजों से परहेज करना चाहिये। साथ में एरंडी के

पत्तों को गरम करके सिर पर बांधना चाहिये। इस प्रयोग को ४।६ सप्ताह तक लगातार करने से अनन्त वात के रोग में अच्छा लाभ होता है।

इसी प्रकार मलेरिया ज्वर, मृगी, हिस्टीरिया, इत्यादि रोगों में भी इससे फायदा होता है।

—०—

घुनघुनियन

नाम—

संस्कृत - शानर गधिका। हिन्दी- घुनघुनियन। बंगाल--दिलमिनमिन। गुजराती—घूगरा। बम्बई– घागरी। मराठी—घाघरी। तेलगू–पंली गिलीं गच्छा। लेटिन--Corotolaria Retusa (क्रोटालेरिया रेट्रूसा)।

वर्णन—

यह सन की एक उपजाति है। यह वनस्पति भारतवर्ष, सीलोन, चीन, मलाया और गर्म आफ्रिका में पैदा होती है। इसकी शाखाएं रुएदार, पत्ते दरछी आकार के और फलियां लम्बी रहती हैं। इन फलियों में १५ से २० तक बीज रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति खाज और खुजली में उपयोग में ली जाती है।

घुरगा

नाम—

हिन्दी—घुरगा, घुरगिया, करग्य, दुधियारी, पुरड, मनेर, मनेला। मराठी—खुरपैंद्रा, पैंद्रा, पैंड़ी, पेदा, पेंडा। मारवाड़ी- बरुवा। मध्यप्रदेश—फरहर, फेतरा। कुनाऊ—फनेरा। तामिल– मलगरद। तेलगू—दोरना, मधुरिंग। लेटिन—Gardenia Turgida गार्डेनिया टरगिडा।

वर्णन--

यह वनस्पति गंगा के उत्तरी मैदान से हिमालय से, गढ़वाल से भूटान तक तथा बिहार, छोटा नागपुर और मद्रास के सूखे जंगलों में पैदा होता है। यह एक छोटा कांटेदार पौधा होता है। इसकी शाखाएं खुरदरी और मोटी, छाल चिकनी और पतली, पत्ते अण्डाकार और कटी हुई किनारों के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

संथाल जाति के लोग इसकी जड़ से एक औषधि तैयार करके बच्चों के अपचन

रोग में देते हैं इसकी जड़ को पानी के साथ पीसकर सिर पर लेप करने से सिर दर्द में लाभ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति बच्चों के अपचन रोग में दी जाती है।

घेटकोचू

नाम—

बंगाल—घेटकोचू। मलयालम—चेना। तामील—करपुरिनई। तेलगू—दुर्द कंदगद। लेटिन—Typhonium Trilobatum (टायफोनियम ट्रिलोबेटम)।

वर्णन—

यह वनस्पति भारतवर्ष के समुद्री किनारों पर पैदा होती है। इसकी गठानें लम्ब गोल होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

सर्प विष के ऊपर यह वनस्पति पिलाने के काम में ली जाती है। यह एक बहुत तेज उत्तेजक औषधि है। इसकी जडें जहरीली होती हैं। इसके जहरीले तत्व उड़नशील होते हैं। इसलिये इन जड़ो को सुखा लेने पर ये खाने के योग्य हो जाती है इन जड़ों के चूर्ण को खाने से आतों के रोग और खूनी बवासीर में लाभ होता है। इनको केलों के साथ खाने से उदर सम्बन्धी शिकायते दूर होती हैं।

वेस और महस्कर के मतानुसार इसकी जडें सर्प विष में लाभदायक नहीं है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति बवासीर और सर्प दंश में उपयोगी मानी जाती है।

घामोर

नाम—

हिन्दी—घामोर, गुनरा, घारम। गुजराती—घमघास, गुरुघास, दन, दनघास पंजाब—घमरुर, घमुर, घरन, घिरि, मगरुर। राजपुताना—बनवटी। लेटिन—Panicum Antidotale (पेनिकम एंटिडोटेल।

वर्णन—

यह वनस्पति कच्छ, भुज, पंजाब और गंगा के उत्तरी मैदानों में बहुत पैदा होती है। इस घास के पौधे २ से ४ हाथ तक ऊँचे होते हैं। ये बरू की तरह दिखाई देते हैं। इसके तने पर फुट फुट पर गठानें रहती हैं इस घास को अगर ढोर खाते है तो उनको नशा आजाता है इसके पत्ते लम्बे और सकड़े होते हैं। इसके फूलों की मंजरी बहुत पतली और छोटी होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका धुआं कृमिनाशक और संक्रमण (छूत) को दूर करने वाला होता है। छोटी माता में इसकी धूनी देने से रोगी को आराम मिलती है। गर्मी की तकलीफ में भी यह मुफीद है। इसके तने को छीलकर पानी में घिसकर पशुओं की आंखों में आंजने से उनकी आंखें बहती हुई बन्द हो जाती हैं और आंखों की फूली भी कट जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति गले के रोगों पर उपयोगी है। इसका धुआं घाव पर लगाने से लाभ होता है।

घोर वेल (चमार मूसली)

नाम—

हिन्दी—घोरवेल, कामराज। मराठी—बेन्दरवेल, बेन्द्री। लेटिन—Vitis Araneosa विटिस एरेनिओसा।

वर्णन—

यह वनस्पति दक्षिण, पश्चिमी घाट और नीलगिरी में पैदा होती है। यह एक पराश्रयी लता है। इसका फल गोल मटर के आकार का होता है और बीज लम्बगोल होते हैं। इसकी जड़ें गठानदार होती हैं और इन जड़ों पर एक छिलका रहता है। कोकण में औषध विक्रेता इसके टुकड़े करके सुखा लेते हैं और उनको चमार मूसली के नाम से बाजार में बेचते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ें शीतल, संकोचक, और पौष्टिक होती है।

घोर पड़वेल

नाम—

संस्कृत—गोधापदी। हिन्दी—घोर पड़वेल। बंगाली—गोयाली लता। तामील—कट्टुपिरन्दई, नारई। तेलगू—ददबुल, मन्दुलर्मार, वरनियमु। उरिया—पित्त पटको। लेटिन—Vitis Padata (विटिस पेडेटा)।

वर्णन—

यह एक पराश्रयी लता है। इसके पत्ते दांतेदार, लम्ब गोल और लम्बी नोक वाले होते हैं। इसका फल मटर के आकार का होता है

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति इसके संकोचक अथवा ग्राही गुण के कारण घरेलू दवा में उपयोग में ली जाती है। कभी २ इसे हरमल नामक वनस्पति के प्रतिनिधि रूप में भी काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति संकोचक, ज्वर निवारक और व्रण शोधक होती है।

—०—

घोड़ालिदी

नाम—

सन्थाली—घोड़ालिदी। तामील—सिकनरलई। तेलगू—गरीगुमदी। लेटिन—Vitis Torrentosa विटिस टोमे टोसा।

वर्णन—

यह एक पराश्रयी लता है। इस पर लाल रंग का हलका रुआं होता है। इसके फूल लाल, ५ पंखड़ियों वाले और फल तथा बीज लम्ब गोल होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

सन्थाल जाति के लोग इसकी जड़ को सूजन कम करने के उपयोग में लेते हैं।

—०—

चकरानी

नाम—

हिन्दी—मराठी—चकरानी। संस्कृत—चकरानी। कनाडी—मीरसगनी। मलयालम—अलपाय। लेटिन—Bragantia Wallichii (ब्रेगेंटिया वेलिचि)।

वर्णन—

यह वनस्पति भारतवर्ष के दक्षिण-पश्चिम किनारे पर और दक्षिण-कोकण में पैदा होती है। इसका झाड़ ७।८ फीट का ऊंचा होता है। इसकी छाल पीली, चिकनी, पत्ते ३ इंच लम्बे, बरछी आकार के, फूल किरमिजी रंग के और झूमकों में लगे हुए और फल ३ इंच लम्बे होते हैं। प्रत्येक फल में ४ बीज होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों का स्वरस मलाबार के अन्दर सर्प (नाग) का विष दूर करने के लिये दिया जाता है। इस कार्य के लिये इस औषधि की वहां पर बहुत तारीफ है। इसके पचांग को तेल के अन्दर उबाल कर उस तेल को भयकर खुजली और विसर्पिका पर लगाने के काम में लेते हैं। प्राचीन व्रणों के ऊपर भी यह तेल लाभदायक होता है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह औषधि सर्पदंश में निरुपयोगी है।

चकोतरा

नाम—

संस्कृत—मधुकर्कटी। हिन्दी—चकोतरा, महानींबू, बड़ी नींबू। बंगाल—बड़ी नीबू, चकोतरा, महानेबू। गुजराती—चकोतरु, पपनस। मराठी—पोपनस, पानिस। पंजाब—चकोतरा। कोकण—औरंज। फारसी—चकोतरा। उर्दू—चकूतरा। लेटिन—Citrus Decumana (साइट्रस डेक्यूमेना,) C.Maxima (साइट्रस मेक्सिमा)।

वर्णन—

यह एक मध्यम श्रेणी का वृक्ष होता है। इसकी ऊंचाई २० से ३० फुट तक की होती है। इसके बड़े पत्ते ६ से ६ इंच तक लम्बे रहते हैं। इसके फूल सफेद और बड़े होते हैं। इसके फल मोसम्बी की तरह मगर उनसे बहुत बड़े होते हैं। कोई २ चकोतरा वजन में ३ सेर से ५ सेर तक का पाया जाता है। इस फल का छिलका चिकना और हलके पीले रंग का होता है। इसकी २ जातियां होती हैं। एक के भीतर का गूदा सफेद रंग का और दूसरे का कुछ लाल होता है। यह नींबू की ही जाति का एक फल है। इसका रस खट्टा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से इसका फल खट्टा, मीठा, रुचिकर, रोचक, और ज्वर तथा प्यास को मिटाने वाला होता है। रक्त-पित्त, क्षय, दमा, मसोड़ों, मृगी और फुफ्फुस व्याधी में यह लाभदायक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका फल खट्टा, मीठा, रोचक और हृदय को बल देने वाला होता है। पित्त और क्षय में भी यह उपयोगी है। सीने की शिकायतों में तथा वमन, उदर शूल, अतिसार सिर दर्द और नेत्र रोगों में यह काम में लिया जाता है। इसके फल का छिलका कृमि-नाशक, मस्तिष्क को ताकत देने वाला तथा दिल की धड़कन और बेहोशी को दूर करने वाला होता है। इस छिलके को चेहरे पर मलने से चेहरे का रंग साफ होता है।

अनुभूत चिकित्सा सागर के मतानुसार चकोतरा शरीर को पुष्ट करने वाला और शीतल होता है। इसमें शक्कर और साइट्रिक नाम का खट्टा तेजाब रहता है। इसके छिलके में एक उड़न शील तेल पाया जाता है। इसके पत्ते मृगी, विशूचिका, पेट की वायु, और कंपवात में बहुत उपयोगी होते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका फल रोचक और ज्वर तथा प्यास को शमन करने वाला होता है। इसके पत्ते मृगी, हैजा और आक्षेप युक्त रोगों में उपयोगी होते हैं।

चंदन

नाम—

संस्कृत—चन्द्रद्युति, चन्दन, चन्द्रकान्त, गन्धसार, गन्धाढ्य, वरनक, मलयज, श्रीखण्ड।

हिन्दी—चन्दन, चन्दल, सफेद चन्दन, सन्दल। बंगाल—चन्दन, पीत चन्दन, श्रीखण्ड, सफेद चन्दन बम्बई—चन्दन, सफेद चन्दन, संदल। मराठी—चंदन, गन्ध चकोड़ा। गुजराती—सुखड़। पंजाब-चन्दन। सिंध—सुखड़। फारसी—संदल सफेद। अरबी—संदल अबियाज। तामील—संदनी, मलाई वेदम्। तेलगू—गंध चक्र। लेटिन—Santalem Album (सेंटेलम एलबम)।

बर्णन—

चंदन सारे भारतवर्ष में एक सुगन्धित और पवित्र द्रव्य की बतौर देव पूजा और धूप के काम में आता है। इसे सब कोई जानते हैं। इसलिये इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं। मलयागिरी का चंदन सब से उत्तम होता है। मैसूर में इसका उत्तम तेल मिलता है।

चन्दन के भेद—निघण्टु रत्नाकर में चंदन को श्रीखण्ड,वेट,सुक्कड़ी, शंबर, पीत, रक्त, इत्यादि कई जातियों का उल्लेख किया गया है।

गुण दोष और प्रभाव—

निघंटु रत्नाकर के मतानुसार श्री खंड चंदन चरपरा, कडुआ, धातु को पुष्ट करने वाला, शीतल, कसैला, कान्तिदायक, कामोद्दीपक, हृदय को बल देने वाला, मनोहर गन्धवाला, हलका, रूखा और पित्त, कफ, ज्वर, वमन, प्यास कृमि, मुखरोग, रक्त विकार और श्राप को नष्ट करने वाला है।

वेट्ट चन्दन—अत्यंत शीतल तथा दाह, पित्त,ज्वर,वमन, मोह, तृषा, कुष्ट, तिमिर रोग, खांसी और रक्त विकार को दूर करता है।

सुकड़ि चंदन- कडुआ, शीतल, सुगंधित तथा सुजाक, पित्त रक्त और दाह को दूर करने वाला होता है।

शबर चंदन—शीतल, कडुआ तथा कफ, वात, श्रम पित्त, विस्फोटक, खुजली प्यास और श्राप को नष्ट करने वाला है।

पीला चंदन—पीलाचंदन शीतल कडवा सौंदर्य कारक तथा रक्तरोग, कुष्ट,दाद,खाज, रक्त पित्त, प्यास, ज्वर और जलन को दूर करने वाला है।

चंदन का तेल—चंदन का तेल एक उत्तम मूत्रल, मूत्र नलिका की सूजन को दूर करने वाला, मूत्र पिंडों को उत्तेजना देने वाला और सुजाक में लाभ पहुँचाने वाला है। इसके प्रयोग से मूत्र पिंडों को किसी प्रकार की हानि नहीं होती। यह चर्म रोग नाशक और कृमियों को नष्ट करने वाला होता है।

इसका पानी या उबाला हुआ काढा कडुआ, शीतल, पसीना लाने वाला जलन को शांत करने वाला, प्यास को दूर करने वाला, संकोचक हृदय को बल देने वाला और रक्ताभिसरण किया को ठीक करने वाला होता है। इससे आमाशय की किया पर कोई खराब असर नहीं होता।

यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में सर्द और दूसरे दर्जे में खुश्क है। यह गरम मिजाज वाले के दिल और मेदे को ताकत देता है। कब्जियत पैदा करता है। गर्मी की सूजन को बिखेरता है। सोने की जलन को दूर करता है। प्यास को बुझाता है इसको घिसकर लेप करने से गर्मी का सिर दर्द दूर

होता है। गर्मी के बुखार और गर्मी के नजले में यह लाभदायक है। यह दिल की धड़कन, मेदे की जलन और पित्त के दस्त को दूर करता है। मनुष्य की कामशक्ति को यह कमजोर करता है।

यह बात यहाँ ध्यान में रखने की है कि इसके सम्बंध में आयुर्वेद और यूनानी मत में बहुत विरोध है। आयुर्वेद में इसे कामोद्दीपक बतलाया है मगर यूनानी मत के अनुसार यह कामशक्ति को नष्ट करने वाला है।

डॉक्टर देसाई के मतानुसार जब ज्वर के अन्दर हृदय शिथिल होने लगता है और उसकी क्रिया में अन्तर मालूम पड़ने लगता है, तब चन्दन को देने से हृदय की क्रिया सुरक्षित हो जाती है। चन्दन में उत्तेजक धर्म बहुत थोड़ा है। यह हृदय की गति को कम करता है मगर हृदय की शक्ति को यह कम नहीं करता बल्कि बढ़ाता है। चन्दन की यह हृदय को संरक्षण देने की क्रिया बहुत महत्वपूर्ण है। यह ज्वर की गर्मी से हृदय की रक्षा करता है। पित्त ज्वर में, बहुत दिन के पुराने ज्वर में और बहुत जोर के ज्वर में चन्दन का उपयोग करने से शरीर की गर्मी कम होती है और पसीना होता है। दुर्गन्धि युक्त कफ प्रधान रोगों में चन्दन के उपयोग से अच्छा लाभ होता है। इससे कफ के साथ खून का पड़ना बन्द हो जाता है। सुजाक की तीसरी अवस्था में चन्दन का तेल देने से संतोषजनक लाभ होता है। जीर्ण वस्ती शोथ में भी इसका अच्छा उपयोग होता है। शरीर की सूजन, विसर्प, ओरी फुंसियाँ, गांठ गूमड़े वगैरह रोगों में चन्दन और कपूर को गुलाबजल के साथ लगाने से अच्छा लाभ होता है।

चन्दन की लकड़ी मस्तिष्क और हृदय को पुष्ट करनेवाली है। यह आंतों को बल देकर मृदु विरेचन करती है। प्राचीन प्रमेह, सुजाक, मसाने और सिर दर्द में भी यह उपयोगी है। कफ के साथ खून जाने की बीमारी में इसकी जड़ को पानी के साथ पीस कर दिन में ३।४ बार पीने से लाभ होता है।

ग्लासगो के डाक्टर हैंडरसन ने सबसे पहले चन्दन के तेल को सुजाक की बीमारी में उपयोग में लेने के लिये चिकित्सकों का ध्यान आकर्षित किया। तब से यह बराबर सुजाक के अन्दर उपयोग में लिया जाता है। अनुभव से यह बात मालूम हो चुकी है कि कोपेबाआइल और कबाबचीनी की अपेक्षा यह सुजाक के रोग में विशेष लाभदायक है।

चन्दन का तेल इसकी लकड़ी और जड़ों में से प्राप्त किया जाता है। इस तेल को निकालने में बहुत खर्च होता है। २·५ से लेकर ६ प्रतिशत तक तेल चन्दन की लकड़ी में से निकलता है। यह तेल हलके पीले रंग का होता है। इसमें तेज सुगन्ध रहती है। स्वाद में यह कसैला होता है। यह ७० प्रति सैंकड़ा अलकोहल में घुलता है। इसमें ·५ से १ तक एसिड व्हेल्यू होती है और ३ से १७ तक इस्टर व्हेल्यू होती है। इसमें ९० से ९६ प्रति सैकड़ा तक मद्यसार रहते हैं जो कि खासकर एन्सेंटेलोल और बीन्सेंटेलोल होते हैं। शेष इसोव्हेलेरेल, एल्डेहाइड, सेंटेनोन, और सेंटेलोल रहते हैं।

इस तेल को लगाने से तर खुजली में फायदा होता है। इसको खिलाने से यह खून में मिलकर गुर्दे और कामेन्द्रिय की श्लेष्मत्वचा और वायु नलियों की श्लेष्मत्वचा के मार्ग से बाहर निकलता है। इसलिये यह नये और पुराने सुजाक में लाभदायक होता है। पुराने या भारी सुजाक में इसको पन्द्रह २ या बीस २ बूंद की मात्रा में दिन में ३।३ बार देना अक्सर लाभदायक होता है। लेकिन अगर पेशाब में अधिक जलन हो तो इसको ५ से १० बूंद तक की मात्रा में देना चाहिये। पीब और मवाद बन्द होने पर भी इसको ३।३ हफ्ते तक रोजाना देने से सुजाक के फिर होने का डर नहीं रहता।

पुरानी खांसी, सूखी खांसी और ऐसी खांसी जिसमें दुर्गन्धित कफ गिरता हो, इस तेल की ३।३ बूंदे बताशे में रख कर देने से अच्छा लाभ होता है।

मात्रा—इसके तेल की मात्रा ५ से ३० बूंद तक है।

उपयोग—

खुजली—चन्दन को पानी में घिस कर लेप करने से पित्त की सूजन, खुजली और छोटी फुंसियां मिटती है।

बुखार—चन्दन को पानी में घिसकर कनपटियों पर लेप करने से बुखार की तेजी, गर्मी और घबराहट मिटती है। पित्त के बुखार में इसका लेप करने से तसल्ली रहती है।

सुजाक—चन्दन का तेल १० से ३० बूंद तक गाय के दूध में मिलाकर पीने से अथवा शक्कर में इसकी ३० बूंद तक डालकर खाने से सुजाक में बहुत फायदा होता है।

हानि—यूनानी मत से इसका अधिक सेवन कामेन्द्रिय की शक्ति को कम करता है और आवाज तथा सीने को नुकसान पहुंचाता है। इसके दर्पनाशक शहद और मिश्री हैं।

चन्दन लाल

नाम—

संस्कृत—रक्त चन्दन, रक्तसार, लोहित चन्दन, रक्तबीज, ताम्रवृक्ष, ताम्रसार, इत्यादि। हिन्दी—लाल चन्दन, रक्त चन्दन, उदुम। बंगाल—लाल चन्दन, रक्त चन्दन, रंजन, तिलपर्णि। बम्बई—लाल चन्दन, रक्तचन्दन, रतांजलि। गुजराती—रतांजली। मराठी—रक्त चन्दन, तंबुड़ चन्दन। फारसी—सन्दल सुर्ख, बुक्कम। अरबी—सन्दलेहमर, सन्दुलहमर, उदुम। तामील—शिवप्पुचन्दनम्, पिशनम। तेलगू—अगरुगन्धम्, एर्रचन्दनमु, रक्त चन्दनमु। लेटिन—Pterocarpus Santalinus टेरो कारपस से टेलिनस।

वर्णन—

यह वनस्पति दक्षिण और उत्तरी अर्काट में में १५००-फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है। यह एक लम्बा वृक्ष है। इसके अन्दर की छाल सख्त और गहरे लाल रंग की होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से रक्त चन्दन कड़वा, शीतल, ज्वर निवारक, कृमिनाशक, पौष्टिक, वाजीकरण और विषनाशक होता है। यह रक्तविकार में लाभ पहुँचाता है। वमन, प्यास, पित्त कोप और व्रणों को दूर करता है। नेत्र रोग में लाभदायक है और मनो विकृति या चित्त का ऐसा भ्रम जो पागलपन की हद तक पहुँचा हो उसमें भी यह लाभदायक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में सर्द और तीसरे दर्जे में खुश्क है। इसका लेप गरमी से पैदा हुए सिर दर्द को बन्द करता है। इसके बीजों को पानी में पीसकर पीने से पेशाब की जलन और पेशाब के साथ खून जाना बन्द होता है। इसके पीने से जहर का असर दूर होता है। ज्वर, प्रदाह, सिरदर्द, आधाशीशी, गले के रोग, दांतों की तकलीफ और गर्भाशय के रक्त स्राव में भी यह लाभदायक है।

लाल चन्दन का लेप शीतल, सूजन को नष्ट करने वाला और व्रण को भरने वाला होता है। मगर इसे अकेले लेप करने से चमड़े के छिद्र बंद हो जाते हैं जिससे खुजली चलने लगती है। इसलिये इसे दूसरी औषधियों के साथ मिलाकर लेप करना चाहिये। ऐसा करने से खून की गरमी से पैदा हुए चर्म रोगों में यह बहुत लाभ पहुँचाता है।

जननेंद्रिय की सूजन पर इसकी लकड़ी को पानी में घिसकर लेप करने सूजन बिखर जाती है।

रासायनिक विश्लेषण—

रासायनिक विश्लेषण से इसमें एक प्रकार का चमकीला और लाल, राल सरीखा पदार्थ पाया जाता है। यह पानी में नहीं घुलता लेकिन मद्यसार में घुल जाता है। इसकी लकड़ी में सेंटेलिन एसिड नामक पदार्थ भी पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें टेरोकार्पिन, और होमो टेरो कॉर्पिन नामक पदार्थ भी रहते हैं। टेरोकार्पिन एक सफेद पदार्थ है। यह उबलते हुए मद्यसार में घुल जाता है। होमो टेरोकार्पिन भी इससे मिलता जुलता है। मगर यह ठण्डे बाय सलफाइड ऑफ़ कारबन में भी घुल सकता है।

यह संकोचक और पौष्टिक होता है इसको पानी घिसकर जलन के स्थानों पर लगाने से बहुत फायदा होता है। सफेद चंदन की अपेक्षा यह विशेष प्रभाव शाली होता है।

उपयोग—

सूजन और जलन—इसका लेप करने से सूजन और जलन में लाभ होता है।

मस्तक पीड़ा—ललाट पर इसका लेप करने से मस्तक पीड़ा मिटती है।

अतिसार—रक्तातिसार और पित्तातिसार में लाल चन्दन को देने से फायदा होता है।

नेत्ररोग—कनपटी और आंखों पर इसका लेप करने से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है।

आमातिसार—इसके पत्तों का क्वाथ पिलाने से आमातिसार में लाभ होता है।

हिचकी— लाल चंदन और सेंधेनिमक को स्त्री के दूध में घिसकर सूंघने से हिचकी बंद हो जाती है।
नकसीर— इसको कपूर के साथ घोटकर कई दिनों तक पीने से नकसीर बंद हो जाता है।

—०—

चंद्रमूल

नाम—

संस्कृत—चन्द्रमूलिका। हिन्दी—चन्द्रमूल। बंगाल—चन्द्रमूल, इसुल। गुजराती—कपूर-काचरी। तामील—कच्चोल किलगू। तेलगू—चन्दमूल। लेटिन—Kaempferia Galangal (केम्फेरिया गेलेंगल)

वर्णन—

यह छोटी जाति का क्षुप बाग बगीचों में प्रायः सब दूर लगाया जाता है। इसके पत्ते और जड़ें बहुत सुगन्धित होती हैं। इसकी जड़ में एक प्रकार का कन्द पाया जाता है। जिसमें कपूर काचरी के समान मनोहर खुशबू आती है। इसके पत्ते लम्ब गोल होते हैं और फूलों में बहुत दुर्गन्ध आती है। इसके पंचांग का स्वाद कड़वा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके कन्द का चूर्ण शहद में मिलाकर देने से और इसको तेल में उबाल कर उस तेल का छाती पर मालिश करने से सर्दी की खांसी और जुकाम दूर होते हैं। इसके टुकड़े को दाढ़ के नीचे रखने से मुंह में खुशबू आती है। इस औषधि में एक प्रकार का इसेंशियल आइल पाया जाता है।

—०—

चनसूर

नाम—

संस्कृत—चन्द्रशूर, क्षवेलिका, भद्रा, चन्द्रिका, दीर्घबीजा, नन्दिनी, रक्तबीजा, रक्तराजि। हिन्दी—अहालियों, हलीम, हालों, चनसुर, हरफ, मालदन। बंगाल—हालिम। बम्बई—अहालीव, गुजराती—अहालियों। मराठी—अहालीव। पंजाब—हालिम। तामील—अलिवेरई। तेलगू—आदेली। उर्दू—हलीम। अरबी—हरफुलबज, हरफ। फारसी—तख्मेरपन्द। लेटिन—Lepidum Sativum (लेपिडिम सेटिव्हम)

वर्णन—

यह वनस्पति सारे भारतवर्ष में बोई जाती है। यह एक वर्ष जीवी वनस्पति है। इसके पत्ते कटे हुए और फली लम्ब गोल रहती है। इसके बीज लुआबदार रहते हैं। इसका पौधा सरसों के पौधे की तरह होता है और इसके फूल नीले रंग के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से चनसूर या असालू गरम, कड़वा, और चर्म रोगों को नष्ट करने वाला है। यह स्तनों में दूध बढ़ता है। वीर्य वर्द्धक और कामोद्दीपक है। इसको पानी में पीसकर पीने से और इसका लेप करने से रुधिर विकार और शूल नष्ट होता है। इसका ताजा फल चर्मरोग, वातरोग, नेत्र रोग और चोट पर मुफीद है।

यूनानी मत—यूनानी मतानुसार इसके बीज गरम और खुश्क होते हैं। ये मूत्रल,मृदु विरेचक कामोद्दीपक तथा तिल्ली के प्रदाह और तिल्ली के रोगों में लाभदायक है। वायु नलियों की जलन, संधिवात और स्नायुजाल की पीड़ा में भी ये उपयोगी हैं। इनके सेवन से बुद्धि बढ़ती है और मस्तिष्क को बल मिलता है।

इसकी फांट बनाकर देने से आमाशय की जलन के कारण पैदा हुई हिचकी बन्द हो जाती है। इसका काढ़ा प्रसूति काल में पौष्टिक वस्तु के बतौर स्त्रियों को दिया जाता है। कमर के दर्द और संधियों की सूजन पर इसको पीसकर लेप करने से लाभ होता है। श्वास और खांसी की बीमारी में इसको देने से कफ निकल जाता है और रोगी को शान्ति मिलती है। रक्तस्राव में भी यह वस्तु लाभदायक है। इसकी जड़ गरमी की बीमारी और आक्षेपिक मरोड़ में उपयोगी है।

इस वनस्पति में ग्लूको ट्रापो ओलिन नामक ग्लूको साइड पाया जाता है।

कर्नल चौपरा के मतानुसार यह पौष्टिक और धातु परिवर्तक है। इसमें उड़न शील तेल पाया जाता है।

उपयोग—

सूजन—इसके बीजों को कूटकर नींबू के रस में मिलाकर लगाने से सूजन बिखर जाती है।

दाह और खुजली—दाह और खुजली पैदा करने वाले पदार्थों के जहर को उतारने के लिये, इसके बीजों का लुआब निकाल कर पिलाना चाहिये। क्योंकि यह विषैले परमाणुओं को गलेफ देता है और आमाशय और अन्तड़ियों की कलाओं पर एक प्रकार का ढक्कन बना देता है।

श्वास और खांसी—इसकी डालियों को औटाकर पिलाने से श्वास और सूखी खांसी मिटती है।

खूनी बवासीर—इसका शर्बत बनाकर पिलाने से खूनी बवासीर में लाभ होता है।

कब्जियत—इसकी जड़ के चूर्ण की फक्की देने से साफ दस्त होकर दस्त की बारबार शंका होना बन्द हो जाता है।

उपदंश—इसको औटाकर पिलाने से सारे शरीर में फैला हुआ उपदंश का विष शान्त होता है।

दुग्ध वृद्धि—इसके बीजों को दूध में औटाकर पिलाने से स्त्रियों का दूध बढ़ता है।

मात्रा—इसके बीजों की मात्रा ४ माशे से १० माशे तक की है। और इसके क्वाथ की मात्रा २॥ तोले से ७॥ तोले तक की है।

चंदा

नाम—

हिन्दी—चन्दा। बम्बई—चन्दा। मराठी—चंदा, चंदोदा, चंदोरा, चंदवर। मैसूर—चैंतकनि। तामील—वट्टिटुति। तेलगू—कोडजफरा, कोडतमरा। लेटिन—Macaranga Peltata (मकेरगा पेलटेटा)।

वर्णन—

यह एक मध्यम कद का वृक्ष होता है। जो उड़ीसा की पहाड़ियों पर पैदा होता है। इसकी छाल गहरे भूरे की, पत्ते लम्ब गोल और फल कंटदार होते हैं। इसके बीजों पर बादामी रंग की पतली सी झिल्ली रहती है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका गोंद कुप्रसंगज अथवा जननेंद्रिय सम्बन्धी (Venereal Sores) फोड़ों पर लगाने के काम में लिया जाता है।

—o—

चंदेरी यहुतन

नाम—

मलाया—चंदेरी यहुतन, विसायन, वंगलह। लेटिन—Grevia Paniculata (ग्रेविया पैनीक्यूलेटा।

वर्णन—

यह वनस्पति मलाया प्रायद्वीप और इण्डो चायना में पैदा होती है। यह एक झाड़ी नुमा वृक्ष है। इसके पत्ते कटे हुए तथा फल लम्ब गोल और हरे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इण्डो चायना के दक्षिणी भागों में इसका काढ़ा खांसी की बीमारी में दिया जाता है।

चनक भिंडी

नाम—

गुजराती—चनकभिंडी, चणभिंडो, दरियानू झाड़, अड़बाउब पोरियो, कुरडवल। लेटिन—Hibiscus Micranthus (हिबिस्कस माइक्रेंथस)।

वर्णन—

इसके पौधे गुरसाव के अंदर विशेष देखने में आते हैं। ये दो से लेकर १० फीट तक ऊंचे

होते हैं। इसके पौधे का स्वरूप साधारणतया गंगेरन के पौधे की तरह होता है। इसके पत्ते आधे से एक इञ्च तक लम्बे और पाव से पोन इञ्च तक चौड़े होते हैं। ये दोनों तरफ खुरदरे, कटी हुई किनारों के, और बहुत पतले होते हैं। इसका फल शुरू में सफेद, फिर गुलाबी और पकने पर बैंगनी हो जाता है। इस फल में ५ खंड होते हैं और हर एक खंड में २ से ५ तक छोटे २ बीज होते हैं। इसके बीज भी धारदार होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका फल खट्टा, मीठा और पौष्टिक होता है। इसके फल और फूल प्रमेह के रोगी को शक्कर के साथ खिलाये जाते हैं। इसकी जड़ और पत्तों का काढ़ा कच्छ के देहातों में श्वेत प्रदर पर पर दिया जाता है। यह वनस्पति ज्वर निवारक भी मानी जाती है।

—•—

चना

नाम—

संस्कृत—चणक, हरिमंथ, वाजिमंथ, कंचुकी, बाल भैषज्य। हिन्दी—चना, छोला। बंगाल—बूट, छोला। बंबई—चना, हरभरे। राजपूताना—चना, छोला। गुजराती—चना, चनिया। तेलगू—हरिमन्थकम्, सनअगालू। तामील—कडलइ। फारसी—नखुद। अरबी—हुमेस। उर्दू—बूंटचना। लेटिन—Cicer Aricentinum (सायसर एरीयेन्टिनम)

वर्णन—

चना या छोला भारत वर्ष का एक मशहूर खाद्य पदार्थ है। इसकी दाल प्रायः सब दूर खाने के काम में और घोड़ों की चन्दी के रूप में काम में आती है। इसकी पत्तियों की और इसके हरे बीजों की शाग बनाई जाती है। अतः इसके विशेष वर्णन की जरूरत नहीं। सर्दी के दिनों में चने के पौधों पर रात के समय जो ओस की बूंदें गिरती हैं। वे चने के खार के रूप में बदल जाती हैं। प्रातःकाल एक स्वच्छ मलमल का कपड़ा उन पर डाल कर उसको निचोड़ लेने से चने का खार एकत्रित हो जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत के मत से चने के पत्ते खट्टे, कसैले, आंतों को सिकोड़ने वाले, पित्त नाशक और दांतों की सूजन को दूर करने वाले होते हैं। इसका कच्चा फल अत्यन्त कोमल, रुचिकारक पित्त नाशक, काम शक्ति को नष्ट करने वाला, शीतल, कसैला, वात कारक, मल रोधक और हलका होता है। इसके पके हुए फल मीठे, प्यास को बुझाने वाले, प्रमेह नाशक, वात पित्त कारक, दीपन, सौंदर्य वर्द्धक, बल कारक, रुचि कारक और आफरा पैदा करने वाले होते हैं। ये रुधिर विकार, चर्म रोग, पीनस, गले के रोग, वात पित्त रोग, जुकाम और कृमियों को नष्ट करने वाले होते हैं।

चने का क्षार उदर रोग, अग्निमांद्य और कब्जियत में लाभ पहुँचाता है।

भुने हुए चने गरम, रुचिकारक, रक्त को दूषित करने वाले, बलदायक, शुक्र जनक और शरीर को तेज देने वाले होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से चना हरी हालत में पहले दर्जे में गरम और तर और सूखी हालत में पहले दर्जे में गरम और खुश्क होता है।

हकीम गिलानी का मत है कि चने में पहला गुण उसकी तेजी है जिसकी वजह से वह दस्त को साफ लाता है। उसमें थोड़ासा कड़वा पन भी होता है। जिसकी वजह से वह शरीर के सुद्दे खोलता है। मगर ये दोनों ही तासीर चनों को आग पर पकाने से निकल जाती है।

हकीम बुकरात का कहना है कि जोश देने से चने का जौहर और मोठापन निकल जाता है। जिसकी वजह से पेशाब और मासिक धर्म चालू हो जाता है। इसमें बहुत से बेकार और पेट को फुलाने वाले तत्व रहते हैं। ये उसको पकाने से भी अलग नहीं होते। इसलिये इसके अन्दर पेट फुलाने की तासीर हमेशा रहती है। इसके सिवाय चना कामेंद्रिय को ताकत देता है। वीर्य और दूध को पैदा करता है। इसलिये यूनानी के अन्दर चना बहुत कामशक्ति वर्धक माना जाता है। कामशक्ति को बढ़ाने के लिये तीन बातों की जरूरत होती है। एक तो यह कि उस वस्तु का खाने से तबियत खुश हो जाय, दूसरी यह कि पचने में हलकी हो, तीसरी बात यह कि वह वायु और फुलाव पैदा करे। ये तीनों बातें चने में मौजूद हैं।

हकीम बुकरात लिखते हैं कि चने में जो फुलाव है वह हजम होने के वक्त अलग हो जाता है। इसलिये यह स्तम्भन शक्ति भी पैदा करता है। फेफड़े के लिये भी यह अनाज लाभदायक है। है। शायद दूसरा कोई भी अनाज फेफड़े के लिये इतना बल दायक नहीं है।

चने के खाने से चेहरे का रंग निखरता है। इसके आटे को चेहरे पर लगाने से झाँई मिटती है। इसके लेप से हर तरह की गरम और सख्त सूजन बिखर जाती है। इसको पानी में पीस कर, शहद में मिलाकर लगाने से अण्डकोष की सूजन मिट जाती है।

काली जाति के चनों को पानी में पीस कर शहद में मिलाकर दाद और खुजली पर लगाने से लाभ होता है। इसके आटे से सिर को धोने से सिरकी खुजली और फुन्सियां मिट जाती हैं। इसके शीत निर्यास से दांतों और मसूड़ों को फायदा होता है।

इसके सेवन से कमर और फेफड़ों को शक्ति मिलती है। जिगर, तिल्ली, और गुर्दे का जमाव बिखर जाता है और शरीर मोटा होता है यह आवाज और खून को साफ करता है। पेशाब अधिक लाता है। भुने हुए चनों को गरमागरम खाने से खूनी बवासीर में लाभ होता है। काले चनों का काढ़ा पीने से गर्भ गिरने का डर रहता है।

सफेद जाति के चने से काली जाति के चने अधिक प्रभावशाली रहते हैं। फेफड़े की खुश्की से जिसकी आवाज बैठ जाय उसको काले चनों का हरीरा दूध में तैयार करके देने से बहुत लाभ होता है। इसके सेवन से फेफड़े के जख्म को भी फायदा होता है। अगर मुट्ठी भर चनों को रात

भर सिरके में भिगोकर भूखे पेट खालें और दुपहर तक भूखे पेट ही रहें तो पेट के तमाम कीड़े मरकर निकल जाते हैं। इसको जड़ को पीस कर तिल के तेल में मिलाकर लगाने से सूखी खुजली में लाभ होता है।

चना अधिक सेवन करने से वायु और फुलाव पैदा करता है। तथा मसाने के जख्म को नुकसान पहुँचाता है इसके दर्पनाशक जीरा और सौंफ है।

चने का खार—

चने का खार हाजमें की कमजोरी, अजीर्ण और कब्जियत को मिटाता है। गर्मी के दिनों में इसे थोड़े से पानी में मिलाकर पीने से ठंडाई हो जाती हैं और लू लगने का असर मिटजाता है। इसको ६ माशे की मात्रा में ६ माशे सिरके के साथ पीने से अजीर्ण मिटता है। थोड़ा सा चनेका खार पानी में मिलाकर बुखार वाले को पिलाने से उसकी प्यास और गर्मी की घबराहट मिट जाती है। चने के खार को लौंग और शक्कर के साथ पीने से हैजे में लाभ होता है। मधुमेह और पथरी के बीमारों को इसका सेवन नहीं करना चाहिये।

चने का तेल—

चनों की दाल को कुचलकर आतशी शीशी में भरकर उस शीशी का मुँह लोहे के बारीक तार के बने हुए काग से बन्दकर पाताल यंत्र के द्वारा तेल निकाला जात । है। यह तेल यूनानी हकीमों की राय से कामेंद्रिय का शक्ति को बहुत बढ़ाता हैं। कामेंद्रिय की ताकत बढ़ाने वाली माजूनों की शहद में चने के तेल को मिलादें तो उन माजूनों की शक्ति बढ़ जाती है। कलौंजी को इस तेल में उबालकर दाद पर लगाने से बहुत फायदा होता है। मधुमेह और पथरी के बीमारो को इसका सेवन नहीं करना चाहिये।

दक्षिण के अन्दर इसके ताजे वृक्ष को पानी में उबाल कर उस पानी को टब में भरकर ऐसी स्त्रियों को बिठाते है जिनको मासिक धर्म कष्ट से होता है।

यूरोप में इसके बीज मूत्रल और कृमिनाशक वस्तु की तौर पर काम में लिये जाते हैं। कुछ स्थानों पर इसका शीतनिर्यास मूत्र की पथरी को दूर करने के उपयोग में लिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका चार अग्निमाध, कब्जियत और सर्पदंश में उपयोगी है। है। इसमें आक्जेलिक एसिड, मेलिक और अन्य ऊरक्षार पाये जाते हैं।

उपयोग—

हिचकी—चने की भुस्सी को हुक्के की चिलम में भरकर पीने से हिचकी बन्द होती है।

जलोदर—३॥ तोले चनों को पाव भर पानी में उबालें। जब आधा पानी रह जाय तब उसको छान-कर पीने से जलोदर की बीमारी में लाभ होता है।

वीर्य का पतलापन—भुने हुए चने और बादाम की मींगी दोनों को समान भाग मिलाकर दोनों वक्त खाने से वीर्य गाढ़ा हो जाता है।

बदगांठ—बेसन में गूगल मिलाकर उसकी टिकिया बदगाठ पर रखकर ऊपर नीम के गरम पत्ते बांधने से बदगाठ बैठ जाती है।

श्वास नली के रोग—रात को सोते वक्त थोडे से भुने हुए चने खाकर ऊपर से गरम दूध पीने से श्वास की नली में इकठा हुआ कफ निकल जाता है।

चना जंगली

वर्णन—

इसका पेड़ चने के पेड़ से जरा छोटा और खाकी रंग का होता है। इसके दाने में कुछ कड़वापन होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

जंगली चना साधारण चने की अपेक्षा अधिक गरम और खुश्क होता है। इसका जोश किया हुआ पानी शरीर के अन्दर की गंदगी को फुलाकर निकाल देता है। इसका सेवन करने से जिगर तिल्ली और गुर्दे का जमाव (सुद्दे) बिखर जाता है। इसके लेप से कान के नीचे की सूजन मिट जाती है।

चम्पा

नाम—

संस्कृत—चंपक, कचना, नागपुष्पा, पीतपुष्पा, राजचंपक, उग्रगन्धा, वनमालिका। हिन्दी—चंपा, चम्प, चम्पक, चम्पका, सोनचम्पा। गुजराती—चम्पो, रायचम्पो, सोनचम्पा, केशरी-चम्पा। बम्बई—चंपा। काठियावाड—पीला चम्पो। मराठा—कवचम्पा, पिवलचम्पा, सोनचम्पा। बंगाल—चम्पक। तामिल—प्रमरियम। तेलगू—चम्पक। लेटिन—Michelia Champaca. (मिचेलिया चम्पक)।

वर्णन—

चम्पे के वृक्ष बहुत बड़े और सुन्दर होते हैं। इसकी शाखाएं खड़ी फैलती हुई और पास २ होती हैं। जिससे इसकी छाया सघन बनी हुई रहती है। इसके फूल अत्यन्त सुगन्धित और पीले रंग के होते हैं। ये प्रायः वैशाख के महिने में लगते हैं। इनकी लम्बाई २।१ इंच के करीब होती है। फूल के अन्दर बारीक २ केशर होती है। सम्राट जहांगीर ने इसके लिये लिखा है कि चम्पे का फूल निहायत खुशबूदार और खूबसूरत होता है। इसके पत्ते और शाखाएं खूब होती है। मोसिम के समय में एक ही वृक्ष सारे बगीचे को सुगंधित रखता है। इसके बीज छोटे और मटर के दाने के बराबर होते हैं। इसके

बीजों में से एक प्रकार का गाढ़ा तेल निकलता है। इसके फूलों में से रंग निकाला जाता है और इनमें से एक प्रकार का उड़न शील तेल भी प्राप्त होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसकी छाल कड़वी, कसैली और चरपरी, होती है। यह विष को नष्ट करती है। कृमियों को निकाल देती है। वीर्य वर्द्धक है। इसके सेवन से हृदय को बल मिलता है और मूत्र अधिक होता है। कफ, वात और पित्त के विकारों को यह दूर करती है। इसके फूल कड़वे, अग्निवर्द्धक, मूत्र निस्सारक, पित्त विकारों को मिटाने वाले तथा कोढ़, चर्मरोग और व्रण में लाभ दायक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके फूलों की खुशबू बहुत उत्तेजक होती है। इससे दिमाग़ की शक्ति बढ़ती है। हृदय को ताकत मिलती है। इसके फूल खाने से कफ निस्सारक प्रभाव बतलाते हैं चम्पे के फूलों के रस को कुनकुना करके कानों में टपकाने से कान का दर्द मिटता है। इसके वृक्ष को काट कर ३-४ हाथ तना बाकी रहने पर उस पर बहुतसा कपड़ा लपेट कर जलाने का तेल उस पर डालदें और उसमें आग लगा दे। जब तना जल जाय तब उसकी जड़ को खोदकर निकाल लें। इस जड़ को लगाने और खाने से निराश अवस्था के विष विकारों पर भी लाभ पहुँचता है।

इसकी छाल का लेप करने से गठिया के दर्द मे लाभ होता है। इसकी जड़ और फूल बकरी के दूध के साथ पीने से मसाने की पथरी निकल जाती है। इसकी जड़ को पानी में पीसकर पीने से नारू की बीमारी में लाभ होता है। अगर नारू अंदर भी टूट जाय, तब भी यह फ़ायदा पहुंचाती है। इस के फूलों को तिल के तेल में डाल कर दिन भर धूप में रखना चाहिये। उसके बाद उस तेल को छान लेना चाहिये। इस तेल की मालिश करने से कामेंद्रिय की शक्ति बढ़ती है और गठिया में लाभ होता है। चम्पे के फूल की कली को पानी में पीसकर मुँह पर मलने से मुँह की झाई बिलकुल मिट जाती है।

डॉक्टर मुईन शरीफ के मतानुसार इसके फूल उत्तेजक, आक्षेप निवारक, पौष्टिक, अग्नि-वर्धक और पेट का आफरा दूर करने वाले होते हैं। इसकी छाल में ज्वर नाशक शक्ति रहती है इसलिये भिन्न २ प्रकार के ज्वरों में इसका उपयोग करने से बड़ा चमत्कारिक असर होता है। इसके उपयोग में लाने का तरीका इस प्रकार है।

चम्पे की १॥ तोला छाल को लेकर १०० तोला पानी में औटाना चाहिये। जब ५० तोला पानी शेष रहजाय तब उसको उतार कर छान लेना चाहिये। ज्वर आने के पहले इसमें से ५ से लेकर ७ तोला तक पानी दो २ घण्टे के अन्तर से पीना चाहिये।

डॉक्टर नॉड करनी लिखते हैं कि चम्पे की जड़ की छाल की चाय बनाकर पीने से मासिक-धर्म साफ होता है। और दस्त भी लगते हैं। यह वस्तु गोया कम (Guaiacum) नामक विदेशी दवा की एक उत्तम प्रतिनिधि है। इसलिये संधिवात गठिया वगैरह जिन २ रोगों में गोया कम दिया जाता है। उन रोगों पर इसका भी उत्तम उपयोग हो सकता है। इसके पत्तों के रस में कृमियों को नष्ट करने

की शक्ति है। इन पत्तों को शहद के साथ मिला कर देने से उदरशूल नष्ट होता है। इसके कोमल पत्तों को पीस कर, उनको पानी में छानकर उस पानी को आंख में टपकाने से आंख की छाया दूर होती है। इसके बीजों का तेल निकाल कर उसकी पेट पर मालिश करने से पेट की वायु दूर होती है।

इसकी एक सफेद जाति होती है। जिसकी डालियों को तोड़ने से दूध निकलता है। इस चम्पे की फलियां सर्प विष के ऊपर एक महौषधि मानी जाती है। ऐसा कहा जाता है कि इनको पानी के साथ घिसकर पिलाने से सर्प-विष फौरन उतर जाता है। मगर ये फलियां बहुत ही कम मिलती है। इसलिये यह अगर कहीं मिल जाय तो उनको दूध में औटाकर रखने से बहुत दिन तक नहीं बिगड़ती है।

ज्वर नाशक गुण की तरह ही चम्पे में वीर्य वर्द्धक और कामोत्तेजक गुण भी बहुत रहता है। इसके २१ फूलों को लेकर खौलते हुए पानी में धोकर सिल पर बारीक पीस लेना चाहिये। फिर उनको २ सेर गाय के दूध में डालकर उसका खोवा बना लेना चाहिये। इसके बाद कौंच के बीज, बादाम, चिरोंजी, दाख, पिस्ता ये सब दो २ तोले और तमाल पत्र, छोटी पीपर, जावित्री, इलायची, मालती, गोखरू, रूमी मस्तगी और लौंग ये सब एक २ तोला लेकर सब चीजों को बारीक पीस कर उस खोए में मिला देना चाहिये। उसके बाद एक सेर भर शक्कर की चाशनी बनाकर उसमें उस खोवे को मिलाकर ५ तोला घी और एक तोला अफीम का चूर्ण मिलाकर खूब घोटना चाहिये। फिर नीचे उतार कर उसमें ३ माशे कस्तूरी, ८ रत्ती भीमसेनी कपूर, ६ माशे केशर और ५ तोले पंजाबी सालम का चूर्ण मिला कर तीन २ माशे की गोलियां बना लेना चाहिये।

जंगलनी जड़ी बूंटी नामक ग्रंथ के कर्ता लिखते हैं कि प्रतिदिन सबेरे शाम अपने बल के अनुसार इन गोलियों को खाने से और ऊपर गाय का धारोष्ण दूध पीने से बहुत तेजी के साथ मनुष्य की काम शक्ति में वृद्धि होती है। शरीर पुष्ट होता है और चाहे जितना परिश्रम करने पर भी थकावट मालूम नहीं होती।

सुश्रुत के मतानुसार इसके फूल और इसका फल अन्य औषधियों के साथ सर्प के विष में उपयोगी होता है। मगर वेस और महरकर के मतानुसार सर्प विष पर इसका कोइ प्रभाव नहीं होता है।

उपयोग—

प्रसूति रोग—इसके पत्तों को घी से चुपड़ कर उन पर जीरे का चूर्ण भुरभुराकर प्रसूता स्त्री के सिर पर बांधने से उन्माद और प्रलाप मिटता है।

मूत्र कृच्छ्र—इसके फूलों को पीसकर ठंडाई की तरह पिलाने से मूत्र वृद्धि होकर मूत्रकृच्छ्र और गुर्दे के रोग मिटते हैं।

फोड़ा—इसकी सूखी जड़ औ जड़ की छाल को दही में मिलाकर पीव युक्त फोड़े पर बांधने से वह फोड़ा बैठ जाता है या पक जाता है।

सन्धिवात—छोटे जोड़ों की सूजन पर इसके तेल की मालिश करने से और उपर से पत्ते बांधने से लाभ होता है।

नेत्ररोग—इसके कोमल पत्तों को जल में छानकर उस जल को आंख में टपकाने से आंख की ज्योति निर्मल होती है।

उदरशूल—इसके पत्तों के रस में शहद मिलाकर पीने से उदर शूल मिटता है।

ज्वर—इसकी छाल का क्वाथ बनाकर पिलाने से ज्वर छूटता है।

सूखी खांसी—इसकी छाल के चूर्ण को शहद के साथ चटाने से सूखी खांसी मिटती है।

अतिसार—इसकी छाल और अतीस के चूर्ण की फक्की देने से अतिसार में लाभ होता है।

पैर की बिवाइ—इसके बीज और फल का लेप करने से पैर की बिवाई मिटती है।

बायंठे—इसके फूलों का तेल बनाकर मालिश करने से बायठे मिटते हैं।

आमाशय की शूल—इसके फूलों का काढ़ा बनाकर पिलाने से आमाशय की शूल मिटती है।

कृमिरोग—इसके ताजा पत्तों के दो तोले रस में शहद मिलाकर पीने से पेट के कीड़े निकल जाते हैं।

पित्तोन्माद—इसके ताजा ४ फूलों को दो तोले शहद के साथ चटाने से पित्तोन्माद मिटता है।

झांई—इसके फूलों को नीबू के रस में पीस कर मलने से मुंह की झांईं मिटती है।

बनावटें—

ज्वरनाशक चूर्ण—चंपे की छाल, गिलोय, अतीस, ंट, चिरायता, कालमेघ, नागरमोथा, लिंडीपीपल, जौ खार और हीराकसी। इन सब चीजों को समान भाग लेकर, बारीक चूर्ण करके एक माशे से दो माशे तक की मात्रा में दिन में ३ बार पानी के साथ लेने से लीव्हर और तिल्ली की वृद्धि, पांडुरोग, जठराग्नि की कमजोरी, अरुचि और मलेरिया ज्वर दूर होते हैं। कालमेघ के न मिलने पर उसके बदले में हरा चिरायता लेना चाहिये।

कर्नल चोपरा के मतानुसार चम्पा ज्वर निवारक, ऋतुश्राव नियामक और बिच्छू के विष पर उपयोगी है। इसकी जड़ कडवी और शांतिदायक होता है। इसके फूल उत्तेजक, पेट के अफरे को दूर करनेवाले और विरेचक होते हैं। इनमें उड़नशील तेल रहता है।

मात्रा—इसकी छाल की मात्रा ५ रत्ती से लेकर १५ रत्ती तक और काढ़े की मात्रा ५ तोले से ७ तोले तक है।

पीला चम्पा

नाम—

हिन्दी—पीलाचम्पा। मराठी—पीला चम्पा। कनाड़ी—संपना। सिंहालीज—चलगामु।

तामील—कट्टु चम्बगम। लेटिन—Michelia nilagirica (माइचेलिया नीलगिरीका)

वर्णन—

यह वनस्पति नीलगिरी पहाड़ों पर ५००० फीट की ऊंचाई तक होती है। इसका तना सफेद रहता है। शाखाएँ सीधी तथा पत्ते चमकीले और सख्त रहते हैं। इसकी फलियां लम्बी और रेशमी तथा फूल सफेद और फीके रंग के होते हैं। इसके बीज कोष में लाल बीजे रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका छिलका ज्वर निवारक वस्तु की तौर पर काम में लिया जाता है।

कर्नल चौपरा के मतानुसार यह ज्वर निवारक होता है। इसमें उड़न शील तेल और कटुतत्व रहते हैं।

चम्पा सफेद

नाम—

संस्कृत—श्वेतचम्पक। हिन्दी—सफेदचम्पा, खुरचम्पा। गुजराती—धोलो चापो। मराठी—पांढ़राचांपा।

वर्णन—

सफेद चम्पे को हिन्दी में खुरचम्पा भी कहते हैं। यह वृक्ष प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होता है। इस वृक्ष के पत्ते लम्बे और फूल सफेद होते हैं। यह वृक्ष काफी ऊँचा होता है। इसका रस बहुत दाहक होता है। शरीर के किसी भाग पर लगते ही जलन होने लगती है। चम्पे के किसी किसी पुराने वृक्ष पर फलियां भी लगती हैं ये फलियां सर्पदंश पर महौषधि मानी जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

सफेद चम्पा कड़वा, सारक, तीखा, उष्ण वीर्य और कुष्ट, कण्डू, व्रण, शूल, कफ, वायु और आफरे को नष्ट करने वाला होता है। वादी की वजह से अगर शरीर के किसी अंग में सुन्नता पैदा हो जाय तो इसके पिंड का रस या दूध लगाने से और इसके पत्तों को गरम करके बांधने से लाभ होता है। सर्प के विष पर इसकी फली को औटाकर पिलाने से जहर उतर जाता है। अगर गीली फली न मिले तो दूध में उबाली हुई पुरानी फली भी काम दे सकती है। मलेरिया ज्वर पर इसकी फली को डण्ठल समेत पान में रख कर ज्वर आने से पहले एक २ घण्टे के अन्तर से तीन मात्रा लेने पर बुखार रुक जाता है।

चंपाबहा

नाम—

संथाली—चम्पाबहा। लेटिन—Ochna Pumila (ओछना पूमिला)

वर्णन—

यह वनस्पति हिमालय की तलहटी में कुमाऊ से सिकिम तक तथा बिहार और छोटा नागपुर में पैदा होती है। यह एक प्रकार का झाड़ीनुमा पौधा है। इसके फल लम्बे और हरे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

बंगाल की संथाल जाति के लोग इस वनस्पति को सर्प विष नाशक मानते हैं और सांप के काटने पर इसका उपयोग करते हैं। मासिक धर्म की शिकायत तथा क्षय और दर्द के रोग में भी वे लोग इसका उपयोग करते है।

—०—

चम्बा

नाम—

संस्कृत—बहुगन्धा, बालपुष्पो, बाल पुष्पिका, गंधिका, युवतिका। हिन्दी—चम्बा। काश्मीर—चम्बा, किरी। पंजाब—बनसू, देसी, दमनी, जेह, शिग। लेटिन—Gasminum officinale (जेसमिनम आफिसीनेल)

वर्णन—

यह एक झाड़ीनुमा पराश्रयी बेल होती है। इसकी पत्तियां ३ से लगाकर सात २ के गुच्छों में लगती है। इसका बीज कोष लम्बा होता है। इसका फूल खुशबूदार होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से इसका फूल कड़वा, कसैला, मीठा, सुगन्धित, शीतल और कृमि नाशक होता है। यह हृदय रोग, मधुमेह, पित्त, जलन, प्यास, चर्म रोग, मुह, दांत तथा आख की बीमारी में उपयोगी है। यह कफ और वात को पैदा करता है।

हानिगबरगर के मतानुसार इसकी जड़ दाद पर उपयोगी पाई गई है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति स्नायुमण्डल को शान्ति देने वाली होती है। इसका फल निद्रा जनक है। इसमें जेसमीन नामक उपक्षार और उड़नशील तेल पाया जाता है।

—

चम्बारा

नाम—

मराठी—चम्बारा। कनाड़ी—इंजु, इति। तामील—पिनारी, कोड़ गनरी। तेलगू—नगुद। लेटिन—Premna Tomentosa (प्रेम्ना टोमेंटोसा)

वर्णन—

यह वनस्पति मध्य प्रदेश, दक्षिण, कर्नाटक और ट्रावनकोर के जंगलों में पैदा होती है।

इसकी छाल पीली और तन्तुदार तथा फल लम्बगोल और गुठलीदार होता है। एक फल में प्रायः ४ गुठलियाँ निकलती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ से एक प्रकार का सुगन्धित तेल प्राप्त किया जाता है, जो उदर रोगों में लाभ दायक होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह जलोदर के रोग में उपयोग में ली जाती है।

चमरोर

नाम—

पंजाब—चमरोर। बलूचिस्तान—कनेरो, मानक। मराठी—दात्रणी, कुपता। मेरवाड़ा—लम्बोनिया। सिंध—चम्वाल। लेटिन—Ehretia aspera इरेशिया, एसपेरो।

वर्णन—

यह वनस्पति पंजाब, सिंध, बलूचिस्तान, राजपूताना, डेक्कन, कर्नाटक, ब्रह्मा, अफगानिस्तान और आबीसीनिया में होती है। यह एक झाड़ी है। इसके पत्ते लम्बगोल रहते हैं। इसके फूल सफेद रहते हैं। इसका फल दबा हुआ चपटा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी ताजा जड़ औषधि के उपयोग में ली जाती है। यह कुप्रसङ्गज व्याधियों में उपयोगी होती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ कुप्रसंगज व्याधियों में उपयोगी है।

—०—

चमेली

नाम—

संस्कृत—चमेली, राजपुत्री, प्रियम्वदा, मालती, सुवर्ण जातिका, तेल मालिनी, वर्षपुष्पा। हिन्दी—चमेली, चम्बेली, चमेली। बंगाल—जाति। गुजराती—चमेली। बम्बई—चमेली। तामील—कोड़ि मलिगई। तेलगू—जेजी। उर्दू—चमेली। फारसी—ह्यसिम। अरबी—यसमयन। लेटिन—Jasminum Grandifloram. (जेसमिनम ग्रेंडीफ्लोरम)।

वर्णन—

चमेली सारे भारतवर्ष में पैदा होती है। और इसके फूल को सब लोग जानते हैं। इसलिये इसके विशेष वर्णन की जरूरत नहीं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से चमेली का फूल कसैला, कड़वा और तीखा होता है। यह गरम, वमन कारक, विष नाशक और घाव पूरक है। इसके पत्ते मुख शोथ, मुखव्रत, दातों की पीड़ा, कान का दर्द, रक्त विकार, कोढ़, व्रण और पित्त में लाभ पहुँचाते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से चमेली दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क होती है। इसकी सफेद जाति पीली जाति से और पीली जाति,नीली जाति से अधिक गरम होती है। इसके पत्तों को पानी में जोश देकर पीने से पेट के कीड़े निकल जाते हैं, मासिक धर्म साफ होता है। इसके पत्तों का काढ़ा बनाकर उससे कुल्ले करने से मुंह के छाले और मसूड़ों के रोग को फायदा होता है। इसके फूल को पीस कर कामेन्द्रिय पर लेप करने से स्तम्भन की ताकत बढ़ती है। इसके फूलों का चेहरे पर लेप करने से मुंह की झाईं नष्ट होती है और सौंदर्य निखर जाता है। इसके फूलों का रस १ तोले से ३ तोले तक तक की मात्रा में ३ दिन तक पीने से गर्भाशय से अथवा मुंह के रास्ते से गिरता हुआ खून बन्द हो जाता है। चमेली के फूल की पखड़ियों को थोड़ी सी मिश्री के साथ खरल करके आख की फूली पर लगाने से कुछ दिनों में वह फूली कट जाती है।

इसके अधिक सेवन से गरम प्रकृति वालों में सिरदर्द पैदा होना होता है। इसके दर्प का नाश करने के लिये गुलाब का तेल और कपूर का प्रयोग करना चाहिये।

मात्रा—इसके फूल की मात्रा १० मांशे तक और इसके रस की मात्रा तीन तोले तक है।

इसके पत्तों के ताजा रस को पैरों की फटी हुई बिवाई पर लगाने से बिवाई अच्छी हो जाती है। चर्म रोग, तथा रक्त विकार के रोगों पर इसके फूलों का लेप करने से बड़ा लाभ होता है। मुंह के छालों और दांतों के दर्द पर चमेली के पत्ते चबाने से फायदा पहुँचता है। कान से अगर पीब बहता हो तो इसके पत्तों को तिल्ली के तेल में उबाल कर उस तेल को कान में डालने से पीब बहना बन्द हो जाता है। इसके फूलों को कुचल कर नाभि और कमर पर बाधने से पेशाब साफ होता है, काम वासना बढ़ती है और मासिक धर्म का कष्ट दूर होता है। विस्फोटक रोग पर इसके फूल अथवा पत्तों का लेप करने से शान्ति मिलती है।

चमेली और उपदंश का रोग—

गर्मी के रोग पर भी यह औषधि बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई है। इसके कोमल पत्तों का दो तोला रस निकालकर उसमें एक रत्ती राल का चूर्ण मिलाकर प्रतिदिन सवेरे पीने से १५-२० दिन में गर्मी का रोग नष्ट हो जाता है। लेकिन पथ्य में सिर्फ गेहूँ की रोटी, दूध, भात और घी-शक्कर का ही प्रयोग करना चाहिये। अगर नियमित पथ्य के साथ इस औषधि का सेवन किया जाय तो मूत्रेंद्रिय पर पड़ी हुई गर्मी की चान्दी, सन्धियों का जकड़ना, शरीर में गर्मी का फूट निकलना इत्यादि तमाम विकार बहुत जल्दी मिट जाते हैं। रस कपूर के समान जहरीली और पारा परेशा, मंजिआदि कराग, फिरंगोर

गुग्गल इत्यादि औषधियों के सेवन से जो लाभ नहीं होता है वह कभी २ इस औषधि के सेवन से देखा जाता है।

रासायनिक विश्लेषण—

इसके पत्तों में जेस्मिनाइन नामक एक प्रकार का उपक्षार पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसके पत्तों में एक प्रकार की रेजिन भी पाई जाती है। इसके तेल में बेंझिल एसीटेट, मेथिल एन्थर निलेट और ऑइलिनेलूल नामक पदार्थ पाये जाते हैं।

चरक और सुश्रुत के मतानुसार चमेली का फूल सांप और बिच्छू के विष पर लाभदायक है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्प और बिच्छू के विष पर निरुपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह कृमि नाशक, मूत्रल और ऋतुस्रावनियामक है। इसमें उपक्षार और सेलिसाइलिक एसिड रहते हैं। बिच्छू के विष पर भी यह उपयोगी है।

उपयोग—

मासिक धर्म की रुकावट—चमेली के पचांग का क्वाथ पिलाने से मासिक धर्म की रुकावट मिटती है। और लीवर तथा तिल्ली की क्रिया सुधरती है।

दन्त रोग—इसके पत्तों को पानी में औटा कर उस पानी से कुल्ले करने से दांत और डाढ़ का दर्द मिटता है।

सिरदर्द—इसके ३ फूलों को गुल रोगन के साथ पीसकर नाक में टपकाने से सिर दर्द मिटता है।

नपुंसकता और ध्वज भंग—इसके पत्तों के रस से तेल को सिद्ध करके उस तेल की मालिश करने से ध्वज भंग और नपुंसकता मिटती है।

(२) इसके पत्तों के तेल में राई को पीसकर मूत्रेंद्रिय, पेडू और जांघों पर लेप करने से नपुंसकता मिटती है।

उपदंश—इसके पत्तों के क्वाथ से मूत्रेन्द्रिय के घाव धोने से उपदंश में लाभ होता है।

(२) इसके कोमल पत्तों के २ तोले रस को २ तोले गाय का घी और कुछ राल मिलाकर और पथ्य में दूध और गेंहू का पथ्य खाने से गर्मी में बहुत लाभ होता है।

बनावटें—

चर्म रोग नाशक तेल—चमेली के पत्ते, नीम के पत्ते, पटोल के पत्ते, करंज के पत्ते, मोम, मुलहठी, कूट, हलदी, दारूहलदी, कुटकी, मजीठ, पद्माक, लोध, हरड, नील कमल, तूतिया, अनन्त मूल, और करंज के बीज, इन सब औषधियों को समान भाग लेकर पानी के साथ चटनी की तरह पीसकर, गोला बनाकर, कलईदार कढ़ाही में रखना चाहिए और गोले का जितना वजन हो उतना ही काली तिल्ली का तेल और उससे चौगुना चमेली के पत्तों का स्वरस उस कढ़ाही में डालकर हलकी आंच से पकाना चाहिए जब सब रस जल जाय, तब उतार कर तेल को छान लेना चाहिये।

यह तैल चर्म रोगों के लिए एक चमत्कारिक इलाज है। इसको लगाने से सब प्रकार के जहरी घाव, खाज, खुजली, अग्नि दाह, मर्म स्थान के घाव, नहीं भरने वाले घाव इत्यादि रोग बहुत जल्दी आराम होते हैं। (जंगलनी जड़ी बूटी)

चमेली (२)

नाम—

हिन्दी—बेला, चमेली, नवमल्लिका। बंगाल—बरकुडा, नवमल्लिका। बम्बई—कुसर। कनाडी—नवमल्लिका। मराठी—कुसर,कुसरा। मुडारी—कौलिवा,डान्दिवा। नसीराबाद—गुलंदगर। संस्कृत—नव मल्लिका। तामील—नागमल्लि। तेलगू—नागमल्लि। उड़िया—नियाली। लेटिन—Jasminum Arborescens (जेसमीनम आरबोरेसन्स)

वर्णन—

यह एक जमीन पर फैलने वाली झाड़ीनुमा बनस्पति है। इसके पुष्प सफेद और सुगन्धित होते हैं। यह उत्तरी गंगा के मैदान, बंगाल तथा मध्य और दक्षिणी भारतवर्ष में होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों का रस पीपल, लसन और अन्य उत्तेजक पदार्थों के साथ खांसी में दिया जाता है। एक खुराक में ७ पत्ते काफी हैं। छोटे बच्चों के लिये आधे पत्ते का रस चार अगस्त के पत्तों के साथ में दो ग्रेन सुहागा और दो ग्रेन काली मिर्च के साथ शहद में मिलाकर देते हैं।

इसके पत्ते सकोचक और पौष्टिक हैं। ये पौष्टिक और अग्नि प्रवर्द्धक वस्तु के रूप में काम में लिये जाते हैं।

संथाल लोग इसे मासिक धर्म की शिकायतों को दूर करने के काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह कफ निस्सारक है। इसके पत्ते कड़वे, संकोचक, पौष्टिक और अग्नि दीपक हैं।

चन्द्रकांत मणि

नाम—

संस्कृत—चन्द्रकान्त, सोममणि, शीताश्मा। हिन्दी—चन्द्रकान्त। मराठी—चन्द्रकान्त-मणि। बंगाल—चन्द्रकान्त। तेलगू—चन्द्रकातं।

वर्णन—

आयुर्वेद में लिखा है कि चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से जिसमें अमृत टपकता है, उसीको चन्द्रकान्त मणि कहते हैं।

यूनानी ग्रंथों में लिखा है कि अरब के शहरों में एक प्रकार के पत्थर पर चांदनी रात में उसका जौहर निकल कर इकट्ठा हो जाता है। इसीको चन्द्रकांत कहते हैं। जितनी चांदनी जोरदार होती है उतनी ही यह चीज सफेद होती जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से चन्द्रकांत मणि शीतल, स्निग्ध, स्वच्छ तथा रुधिर विकार, दाह, ग्रहबाधा और दरिद्रता को नाश करती है। इसका स्वाद मीठा और कसैला होता है। यह शीतल और दस्तावर होती है। फोड़े, फुन्सी, जहर के उपद्रव और भूत प्रेत की बाधा को यह दूर करती है।

यूनानी मत से यह औषधि मिरगी के लिये बहुत लाभ दायक है। इसे गले में बांधने से तथा पानी में घिस कर नाक में टपकाने से अथवा मटर के दाने की मात्रा में खिलाने से मिरगी नष्ट हो जाती है। माली खोलिया, पागलपन और दिल की धड़कन में भी यह औषधि फायदा पहुँचाती है। इसके खाने से खून का बहना बन्द हो जाता है। इसको बच्चों की गर्दन में बांध देने से उनकी भूत बाधा से हिफाजत हो जाती है।

—०—

चन्द्रस

नाम—

संस्कृत—अश्वकर्ण। बंगाल—कुन्दो। हिन्दी—चन्दरस। गुजराती—चन्द्रस। मराठी—सरलाडीक चन्दरस, सफेद डामर। पंजाब—सन्द्रुस। अंग्रेजी—Gomcopal Sandarack लेटिन—Vateria Indica (वेटेरिया इण्डिका)।

वर्णन—

चन्द्रस एक प्रकार के साल के वृक्ष से निकलता है। यह वृक्ष बहुत बड़ा और भव्य होता है। यह मलाबार और हिन्दुस्तान के दक्षिणी हिस्से में पैदा होता है। इसके बीजों के तेल और खली में से राल निकलती है। इस राल को चन्दरस कहते हैं। इसका तेल और चन्दरस औषधि के उपयोग में तथा वारनिश करने के काम में लिया जाता है। इसके बीजों का तेल मोम बत्तियां बनाने के काम में भी आता है। चन्द्रस को आग पर डालने से एक प्रकार की गन्ध आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से चन्दरस मधुर, कड़वा, स्निग्ध, गरम, कसैला, दस्तावर, पित्त जनक तथा वायु, मस्तक रोग, नेत्ररोग, स्वरभंग, कफ, राक्षस बाधा, पसीना, दुर्गन्धि, जूँ, खुजली और घाव को दूर करने वाला होता है।

इसके गुण यूरोपियन रेजिन के समान ही होते हैं। यह व्रण शोधक और व्रण रोपक होता है।

इसका तेल वेदना नाशक होता है। इसका मलहम सब प्रकार के घावों पर लाभ दायक होता है। कोई आमवात पर इसके तेल की मालिश की जाती है। इसका मरहम बनाने का तरीका इस प्रकार होता है। चन्दरस ५ तोला, राल ५ तोला, मोम २ तोला और तिल का तेल ८ तोला। इन सब चीजों को गरम करके खूब मिला लेना चाहिये।

यूनानी मत—यह दूसरे दर्जे में गरम और पहले दर्जे में खुश्क है। यह मेदे और आंतों में जमे हुए कफ को दूर करता है। पेट के कृमियों को नष्ट करता है। इसका मंजन मसूढ़ों और दांतों को ताकत देता है। इसकी धूनी देने से बवासीर में लाभ होता है। इसको आंख में लगाने से आंख की ज्योति बढ़ती है। दिल की धड़कन, माली खोलिया, दमा और तिल्ली के रोगों में भी यह मुफीद है। इसको कान में डालने से कान का दर्द दूर होता है। इसको २ माशे और ५ रत्ती की मात्रा में शिकंजबीन के साथ मिलाकर ३।४ हफ्ते तक चाटने से शरीर का बेडौल मोटापन मिटकर शरीर पतला हो जाता है और शक्ति बढ़ती है। हमेशा कुश्ती लड़ने वाले पहलवान इसको कस्तूरी और अम्बर के साथ लेते हैं। जिससे कुश्ती के वक्त उनको हांफनी नहीं चढ़ती है और न पसीना होता है। फोड़ों पर इसे पीसकर भुर भुराने से फोड़े सूख कर अच्छे हो जाते हैं। इसके बीजों के तेल में सफेदा मिलाकर सिर की गंज पर लगाने से बड़ा फायदा होता है। इसको शहद के साथ मिलाकर आंख में लगाने से आंख का जाला कट जाता है। दांत के दर्द के लिये भी यह एक बेजोड़ दवा है। इसको शिकंजबीन या सिरके के साथ गर्भवती स्त्री को पिलाने से पेट में से बच्चा निकल जाता है। इसके सेवन से पुराने दस्त भी बन्द होते हैं।

प्रतिनिधि—इसका प्रतिनिधि कहरवा है। इसकी मात्रा ३ माशे तक है।

उपयोग—

अतिसार—चन्दरस की फक्की देने से अतिसार मिटता है।

फोड़े फुन्सी—मोम, राल और तिल के तेल के साथ चन्दरस का मलहम बनाकर फोड़े फुन्सी पर लगाने से फोड़े फुन्सी मिटते हैं।

गठिया—इसके तेल का मर्दन करने से पुरानी गठिया मिटती है।

नजला—चन्दरस और शक्कर को मिलाकर उनको आग पर डाल कर उसका धुंआ लेने से जुकाम और नजला मिटता है।

दन्तरोग—चन्दरस का मंजन करने से दांतों से खून का निकलना बन्द हो जाता है।

कर्ण रोग—इसको राल के चूर्ण में कपास के फूल का रस और शहद मिलाकर कान में डालने से कान का रोग मिटता है।

चंचल कुरा

नाम—

यूनानी—चंचल कुरा।

वर्णन—

यह एक छोटी जाति की वनस्पति है जो खेतों और बागों में पैदा होती है। इसके पौधे की लम्बाई आधे गज के करीब होती है। इसकी शाखाएं पतली होती हैं। पत्ते लम्बाई में १ इंच के करीब होते हैं। इनकी किनारों पर हरी लकीरें होती हैं। इसका फूल नीले रंग का होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों को पका कर खाने से कफ, पित्त और विष विकार में लाभ होता है। मगर यह बवासीर, आमाशय और आंखों में नुकसान पहुँचाती है।

चचिंडा

नाम—

संस्कृत—चचिंड, चिचंड, श्वेतराज, अहिफला। हिन्दी—चिचेंडा। मारवाड़ी—चिचेंड़ा। गुजराती—पंडोला। मराठी—पडोल। बंगाली—चिचिण्डा। लेटिन—Trichosanthes Anguina (ट्रिकोसेन्थस एग्युइना)

वर्णन—

यह एक बेल है। जो प्रायः सब दूर बोई जाती है। इसके पत्ते तुरई के पत्तों की तरह, फटे हुए, रएदार, और खुरदरे होते हैं। इसके फूल पीले ५ पंखड़ियों वाले होते हैं। इन फूलों के सिरों पर बारीके तंतुओं के गुच्छे रहते हैं। आकार में ये जुही के फूलों के बराबर होते हैं। इसके फल एक से तीन फुट तक लम्बे, सर्प के आकार के, चमकदार और नारंगी रंग के होते हैं। जब तक ये कच्चे रहते हैं तब इन पर लबाई में सफेद धारियां पड़ी रहती हैं। इसके बीज करेले के बीजों की तरह होतें हैं। यह कड़वी और मीठी दो प्रकार की होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से इसकी कड़वी जाति दूसरे दर्जे में गर्म और खुश्क और मीठी जाति दूसरे दर्जे में सर्द और तर है। इसके फल वातपित्त को नष्ट करते हैं तथा सूजन में बहुत लाभ पहुँचाते हैं। मीठा चचिंडा शरीर की खुश्की और ग्लानि को दूर करता है। भूख को बढ़ाता है। पित्त और कफ को दूर करता है, कब्जियत को मिटाता है। मगर यह वनस्पति मस्तिष्क पर बहुत खराब असर डालती है। अगर इसे कुछ दिनों तक लगातार खाई जाय तो दिमाग़ की ताक़त को कमजोर करके स्मरण शक्ति

को नष्ट कर देती है। रक्त विकार पर यह वनस्पति लाभ दायक है। फोड़े, फुन्सी, गर्मी की वजह से पैदा हुई खून खराबी और दूसरे चर्म रोगों में इसके सेवन से लाभ होता है।

कड़वा चचिंडा कफ और पित्त को दस्त की राह से निकाल देता है। खराब खून को अच्छा करता है और पेट के कृमियों को नष्ट कर देता है।

यह औषधि सर्द प्रकृति वाले के आमाशय को नुकसान पहुँचाती है। पेट में फुलाव पैदा करती है और मस्तिष्क तथा कामेन्द्रिय की शक्ति को कमजोर करती है।

चपोटा

नाम—

यूनानी—चपोटा।

वर्णन—

यह छोटी जाति की वनस्पति है, इसका पौधा गोखरू के पौधे की तरह जमीन पर बिछा हुआ रहता है। इसके पत्ते गोल, छोटे और नक्शीदार होते हैं। इसके फूल गुच्छों में लगते हैं। हरएक फल में बिनोले की तरह ४ बीज होते हैं। यह स्वाद में तेज और मीठा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसके सेवन से शरीर के अन्दर संचित कफ जुलाब के रास्ते निकल जाता है। इसके पीने और लगाने से फोड़े फुन्सी को फायदा होता है। यह वमन कारक और पित्त वर्द्धक है।

मात्रा—इसके पत्तों के रस की मात्रा १० तोले तक है।

हानिकारक—यह गरम प्रकृति वालों के लिये हानि कारक है।

चव्य

नाम—

संस्कृत—चव्यम्, चविका, चवकम्, कोलवल्लि, कुटका, गन्धनाकुलि। हिन्दी—चव्य, चव। गुजराती—चवक। बंगाल—चई, चइ गाच्छ। मराठी—चवक। तेलगू—चेई कम्। लेटिन—Piper Chaba (पीपर चबा)

वर्णन—

यह एक लता होती है जो हिन्दुस्थान के कई भागों में बोई जाती है। इसके फल और बेल के टुकड़े औषधि के काम में आते हैं। इसके फल बाजार में सिंगापुरी पीपल और गज पीपल के नाम से

फिसते हैं। इसका फल १॥ इंच लम्बा और पाव इञ्च मोटा होता है। इसको खुशबू मनोहर और इसका स्वाद चरपरा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से चव्य चरपरी, गरम, रुचि कारक, अग्नि प्रदीपक, हलकी तथा कृमि, श्वास, खासी, वात,कफ, ज्वर, बवासीर और शूल को नष्ट करने वाली होती है। इसके गुण पीपला मूल के ही समान होते हैं। इसको जड़ विष नाशक तथा क्षय, खासी और दमे में लाभ-दायक है। बवासीर इत्यादि गुदा के रोगों में यह बहुत फायदा पहुँचाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका फल सुगन्धित, उत्तेजक और पेट के अफरे को दूर करने वाला होता है॥ इसे खांसी और जुकाम में उपयोग में लेते हैं।

इसका फल उत्तेजक है। इसके फूलों के प्रयोग से श्वास, खांसी और क्षय रोग में लाभ होता होता है। इसकी लकड़ी और जड़ रंगने के काम में आती है।

—०—

चंवला

नाम—

संस्कृत—राजमाष। हिन्दी—चंवला, लोबिया। बंगाल—बर्बटी। गुजराती—चोला, चोल। मराठी—चंवल्या। पंजाब—रवन। तेलगू—अलसन्दुरु, इडपेलु। अरबी—फिरिका। लेटिन–Vigna Catiang (विग्नना केटिएंग)

वर्णन—

यह एक प्रकार की दाल की जाति का अनाज है। इसकी बेल उड़द की बेल की तरह होती है। इसके ६ इञ्च से लेकर १ फुट तक लम्बी फलियां लगती हैं। इन फलियों की तरकारी सारे हिन्दु-स्थान में बनाई जाती है। इसके बीजों का रंग सफेद और मुंह पर काला होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से चंवला भारी, स्वादिष्ट, कसैला, तृप्ति कारक, सारक, रूखा, वात कारक,रुचिकारक,स्तनों में दूध बढ़ाने वाला और बल कारक है। यह सफेद, लाल और काले के भेद से तीन प्रकार का होता हैं।

—

चाइना मुलक

नाम—

मलयालम—चाइनामुलक, कप्पलमुलकु। कनाड़ी—गन्धमेनसु, मलपलमुजि, मरमेनसा। तामील—कट्टकरुव। लेटिन—Pimenta Acris (पाइमेण्टा एक्रिस)

वर्णन—

यह वनस्पति वेस्ट इण्डीज में होती है। यह एक प्रकार का छोटा वृक्ष होता है। इसका छिलका तहदार रहता है। इसके पत्ते ऊपर की तरफ चमकीले और बहुत सुगन्धित होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका पीसा हुआ फल मलरोधक, अग्निमांद्य और अतिसार में उपयोगी है।

चाकसू

नाम—

संस्कृत—अरण्य कुलीथिका, चक्षुष्या, चिपिटा, कुलानी, कुलभाषा, कुम्भकर्णी, वन्यकुली-थिका। हिन्दी—चाकसू, चाकूज, बनर। गुजराती—त्रिमेड़, चमेड़, चिनोल। मराठी—कंकुटी, चिनोल। तेलगू—चनुपाल बिङ्ग। तामील—इदिक्कोल, कदु कानम्। फारसी—चश्मीजाक, चेश्मक। लेटिन—Cassia Absus (केसिया एबसस)

वर्णन—

चाकसू का पौधा १॥ से २॥ फीट तक ऊंचा होता है। यह एक वर्ष जीवी वनस्पति है। यह वनस्पति बरसात में बहुत पैदा होती है और साल भर तक जीवित रहती है। इसके पत्तों के डण्ठल लम्बे होते हैं। फूल फीके, पीले रंग के होते हैं। इसकी फलियां १ से १½ इंच तक लम्बी होती हैं। हर एक फली में ५ से ६ तक बीज होते हैं। ये बीज चपटे, चिकने, बहुत चमकीले, काले और कड़वे स्वाद के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसके पत्ते गरम, कड़वे, चरपरे, आंतों के लिये संकोचक, वात कफ को दूर करने वाले और अर्बुद, खांसी, नाक के रोग, कुक्कुर खांसी (हूपिंग कफ), और दमे को दूर करने वाले होते हैं। ये पित्त निस्सारक और खून बढ़ाने वाले हैं। इसके बीज शीतल, कड़वे ज्वर नाशक और आंतों को सिकोड़ने वाले होते हैं। ये घाव को भरते हैं और ब्रोङ्काइटीज (फुफ्फुस-प्रदाह), बवासीर, हूपिंग कफ तथा नेत्र रोगों में बहुत लाभदायक है।

नेत्र रोगों के लिये इस औषधि की बहुत तारीफ है। इसके पीसे हुए बीजों का आधी रत्ती चूर्ण आंखों में आंजने से नेत्र रोगों में बहुत लाभ होता है। कच्छ के अन्दर यह नेत्र रोगों के लिये एक घरेलू औषधि है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह कब्जियत पैदा करता है। सूजन को बिखेरता है। नेत्र रोगों के लिये यह एक बहुत प्रभावशाली औषधि है। इसको आंजने से आंखों की ज्योति बहुत बढ़ती है। आंख का दुखना, आंख से पानी का गिरना, आंख का

जाला इत्यादि रोगों में यह बहुत लाभ दायक है। चाकसू को साफ़ करके केशर, ममीरा और मिश्री के साथ पीस कर आंख में लगाने से आंखें बहुत साफ़ हो जाती है। इसका लेप आंखों की बीमारी के लिये मुफीद है।

मूत्रेंद्रिय के घाव तथा शरीर के दूसरे जख्मों पर इसके लेप से बहुत लाभ होता है। पेशाब और मासिक धर्म को यह साफ़ करता है। दमे के रोग में भी यह बहुत लाभदायक है। चाकसू और रसोत को समान भाग लेकर गुल दाउदी के शीतनिर्यास में पीस कर झड़बेर के समान गोलियां बना लेना चाहिये। इन गोलियों में से एक एक गोली सवेरे शाम खाने से बहुत लाभ होता है। इसके बीजों का चूर्ण उत्तेजक और पुरानी कब्जियत को दूर करने वाला होता है। इसके लेप से दाद में और गर्मी के घावों में भी लाभ होता है।

मात्रा—इसकी मात्रा २ माशे को है।

हानि कारक—यह गरम प्रकृति वालों के लिये हानि कारक है। इसका दर्प नाशक पदार्थ हरा धनिया है।

चांगेरी

नाम—

संस्कृत—चांगेरी, क्षुद्राम्ला, चुक्रामूल, दंतशठा, अम्बष्ठा। हिन्दी—चांगेरी, चूकातिपाती, चलमोरी, अमरूल। बंगाल—अमरूल, चलमोरी, चुक त्रिपाटी, उमल वेत। मराठी—अम्बुटी, भुईसरपटी। पंजाब—सर्चि, खटकल। बंबई—अम्बुटी। गुजराती—आंबोटी। तामील—पालिया किरि, पुलियारी। तेलगू—पुलिचिंत्रा, अम्बोटिकुरा। लेटिन—Oxalis Corniculata (आक्झेलिस कार्निक्यूलेटा)

वर्णन—

यह वनस्पति भारत वर्ष के सभी उष्ण भागों में पैदा होती है। यह एक बहुत छोटी जमीन पर फैलने वाली लता होती है। इसके पत्ते जुड़े हुए और एक २ डण्ठल पर तीन २ लगते हैं। ये रुएँदार होते हैं। इसके फूल पीले, फली १ इंच से १॥ इञ्च तक लम्बी और बीज लम्ब गोल तथा बादामी रंग के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से चांगेरी शीतल, रोचक, अग्नि वर्द्धक, हृदय को बल देने वाली, पित्त शामक, दाह नाशक, रक्त संग्राहक और सूजन को नष्ट करने वाली होती है। इसके स्वरस को लेने से शरीर की बारीक धमनियों का संकोचन होकर रक्त स्राव मिटता है। संकोचक होने की वजह से यह अतिसार और पेचिश में भी लाभ पहुंचाती है। यह चर्म रोगों को नष्ट करने वाली और चौथिया ज्वर में लाभदायक है।

अग्निमांद्य रोग में इस वनस्पति के ताजे पत्तों की कढ़ी बनाकर देने से पाचन शक्ति दुरस्त होकर भूख बढ़ती है। इन पत्तों को पानी के साथ पीस कर उनका पुल्टिस बनाकर सूजन पर बांधने से सूजन की दाह मिट जाती है और सूजन उतर जाती है। छोटे बच्चों के फोड़े फुन्सी पर भी इसके पत्ते बड़े लाभदायक हैं।

इसके रस में प्याज का रस मिला कर उसको सिर पर लेप करने से पित्त का सिरदर्द दूर होता है।

इसके छोटे पत्तों का शीत निर्यास ज्वर में उपशामक वस्तु की तौर पर दिया जाता है।

दक्षिणी आफ्रिका के अन्दर कुछ जातियां इस वनस्पति को सर्प दंश पर उपयोगी मानती हैं।

कोमान के मतानुसार पुरानी पेचिश में इसके पत्तों को मठ्ठे या दूध के साथ दिन में २-३ बार उबाल कर देने से बहुत लाभ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि शीतल, ज्वरोपशामक, अग्निप्रवर्द्धक और शीतादि रोग प्रतिशोधक है। इसमें एसिड पोटेशन आक्जेलेट रहता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से चाङ्गेरी का फल भूख पैदा करता है, जठराग्नि को बढ़ाता है। यह संग्रहणी, कोढ़ बवासीर और रक्त विकार में लाभदायक है।

उपयोग—

गुदा की कांच निकलना—चाङ्गेरी के रस में घी को सिद्ध करके गुदा पर लेप करने से कांच का निकलना बन्द हो जाता है।

धतूरे का नशा—इसके ताजा पत्तों का रस पिलाने से धतूरे का नशा उतरता है।

अग्निमांद्य—इसके ताजा पत्तों की चटनी बनाकर खिलाने से भूख और पाचन शक्ति बढ़ती है।

सूजन—इसके पत्तों को पानी में पीस कर कुछ गरम करके पुल्टिस बनाकर सूजन पर बांधने से दाह और पीड़ा शान्त होती है और सूजन उतर जाती है।

मेद—शरीर पर एक बिना मुंह की गठान होती है उसको मेद कहते हैं। उस पर इसके पत्तों का लेप करने से लाभ होता है।

आंख का जाला—इसके रस को आँख में आँजने से आँख का जाला कट जाता है।

मसूड़े की सूजन—इसके पत्तों के रस से कुल्ले करने से मसूड़े के असाध्य रोग भी मिट जाते हैं।

उदर शूल—इसके पत्तों के क्वाथ में भुनी हुई हींग भुर भुरा कर पिलाने से उदर शूल मिटता है।

अन्तर्दाह—इसके पत्तों को ठण्डाई के समान घोट कर उनमें मिश्री मिला कर पीने से अन्तर्दाह मिटती है।

चांदी

नाम—

संस्कृत—रौप्य, रजत, चन्द्रहास, इत्यादि। हिन्दी—चांदी, रूपा। बंगाल—रूप। मराठी—चांदी, रूप। गुजराती—रूपुं। फारसी—नुकरा। अरबी—फिद्दा। लेटिन—Argentum. (आर्जेंटम)।

वर्णन—

चांदी, एक सुप्रसिद्ध धातु है। हिन्दुस्तान में बहुत प्राचीन काल से यह जेवर बनाने और औषधि प्रयोग के काम में आती है। आयुर्वेद के अन्दर इसकी उत्पत्ति का वर्णन करते हुए लिखा है कि त्रिपुरासुर का वध करने के लिये शंकर जब बहुत क्रोधित हुए तब उनके एक नेत्र से अग्नि निकली और दूसरे नेत्र से आंसू की बूंद गिरी, उसीसे चांदी की उत्पत्ति हुई। चांदी एक खनिज द्रव्य है। इसकी खदानें अमेरिका, सीलोन, और चायना में है। बहुतसी बड़ी २ नदियों की रेती में भी चांदी पाई जाती है। हिन्दुस्तान के अन्दर भी कई बड़ी २ नदियों की रेती में यह मिलती है।

चांदी की परीक्षा—

जो चांदी तोल में भारी, स्निग्ध, नरम, तपाने और तोड़ने में सफेद, घन की चोट को सहने वाली, सुन्दर वर्ण और चन्द्रमा के समान निर्मल, इन नौ गुणों से युक्त हो वह उत्तम होती है और जो चांदी कठोर, बनावटी, रूखी, लाल, तपाने से काली पड़ जाने वाली और घन की चोट से टूटने वाली होती है, वह खराब होती है।

असली चांदी का घनत्व पानी से १०॥ गुना होता है। इससे कम घनत्व वाली चांदी नकली होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से चांदी स्निग्ध, कसैली, अम्ल, पचने में मधुर, सारक, अवस्था स्थापक, शीतल लेखन और वात पित्त को हरने वाली होती है।

चांदी चीनी के साथ शरीर की दाह को, त्रिफले के साथ वात और पित्त को और इलायची, दाल चीनी और तेज पात के साथ प्रमेहादिक रोगों को दूर करती है।

अशुद्ध चांदी के दोष—अशुद्ध चांदी शरीर के अन्दर ताप पैदा करती है। शरीर को शिथिल करती है। वीर्य को नष्ट करती है। कामशक्ति को कमजोर करती है और कई प्रकार के उपद्रवों को पैदा करती है।

चांदी को शुद्ध करने की विधी—चांदी को गला २ कर तिल के तेल, मट्ठा, गौमूत्र, कांजी कुलथी के बीजों का काढ़ा इन पांच चीजों में तीन २ बार बुझाना चाहिये। उसके बाद उसको दाख का काढ़ा, इमली के पत्तों का काढ़ा और अगस्तिया के पंचांग के काढ़े में गरम कर २ के सात २ बार बुझाना चाहिये। इतनी क्रिया पर वहचांदी शुद्ध हो जाती है। चांदी में तांबा, कांसा और पीतल के समान

विशेष दोष नहीं है। इसलिये वैद्य लोग इसकी साधारण शुद्धि ही कर लेते हैं। पर इसमें संदेह नहीं कि अधिक शुद्धि करने से वह अधिक गुणवान हो जाती है।

चांदी की भस्म बनाने की विधि—

चांदी के पत्रों को अग्नि में गर्म कर नींबू के रस में १३ बार बुझाना चाहिये। ज्यों २ भस्म होती जाय, त्यों २ उसको निकाल कर दूसरे पात्र में रखते जाना चाहिये। १३ बार ऐसा करने से सब चांदी के पत्रों की भस्म हो जायगी। परन्तु यह खयाल रखना चाहिये कि चांदी के पत्रों को आग में रखने में और उससे उठाने में भस्म खिर २ के गिरती रहती है। इसलिये उसको किसी मिट्टी के सरावले में रखकर तपाना चाहिये। फिर सब भस्म को इकट्ठी करके नींबू के रस में घोटकर टिकियां बनालें। जब टिकिया खूब सूख जाय तब उसे शराव सम्पुट में रखकर, वराह पुट में फूंक दें। इससे बहुत उत्तम, सफेद रंग की भस्म हो जायगी।

चांदी भस्म की दूसरी विधि—आधा सेर हिंगुल को चार प्रहर तक नींबू के रस में घोटें। बाद में चांदी के पतले २ पाव भर पत्रों पर उसका लेप करके पत्रों को सुखालें। उसके बाद उन पत्रों को डमरू यन्त्र में रखकर वज्र मुद्रा करके शुरु में मन्द, फिर मध्यम, और फिर तेज ऐसी ४ प्रहर की आंच दें। यह खयाल रखना चाहिये कि डमरू यंत्र के ऊपर की हांडी पर हमेशा ५-६ तह किया हुआ गीला कपड़ा पड़ा रहे और ज्यों ज्यों वह कपड़ा गरम होता जाय त्यों २ उसे बदल कर दूसरा कपड़ा रखते जांय। ४ प्रहर होने पर आंच को बन्द करदें और जब यन्त्र ठण्डा हो जाय तब उसे खोलकर ऊपर की हांडी में जमे हुए शुद्ध पारे को निकाल कर अलग रखलें और नीचे की हांडी में से विशुद्ध चांदी भस्म को निकाल लें। अगर उसमें किसी प्रकार की कसर रह जाय तो एक पुट और देदें।

उपरोक्त चांदी की भस्म को शहद और अदरक के रस के साथ चाटने से शरीर में अनेक गुणों का प्रादुर्भाव होता है। विशेष कर यह प्रमेह को नष्ट करती है, काम शक्ति और वीर्य की वृद्धि करती है और दाह को नष्ट करती है।

चांदी भस्म की तीसरी विधि—दस तोला अकल करे की जड़ को लेकर पानी के साथ बारीक पीसकर उसकी लुगदी बनाकर उस लुगदी में एक तोला शुद्ध चांदी का पत्रा रखकर कपड़ मिट्टी करके १० कण्डों की आंच में फूंकना चाहिये। इस प्रकार ५।७ पुट देने से चांदी की भस्म तैयार हो जाती है। इस भस्म को १ रत्ती की मात्रा में शहद के साथ चाटने से कफ प्रकृति वालों को कामशक्ति कुछ दिनों में बहुत प्रबल हो जाती है और मैथुन में बहुत आनन्द आता है।

चांदी भस्म की चौथी विधि— अपामार्ग का क्षार ३ तोला लेकर उसको एक मिट्टी के सरावले में बिछा देना चाहिये। उसके बाद उस पर १ तोला शुद्ध चांदी रखकर उस चांदी पर फिर ३ तोला अपामार्ग का क्षार डालकर खूब दबा देना चाहिये। फिर उस सरावले पर दूसरा सरावला रखकर कपड़ मिट्टी करके १० सेर कण्डों की आंच में फूंकना चाहिये। इस प्रकार ५ पुट अपामार्ग के क्षार में देना

चाहिये। उसके बाद १ पुट जंगली सवा के रस में और देना चाहिये जिससे गुलाबी रंग की उत्तम भस्म बनती है। इसको आधी रत्ती की मात्रा में मलाई, मक्खन अथवा शहद के साथ खाने से काम शक्ति बहुत प्रबल होती है तथा धातु स्राव, शीघ्र पतन, स्वप्न दोष इत्यादि उपद्रव दूर होते हैं।

रजत रसायन—चांदी की भस्म ४ तोले, शतपुटी अभ्रक भस्म २ तोला, सोंठ, मिर्च और पीपल का सम्मिलित चूर्ण ८ तोला, इन सबको पीसकर कपड़ छान कर लेना चाहिये। इसको रजत रसायन कहते हैं। इसकी २ से ४ रत्ती तक की मात्रा शहद के साथ दोनो टाइम लेने से खांसी, श्वास, नेत्र रोग, बवासीर और राज यक्ष्मा रोग में बहुत लाभ होता है। इसको निरंतर सेवन करने वाले मनुष्य को वृद्धावस्था दबा नहीं सकती।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में सर्द और खुश्क है। यह दिल, मेदा और जिगर को ताक़तवर बनाती है। माली खोलिया और उन्माद में लाभ पहुँचाती है। जलोदर, तिल्ली की सूजन गुर्दे और मसाने की पथरी और पेशाब के रुक जाने में मुफीद है। मस्तिष्क और वीर्य्य को यह ताक़त देती है।

हानि कारक--इसके अधिक सेवन से आंतो और मसानों को नुकसान पहुँचता है।

दर्पनाशक--आंतों के लिये इसका दर्पनाशक कतीरा और मसाने के लिये इसका दर्पनाशक गूगल है।

प्रतिनिधि—इसका प्रतिनिधि फिरोजा और याकूद है (ये दोनों किस्में पत्थर की हैं)

मात्रा—इसके भस्म की मात्रा एक रत्ती से चार रत्ती तक की है।

उपयोग—

प्रमेह—बबूल की छाल, महुए की छाल और कटसल की छाल को जल में पीस कर, छान कर, उसमें चांदी की भस्म मिलाकर पीने से २० प्रकार के प्रमेह दूर होते हैं।

नं० २—दालचीनी, इलायची और तेजपात के चूर्ण में चांदी की भस्म मिलाकर खाने से सब प्रकार के प्रमेह में लाभ होता है।

वात पित्त रोग—त्रिफला के चूर्ण के साथ चांदी की भस्म खाने से वात पित्त के रोग मिटते हैं।

पाण्डु रोग—सोंठ, मिर्च और पीपर के चूर्ण के साथ चांदी की भस्म को खाने से पांडु रोग में लाभ होता है। इसी अनुपान से चांदी की भस्म को लेने से क्षय, बवासीर, श्वास, खांसी, उदररोग, तिमिर रोग और पित्त के रोगों में भी लाभ होता है।

ज्वर—पीपर और इलायची के चूर्ण के साथ चांदी की भस्म को लेकर, ऊपर से धनिये का दो तोला अर्क पीने से नवीन ज्वर, विषम ज्वर, पित्त ज्वर, इकांतरा, तिजारी, इत्यादि सब प्रकार के ज्वर दूर होकर शरीर में नया ख़ून पैदा होता है।

वायु शूल—वच के साथ चांदी की भस्म को खाकर ऊपर से गाय का दूध पीने से वायु का शूल नष्ट होता है।

उन्माद और मृगी—बच, ब्रह्मदण्डी का चूर्ण और घी के साथ चांदी की भस्म खाने से उन्माद और मिरगी में लाभ होता है।

बन्ध्यापन—बछड़े वाली गाय के दूध में असगन्ध की जड़ पीस कर उसमें चांदी की भस्म मिलाकर कुछ दिनों तक सेवन करने से बन्ध्या भी सन्तान उत्पत्ति के योग्य हो जाती है।

न० २-शिवलिंगी के बीज के साथ चांदी की भस्म को खाने से भी बन्ध्यत्व नष्ट होता है।

हिचकी—आमला और पीपर के चूर्ण के साथ चांदी की भस्म खाने से हिचकी मिटती है।

जीर्ण ज्वर और तिल्ली—शिवलिंगी के बीज के साथ चांदी की भस्म खाने से जीर्ण ज्वर, और तिल्ली में लाभ होता है।

इसी अनुपान से खांसी और वायु गोले में भी फायदा होता है।

वीर्य वृद्धि—वंशलोचन, छोटी इलायची, केशर, और मोती भस्म एक एक रत्ती और चांदी की भस्म दो रत्ती, इन सब को शहद में मिलाकर चाटने से और ऊपर से मिश्री मिला दूध पीने से वीर्य्य वृद्धि होती है।

चांदी पत्र

नाम—

यूनानी—चांदी पत्र।

वर्णन—

यह एक प्रकार का घास है। इसके पत्ते और डालियां हंसराज के पत्तों की तरह होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति रक्त विकार के लिये मुफीद है इसकी डालियां और पत्ते ३॥ तोले लेकर ३।४ काली मिरचों के साथ पानी में पीस कर पीने से कुष्ट रोग में लाभ होता है। (ख० अ०)

—०—

चापरा

नाम—

पंजाब—बन्दारू, वेबरंग, बिनबिन, चबरी, गूगल, जुमू, कखुम, कुकल, कन, खुशिन, खोरकरी, पापरी, बावरंग। अरेबिक—बवरंग, बरिंग। गढ़वाल—रिकादालिम। सीमाप्रान्त—खुपरा, गुहिनी, पाहरीवा। हिन्दी—चापरा (कनेज चोपरा) लेटिन—Myrsine Africana मिरसाइन एफ्रिकेना)

वर्णन—

यह वनस्पति काश्मीर से नेपाल तक १००० से ८५०० फीट की ऊंचाई तक तथा अफगानिस्तान और आफ्रिका में होती है। यह हमेशा हरी रहने वाली वनस्पति है। इसका छिलका हलका बादामी

होता है। इसके पत्ते बरछी आकार के और कटे हुए होते हैं। इसके फूल छोटे होते हैं। इसका फल गहरे बैंगनी रंग का रहता है। इसमें एक ही बीज रहता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह फल कृमि नाशक है। यह टेपवर्म (अन्तड़ियों में पाये जाने वाले कीड़ों) को नष्ट करता है। यह बाजार में बाबिडंग के नाम से बेचा जाता है। इसे वायविडंग की जगह भी काम में लेते हैं

यह जलोदर और शूल में मृदु विरेचक माना जाता है।

इसका गोंद कब्ज में उत्तम औषधि है।

कुछ लोग इसके पत्तों को रक्त शोधन के लिये काढ़े के रूप में लेते हैं।

कर्नल चौपरा के मतानुसार यह कृमि नाशक और विरेचक है।

चाय

नाम—

संस्कृत—चविका, चाह। हिन्दी—चाय। बंगाल—चाह। मराठी—चहा। गुजराती—चा। फारसी—चाखताई। अंग्रेजी—Tea। लेटिन—Camellia Theifera (केमेलिया थिफेरा)।

वर्णन—

चाय का पौधा झाड़ी नुमा होता है यदि वह समय २ पर कलम न कर दिया जाय तो बढ़कर २५।३० फीट ऊँचा हो जाता है। परन्तु खेती की दृष्टि से उनको समय २ पर कलम कर देते हैं। जिससे ये पौधे ४।५ फीट से ऊपर बढ़ने नहीं पाते। इसकी पत्तियां स्थान और परिस्थिति का संयोग पाकर भिन्न२ आकार प्रकार की होती है। फिर भी साधारण तया ये लम्बी, पतली और कम चौड़ी होतीं हैं। इनके किनारे प्रायः दन्त पंक्ति के आकार के होते हैं। इन पत्तियों के अन्दर बहुत सूक्ष्म छिद्र होते है। जिनमें एक प्रकार का तेल के समान पदार्थ रहता है। जो चाय के स्वाद को चित्त प्रिय बनाता है। नवीन कोमल पत्तियों की नीची सतह पर बारीक रुंए होते हैं। जो पत्तों के बड़े होने पर विलीन हो जाते है। इसकी कुछ पत्तियां घुँघराली होती हैं। जिनमें तेल का अंश अधिक रहता है। इसके बीज अण्डाकार और कठोर छिलके वाले होते हैं।

चाय की जातियां—

भारतीय चाय की प्रायः ४ जातियां होती हैं। आसामी, लुशाई, नागा और मनीपुरी। आसामी चाय की पत्तियां ६ से ७॥ इंच तक लम्बी और २॥ से ३ इंच तक चौड़ी होती हैं। पत्ती के बीच वाली मोटी नस के दोनों और सोलह २ नसें होती हैं। इस चाय की ३ उप जातियां होती हैं। जो विंग, सिंगलो और बोढे के नाम से बोली जाती हैं। इनमें सिंगलो जाति की चाय सबसे उत्तम मानी जाती है लुशाई

चाय की पत्तियां १२ से १८ इंच तक लम्बी और ७॥ इंच तक चौड़ी होती हैं। नागा चाय की पत्तियां ६ से ६ इंच तक लम्बी और २ से ३॥ इंच तक चौड़ी होती हैं। मनिपुर चाय की पत्तियां दलदार और मोटी होती हैं। ये ६ से ८ इंच तक लंबी और २ से ३॥ इंच तक चौड़ी होती हैं।

इतिहास —

संसार के अन्दर चाय का प्रचार सबसे पहले चीन से हुआ, ऐसा माना जाता है। ऐसा मालूम होता है कि कनफ्यूशस के जमाने में अर्थात् ईसवी सन से ५६० वर्ष पूर्व वहां पर चाय का उपयोग होता था। उसके बाद पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दि से वहा पर चाय का विशेष प्रचार हुआ। योरोप के अन्दर चाय का विशेष प्रचार सबसे पहले डच लोगों ने प्रारम्भ किया। जब डच लोग जावा में स्थायी रूप से निवास करने लगे तब वहा उनका सम्पर्क चीनी लोगों से हो गया। जिससे वे लोग भी चाय पीने के अभ्यस्त हो गये। सन् १६५६ में लन्दन के अन्दर सबसे पहले गरम चाय बेचने की पहली दुकान खुली। सन् १६६४ ईसवी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने ब्रिटेन के सम्राट चार्ल्स दूसरे को ४० शिलिंग प्रति पौंड वाली १८ औंस चाय भेंट की। तबसे वहां पर चाय का प्रचार विद्युत गति से बढने लगा। सन् १७८७ ईसवी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारतवर्ष के बाजारों से खरीद कर दो करोड़ रतल चाय, इंग्लैंड के बाजारों में खपाई।

भारतवर्षमें चाय का व्यवहार वर्तमान ढग से कब आरम्भ हुआ। यह कहना कठिन है पर सत्रहवीं शताब्दि के मध्य काल में यहा पर इसका व्यापक प्रचार हो गया था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत के अन्दर व्यापक रूप से चाय की खेती प्रारम्भ करवाई। यहा की चाय इतनी उत्तम श्रेणी की पैदा होने लगी कि सन १६०७ में सारे सभ्य संसार ने भारत की चाय को सर्व श्रेष्ठ करार दिया जिसके परिणाम स्वरूप सन् २२—२३ तक भारतवर्ष में ४२७८ चाय के बगीचे लग गये और सन् १५।१६ में यहा से चाय का निर्यात ३३८४७०२६२ रतल का हुआ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से चाय तीक्ष्ण, गरम, कसैली, अग्नि को दीपन करने वाली, पाचक, हलकी, कफ पित्त नाशक और वात को कुपित करने वाली होती है।

चाय से मनुष्य के स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव होता है इस विषय में भारी मत भेद है। कई लोग इसको मानवीय स्वास्थ्य के लिये उपयोगी मानते हैं और कई लोग इसे स्वास्थ्य के लिये हानिकारक और विषैली मानते हैं।

"इन सायक्लोपीडिया ब्रिटेनिका" का मत है कि चाय के सम्बन्ध में अभी तक कोई विश्वासोत्पादक अधिकार युक्त रासायनिक विश्लेषण नहीं किया गया। फिर भी उपलब्ध रासायनिक खोज के आधार पर चाय के तत्वों की विवेचना करना आवश्यक है।

रासायनिक विश्लेषण —

अभी तक के रासायनिक विश्लेषण से चाय के अन्दर निम्नलिखित पदार्थ पाये गये हैं।

(१) जल	५ प्रतिशत
(२) मांस बनाने वाले पदार्थ	
(१) (केफ़ीन) थिन (Theine)	...३ प्र० श०
(२) केसीन	...१५ प्र० श०
(३) गर्मी देने वाले पदार्थ—	
(१) एरोमेटिक आईल	...'७५ प्र० श०
(२) शक्कर	...३ प्र० श०
(३) गोंद	...१८ प्र० श०
(४) चर्बी के तेल	...४ प्र० श०
(४) टेनिन एसिड	...२६'२५प्र०श०
(५) लकड़ी का अंश	... २० प्र० श०
(६) खनिज द्रव्य	... ५ प्र० श०

उपरोक्त रासायनिक पदार्थों में जो तेल का अंश दिखलाई देता है, वह चाय को स्वादिष्ट और सुगन्धित बनाता है। मगर चाय को उत्तेजक और स्फूर्ति दायक बना देने का श्रेय केफीन नामक पदार्थ को है। चाय में ३ प्रतिशत केफ़ीन पाया जाता है और इसी के कारण चाय के पीते ही कुछ समय के लिए एक प्रकार की स्फूर्ति का संचार हो उठता है। स्नायु में एक प्रकार की चेतन शक्ति सी दौड़ जाती है। केफ़ीन वही पदार्थ है, जो इसी प्रकार के अन्य पेय पदार्थों में जैसेः—कॉफी, कोको, कोलानट आदि में पाया जाता है। तेल और केफ़ीन के अतिरिक्त चाय में पाया जाने वाला पदार्थ टेनिन है। टेनिन भूख को कम कर देता है और पाचन शक्ति को शिथिल करने में सिद्ध-हस्त है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि चाय में जहां मांस बनाने वाले पदार्थ १८ प्रतिशत और गर्मी पहुँचाने वाले पदार्थ २५.७५ प्रतिशत रहते हैं,वहां पाचन शक्ति को कमजोर करके भूख को बन्द कर देने वाला टेनिन नामक पदार्थ भी २६.२५ प्रतिशत रहता है। ऐसी दशा में अगर चाय के अन्दर रहने वाला यह पदार्थ मानवीय स्वास्थ्य के लिये हानि कारक सिद्ध हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मगर टेनिन को दूर रखने के उपाय भी काम में लिये जाते हैं और उनमें से एक उपाय यह है कि गरम पानी में अधिक से अधिक ५ मिनिट तक ढक्कन बन्द करके चाय को उबाल लेने से केफ़ीन का पूरा अंश उसमें उतर आता है। मगर इतने समय में टेनिन का बहुत ही कम अंश उसमें आता है। अतः इसी अवधि के भीतर चाय को छान कर पी ली जाय तो टेनिन का अंश इसमें न उतरने पायगा। अधिक देर तक उबालने से टेनिन का अंश उतर जाता है और वही सबसे अधिक नुकसान पहुँचाता है।

इस सारे विवेचन से मालूम होता है कि चाय के अन्दर सब से लाभदायक तत्व केफ़ीन है और सबसे हानि कारक तत्व टेनिन है। उत्तम श्रेणी की चाय वही मानी जाती है जिसमें केफ़ीन

का अंश अधिक पाया जाता हो। क्योंकि चाय की उत्तमता इसके गुणों पर ही निर्भर है और चाय में जो गुण हैं वे केफीन के ही कारण हैं। केफीन से स्नायु मण्डल में तत्काल स्फूर्ति का संचालन होता है। वह मनुष्य की मुरझाई हुई प्रकृति प्रफुल्लित कर उसमें चैतन्यता फूंक देता है। यह पदार्थ थोड़े परिमाण में शक्ति सञ्चारक और लाभकारी होता है। मगर बड़ी मात्रा में यह भी विषैला हो जाता है। ❀ १

चाय में केफीन का अंश ३ से ६ प्रति शत तक ही रहता है। इतनी मात्रा में यह उसे लाभकारी ही बनाता है। अतः चाय का यह पदार्थ स्वास्थ्य के लिये कोई हानि कारक वस्तु नहीं है। चाय में यदि हानिकारक कोई वस्तु है तो वह टेनिन ही है। परन्तु सिर्फ ५ मिनिट तक चाय की पत्ती को उबालने से केवल केफीन का अंश ही पानी में उतरता है, टेनिन का नहीं। इसलिये यदि चाय के अनिष्ट कारक परिणामों से बचना हो उसे अधिक देर तक नहीं उबालना चाहिये। * २

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। उत्तम चाय तीसरे दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क होती है। इसके पीने से तबियत में प्रसन्नता पैदा होती है। मस्तिष्क को उत्तेजना मिलती है। यह पेशाब और पसीना अधिक लाती है। सिर दर्द और मेदे की जलन को दूर करती है। कफ प्रकृति वालों की कामेच्छा को बढ़ाती है। चाय को जोश देकर लेप करने से सख्त सूजन बिखर जाती है। यह गुरदे की खराबी से पैदा हुई पेशाब की रुकावट को मिटाती है। इसे हरड़, बहेड़ा, आंवला और रेवन्द चीनी के साथ जोश देकर पीने से पित्त और कफ की जमावट निकल जाती है। बनफशा, हसराज, मुलहटी, गुल खतमी, अमलतास और सनाय के साथ इसको जोश देकर उस जोशान्दे में नमक, कच्ची शक्कर और गुलाब का तेल मिलाकर उसका एनिमा लेने से आंतों की सब गन्दगी दस्त की राह निकल जाती है। इसको सालम मिश्री, दालचीनी, अम्बर और दूध के साथ पीने से मनुष्य की कामशक्ति बढ़ती है। पोदीना और अकल करे के फूल के साथ पीने से वायु से पैदा हुआ उदर शूल मिटता है। बनफशा और मुलहटी के साथ पीने से जुकाम और नजला में लाभ होता है। केशर के साथ इसको पीने से प्रसूति कष्ट मिटकर बच्चा आसानी से पैदा हो जाता है।

हानि कारक—चाय गरम प्रकृति वालों को खाली पेट पीने से मुँह में खुश्की, खुजली, दमा और अग्निमान्द्य पैदा करती है।

❀ (1) In large quantities, It is poison. But in smallar quantities it acts as a stimulants (Tea by A. Ibbetson)

* (2) Experiment has shown that an infusion of the leaf for ten minutes is sufficient to extract all the valuable theine and a longer period merely results in an accumulation of Tannin which in excess is well known to seriously impede Digestion. (Tea By A. Ibbetson)

दर्प नाशक— इसके दर्प को नाश करने के लिये गरम मिजाज वालों को बकरी का दूध और सुपारी तथा सर्द मिजाज वालों को लौंग, कस्तूरी, सोंठ और दालचीनी का प्रयोग करना चाहिये।

मात्रा—एक चाय का चम्मच भरकर सूखी चाय लेकर इसको एक कप पानी में औटाकर पीना चाहिये।

चाल मोगरा

नाम—

संस्कृत – कुष्ठवैरी। हिन्दी— चाल मोगरा। बंगाल— चालमुगरा। मराठी—पेटार कुड़ा। चाउल मुरगी। फारसी— बीज मागरी, बृज मोगरा। लेटिन—Taractogenos Kursii टेरेक्टोजेनस, करफाई। Cynocardia Odorata गिनोकारडिया ओडोरेटा।

बर्णन—

चाल मुगरा के वृक्ष हिमालय के नीचे के प्रदेश में अर्थात् शिकीम, चिटगांव, खासिया पहाड़ और रंगून की तरफ विशेष होते हैं। इसके पत्ते फुट भर लंबे और फल कवीट के फलों की तरह होते हैं। इन फलों में से एक २ इंच लम्बे बीज निकलते हैं। इन बीजों में से जो तेल निकलता है। उसे चाल मुगरा आइल कहते हैं। चाल मुगरा के बीजों को अभी तक वनस्पति शास्त्र में गिनो कारडिया ओडोरेटा नामक वृक्ष के बीज माने जाते थे। परन्तु जी० डिस्प्रीक नामक फ्रेंच रसायन शास्त्री ने सन १८६६ में यह सिद्ध किया कि चाल मुगरा के नाम से जो बीज यूरोप में आते हैं। वे गिनोकारडिया के नहीं परन्तु दूसरे किसी वृक्ष के हैं। इस विषय का निर्णय करने के लिये लेफ्टिनेंट कर्नल डी० प्रेन को लिखा गया उन्होंने तलाश करके यह निश्चय किया कि कलकत्ते के बाजार में जो बीज चाल मुगरा के नाम से बेचे जाते हैं। वे गिनोकारडिया ओडोरेटा के नहीं, प्रत्युत टेरेक्टेजेनस करफाई नामक वृक्ष के हैं। इन दोनों जाति के बीजों में इतना अन्तर है कि वे आसानी से पहिचाने जा सकते हैं। क्योंकि गिनो कारडिया के बीज टेरेक्टेजेनस के बीजों के बजाय छोटे होते हैं। गिनो कारडिया के बीजों का छिलका बहुत सख्त और इसका मगज़ हलका पीला होता है। मगर टेरेक्टोजेनस का छिलका साफ़ और उनका मगज काले रंग पर होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

चाल मुगरे का तेल कृमि नाशक, वेदना को दूर करने वाला, चर्म रोगों को मिटाने वाला, रक्त शोधक और व्रण रोपक होता है। इसको अधिक मात्रा में पेट के अन्दर लेने से सुस्ती और जम्हाइयां आती हैं। तथा उल्टी और दस्त होती हैं। चमड़े पर अधिक मालिश करने से यह जलन पैदा करता है।

चर्मरोग और कुष्ठ के अन्दर चाल मुगरे का तेल बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। महा कुष्ठ के अन्दर रोग के लक्षण दिखलाई देते ही इसको खाने और शरीर पर लगाने से बहुत लाभ होता है।

कुष्ट रोग में इसको लेने के साथ पथ्य की रबरीर वाला पीने से विशेष लाभ होता है। उपदंश या गरमी की दूसरी अवस्था में इसका उपयोग करने से इसके उत्तम परिणाम दृष्टिगोचर होता है। खाज, खुजली वगैरह रोगों पर इसको मक्खन के साथ मिलाकर लगाने से फायदा होता है। मक्खन नहीं मिलाने से त्वचा पर बहुत जलन होती है।

क्षय, कण्ठमाला, क्षय जन्तुओं के द्वारा पैदा हुवे व्रण, घाव, नासूर और हड्डी के नासूर में चालमुगरा तेल को खिलाने और इसका मलहम लगाने से बहुत लाभ होता है। श्वासनलिका की पुरानी सूजन, फेंफड़े के रोग, आमवात, सन्धिवात और स्नायु रोगों पर भी इसको खाने और लगाने से अच्छा परिणाम नजर आता है।

चाल मुगरे का तेल चर्मरोगों के लिये एक रामबाण औषधि है। अगर इसका विधिपूर्वक उपयोग किया जाय तो कुष्ट के समान भयंकर रोग भी इससे दूर हो जाते हैं। साधारण खुजली से लेकर नाना प्रकार, के कुष्ट के समान, त्वचा के रोगों के ऊपर यह तेल बड़ा लाभ पहुँचाता है। उपदंश या गरमी के रोग पर तो यह एक महौषधि है।

यह तेल सन् १८५६ ई० में पहले पहल यूरोपियन डाक्टरों की जानकारी में आया और उसके कुछ वर्षों के बाद एक प्रधान अंग्रेज डाक्टर ने अनेक रोगियों के ऊपर इसकी परीक्षा करके यह जाहिर किया कि क्षय की खांसी और कण्ठमाला के रोग पर यह तेल विशेष उपकारी है। इसके गुणों से प्रभावित होकर सन् १८६८ में इसका नाम ब्रिटिश फरमा कोपिया के अन्दर दर्ज किया गया और इसके गुण दोषों के लिए उसमें यह लिखा गया कि कोढ़ के रोग, वात रक्त, कण्ठमाला, दूसरे चर्म रोग और वायु के रोगों के ऊपर यह वस्तु लाभदायक है। इसकी मात्रा के सम्बन्ध में उक्त फरमाकोपिया में यह निश्चय किया गया कि अगर इसके बीजों का चूर्ण लेना हो तो तीन रत्ती की मात्रा में दिन में तीन बार इस चूर्ण की गोली बनाकर लेना चाहिये और अगर तेल लेना हो तो ६ बूंद की मात्रा में लेना चाहिये।

इण्डियन प्लेण्ट्स एण्ड ड्रग्स नामक ग्रंथ में डाक्टर नाडकरनी लिखते हैं कि चाल मोगरे का तेल वातरक्त और कुष्ट रोग के लिये हिन्दुस्थान में बहुत प्रसिद्ध हैं। कण्ठमाला, चर्मरोग और प्राचीन सन्धिवात पर भी यह औषधि विजयी साबित हुई है। इसके बीजों को पीस कर उनका चूर्ण दिन में तीन बार ६ ग्रेन की मात्रा में गोली बांध कर दिया जाता है। धीरे २ इस चूर्ण की मात्रा बढ़ाते २ दस बारह रत्ती तक दी जा सकती है। मात्रा बढ़ाते समय अगर जी का मिचलाना, उल्टी, चक्कर इत्यादि उपद्रव दिखलाई दें तो उसकी मात्रा घटा देना चाहिये या कुछ दिनों के लिये बन्द करके फिर चालू कर देना चाहिये। अगर तेल देना हो तो ६ बूँद से शुरू करके धीरे २ बढ़ाते हुए ३० बूंद तक प्रति टाइम दिया जा सकता है। इस तेल को दूध के साथ लेना चाहिये अथवा केपसूल के अन्दर भर कर निगल जाना चाहिये। जबतक इस औषधि का सेवन चालू रहे तब तक नमक, मिर्च, गरम मसाला और खटाई बिलकुल बन्द कर देना चाहिये और घी मक्खन इत्यादि चीजों को अधिक मात्रा में सेवन करना चाहिये।

शकर और गुड़ की बनी हुई चीजें भी जहां तक होसके नहीं लेना चाहिये। क्षय के रोग में भी इसको पीने और छाती पर मालिश करने से अच्छा लाभ होता है। दाद के ऊपर इसकी मालिश एक महिने तक करते रहने से दाद जड़ मूल से नष्ट हो जाता है।

यह ख्याल में रखने की बात है कि चर्म रोगों के ऊपर यह एक दिव्य औषधि होते हुए भी पचने में भारी होने की वजह से जठराग्नि पर यह बहुत खराब असर डालती है। इसलिये जिसकी जठराग्नि मन्द हो ऐसे रोगी को इसे बहुत विचार के साथ देना चाहिये। ऐसे रोगियों को इसकी मात्रा दो बूंद से शुरू करके ज्यों २ अनुकूल होती जाय त्यों २ धीरे २ पन्द्रह बीस बून्द तक बढ़ाना चाहिये। इसको भूखे पेट लेने की अपेक्षा भोजन के आधे घण्टे पश्चात मक्खन के साथ लेने से यह बहुत आसानी से पच जाता है और इसको लेने का यही तरीका उत्तम भी माना गया है। इस प्रकार इसको लेने से और मक्खन के साथ मिलाकर लेप करने से कुष्ट रोग की प्रथमावस्था में बहुत लाभ होता है।

मात्रा— इसकी साधारण मात्रा ६ बून्द से शुरू होती है। जो बढ़ाते २ तीस बून्द तक पहुँचादी जाती है। इसको भोजन के पश्चात् मक्खन के साथ मिलाकर या केपसूल में भरकर लेना चाहिये।

यूनानी मत— यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। मखजनूल अदविया के मतानुसार इसमें विष के उपद्रवों मिटाने की तासीर है। इसके अतिरिक्त यह दाद, खाज, कुष्ट और चर्म रोगों में बहुत मुफीद है। यह खाने और मालिश करने के दोनों कामों में लिया जाता है। इसको अकेले मालिश करने से चमड़े पर बहुत जलन पैदा होती है। इसलिये इसको तिगुने या चौगुने नीम के बीजों के तेल में मिलाकर लगाना चाहिये। इसको पीने और मालिश करने से कोढ़, कण्ठमाला, दूसरे चर्म रोग, पुरानी गठिया, गरमी और क्षय के रोग में बहुत लाभ होता है।

चालटा

नाम—

संस्कृत—भव्य, कर्म। हिन्दी—चाल्टा, गिरनार, चालता। बंगाल—चालता। मराठी—मोठे करमल, करमबेल। बम्बई—करमबेल, मोठा करमल। गुजराती—करमबल, ओटपल। नेपाल—रामफल, पचफल। तामील—ऊव, उगकी, अकू। तेलगू—रव्य, कनिंग। लेटिन—Dillenia Indica डिलेनिया इण्डिका।

वर्णन—

यह मध्यम आकार का सुन्दर वृक्ष नैपाल से आसाम तक तथा दक्षिण कोकण और सीलोन में पैदा होता है। सहारनपुर और देहरादून में इसे बोकर पैदा किया जाता है। इसके पत्ते हाथ भर लम्बे और कटी हुई किनारों के होते हैं। इसके फूल सफेद सुगन्धित और गोल रहते हैं। इसके फल छोटे नारियल की तरह बाहर के तरफ कठोर रहते हैं। इनके भीतर गूदा रहता है और उस गूदे में बीज रहते हैं। औषधि में इसके फूल और फल काम में आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से इसका कच्चा फल तूरा, कड़वा और तीक्ष्ण तथा इसका पका फल मीठा, तूरा और स्वादिष्ट रहता है। यह वात, कफ, थकान और उदरशूल को मिटाता है।

इसके फलों के रस को शक्कर और पानी के साथ मिलाकर ज्वर और खांसी के अन्दर दिया जाता है। इससे दस्त साफ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति शीतल है। यह ज्वर के अन्दर एक लाभदायक पेय पदार्थ माना जाता है।

—•—

चांवल

नाम—

संस्कृत—धान्य, शालि, तन्दुल। हिन्दी—चांवल, धान। मराठी—तांदुल, भात। गुजराती—चोखा, भात। सिंध—चावर। फारसी—बिरंज। अरबी—अर्ज, अरुज। तामिल—अरिशी, नेल्लु। तेलगू—बियर धान्यम्, उरलू, वरलू। लेटिन—Oryza Sativa (ओरिज्मा-सेटिवा)

वर्णन—

चावल भारतवर्ष का एक प्रसिद्ध खाद्य पदार्थ है। अतः इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं। आयुर्वेदिक मत से यह शालिधान्य, व्रीही धान्य, शिम्बी धान्य और क्षुद्र धान्य के भेद से ५ प्रकार का माना गया है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से शालिधान्य मधुर, स्निग्ध, बलकारक, किंचित् मल रोधक, कसैले, हलके, रुचि कारक, स्वर को शुद्ध करने वाले, वीर्यवर्द्धक, पोषक, वात कफ को कुपित करने वाले, शीतल, पित्त नाशक और मूत्रल हैं।

लाल शालिधान्य-सब धान्यों में उत्तम होते हैं। ये बल वर्द्धक, कान्ति बढ़ाने वाले, त्रिदोष-नाशक, मूत्रल, स्वर को श्रेष्ठ करने वाले, शुक्रजनक, प्यास को दूर करने वाले, विष नाशक, ज्वरघ्न, व्रण को दूर करने वाले तथा श्वास, खांसी और दाह को नष्ट करने वाले होते हैं।

राजशालिधान्य-अर्थात् बासमती चांवल स्निग्ध, मधुर, अग्नि दीपक, बल कारक, कान्ति जनक धातु वर्धक, त्रिदोष नाशक और हलके होते हैं।

व्रीही धान्य—मधुर, शीतवीर्य, मल रोधक, और शुक्र रूप तथा बल को देने वाले होते हैं।

सांठी चांवल—मधुर, मल रोधक, त्रिदोष नाशक, शीतल और सब प्रकार के चांवलों में श्रेष्ठ होते हैं।

चावल २ प्रकार के आते हैं। एक मशीन से साफ किए हुए, पालिश दार और दूसरे हाथ से साफ किए हुए बिना पालिश के होते हैं। पालिश किये हुए चावल दीखने में बहुत सुन्दर और स्वादिष्ट होते हैं, मगर इनका गुणकारी तत्व जल जाता है और ये शरीर के लिये पौष्टिक नहीं होते। हाथ से साफ किये हुए चावल दीखने में सुन्दर नहीं होते, मगर स्वास्थ्य के लिये लाभदायक होते हैं।

चावल दूसरे अनाजों की अपेक्षा, अपेक्षाकृत निःसत्व अनाज है। इसके अन्दर पानी ११ प्रति शत, मांसवर्द्धक भाग ७॥ प्र० श०, चर्बी २ प्र० श०, मैदा ६८ प्र० श०, राख १॥ प्र० श० और तेल २ प्र० श० पाया जाता है। इसको मशीन से साफ करने से इसका मांसवर्द्धक भाग कम हो जाता है और तेल नष्ट हो जाता है। इस अन्न के अन्दर मानव शरीर को पोषण करने वाले विटामिन्स कम रहते हैं और इसलिये जिन २ प्रान्तों में चावल का खान पान बहुत अधिक है। उन प्रान्तों में बेरी बेरी नामक भयकर रोग का प्रचार अधिक पाया जाता है। इस बात को चिकित्सा शास्त्र भी मान चुका है कि केवल चावल पर जीवन निर्वाह करने वाले लोग बेरी-बेरी रोग के अधिक शिकार होते हैं।

यूरोप के अन्दर चावल फेंफड़ों की बीमारी, क्षय, वक्षस्थल के रोग और कफ के साथ खून जाने की बीमारी में लाभ दायक माना जाता है। उबला हुआ चावल पाचन क्रिया की विकृति, आंतों के विकार और अतिसार में लाभ दायक है। चावल का पानी ज्वर और अन्तड़ियों की जलन में शान्तिक पदार्थ की तरह काम लिया जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से चावल तर मिजाज वालों के लिये अधिक अनुकूल रहता है। इससे खून पैदा होता है और शरीर मोटा होता है।

हकीम गिलानी के मतानुसार चावल वीर्य को बढ़ाता है और पेट में फुलाव पैदा करता है। यह शक्कर के साथ खाने से जल्दी हजम होता है। सफेद चावल शरीर में ताजगी और रौनक पैदा करता है। इसके खाने से खराब स्वप्न आना बन्द हो जाते हैं। यह फेंफड़े के जखम को भर देता है। चावल को मट्ठे के साथ खाने से गर्मी, प्यास, जी मिचलाना और पित्त के दस्त मिट जाते हैं।

अतिसार या पेचिश के रोगियों के लिये चावल एक उत्तम खाद्य पदार्थ है। भाप करके लाल चावल इस कार्य में ज्यादा मुफीद है। आंतों के जखम, खून के दस्त, गुर्दे तथा मसाने की बीमारियों में ये लाभ पहुँचाते हैं। चावलों को भूनकर उनको रात भर पानी में भिगोकर उस पानी को सबेरे पीने से मेदे के कीड़े मर जाते हैं।

जिन लोगों को गुर्दे और मसाने की पथरी का रोग हो उनके लिये चावल बहुत हानिकारक पदार्थ है।

सफेद चावलों को पानी में भिगोकर, उस पानी से चेहरे को धोने से चेहरे की झाई मिटकर रंग साफ हो जाता है।

चावलों के पानी में मोतियों को धोने से मोती की चमक दमक बढ़ जाती है।

लाल चावल पेशाब सम्बन्धी बीमारियां प्यास और शरीर की जलन को दूर करता है। इस

को जोश देकर पीने से पेशाब साफ आता है। काले धान का चावल ज्वर नाशक है। यह भूख बढ़ाता है, कामेंद्रिय को ताकत देता है। एक साल का पुराना चावल वात-पित्त और कफ को दूर करता है। तीन साल का पुराना चावल पेट के कृमियों को नष्ट करता है, शरीर के ओज को बढ़ाता है। प्रसूति काल में स्त्रियों के लिये यह लाभदायक है।

हानिकारक—पथरी और उदर शूल के रोगियों के लिये चावल बहुत हानिकारक है।

दर्पनाशक—इसके दर्प नाशक पदार्थ दूध, घी शक्कर और शहद है।

प्रतिनिधी—इसके प्रतिनिधि जौ का सत्तू और बाजरा है।

चिकरी

नाम—

काश्मीर—चिकरी। सीमाप्रदेश—चिकरी, पापरी, पोपार। फारसी—शमशाद। उर्दू—शमशाद। लेटिन—Buxus Sempervirens बक्सस सेम्पेरव्हिरेन्स।

वर्णन—

यह वनस्पति सम शीतोष्ण हिमालय, भूटान और पंजाब में पैदा होती है। यह एक छोटे कद का वृक्ष है। इसके पत्ते बर्छी के आकार के और लंबगोल और इसके फूल छोटे, पीले हरे और मधुर खुशबू वाले रहते हैं। इसको फली गोल होती है जिसमें ३ से ६ तक बीज रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके पत्ते सिरदर्द और गुदभ्रंश रोग में लाभदायक होते हैं। इसके बीज कड़वे, संकोचक और हृदय तथा मस्तिष्क को बल देने वाले होते हैं। ये मूत्रपीड़ा और यकृत के विकारों को दूर करते हैं।

इसकी छाल का सत्व ज्वर निवारक और पसीना लाने वाला होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी लकड़ी ज्वर उतारने वाली होती है। इसके पत्ते कड़वे, विरेचक, पसीना लाने वाले और गठिया तथा गर्मी में लाभदायक हैं। इसकी छाल ज्वर निवारक है। इसमें बक्साइन, पेरीक्साइन, बक्सानी डाइन नामक उपक्षार पाये जाते हैं।

चिचोरा

नाम—

हिन्दी—चिचोरा। लेटिन—Scirpus Articulatus (सिरपस आर्टिक्यूलेटस)

वर्णन—

यह एक हमेशा स्थाई रहने वाली वनस्पति है। इसका तना छोटी अंगुली के समान मोटा

रहता है। इसके पत्ते बहुत ही कम होते हैं। ये किंगरीदार होते हैं इसका फल लंब गोल, चमकीला और काला होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति विरेचक है।

—०—

चिउरा [फुलवार]

नाम—

हिन्दी—चिउरा, फलवरा, फलवारा, फुलवार। देहरादून—चिउरा। कुमाऊं—चुलेल, चिउरा। नेपाल—चिवारी, चिउरी। अवध—चेहली। लेटिन—Bassia Butyracea (बेसिया ब्यूटीरेसीआ)

वर्णन—

यह वनस्पति कुमाऊ से लेकर भूटान तक १००० फीट से ५००० फीट की ऊँचाई तक हिमालय के दक्षिण भाग में होती है। यह एक मध्यम श्रेणी का वृक्ष है। इसकी छाल गहरे बादामी और लाल रंग की होती है। इसके पत्ते २० से लगाकर ३५ सेन्टिमीटर तक लम्बे और ६ से लेकर १५ से० मी० तक लम्बे और चौड़े होते हैं। ये अण्डाकार और ऊपर की तरफ हरे और चमकीले होते हैं। इसके फूल सफेद और फल हरे चमकीले और अण्डाकार होते हैं। इसके बीजों में से तेल निकलता है जो मक्खन के समान सफेद, गन्ध रहित और घी के समान जमा हुआ रहता है। यह कोकम के तेल की तरह होता है और उसीके बदले में काम आता है।

गुण दोष और प्रभाव—

सर्दी के दिनों में जब मनुष्य के हाथ पैर फट जाते हैं तब इसके तेल को लगाने से बहुत जल्दी अच्छे हो जाते हैं। इसका तेल सन्धियों के सूजन और कमर के दर्द पर जो मालिश करने के काम में लिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसमें पाया जाने वाला स्निग्ध पदार्थ सन्धिवात में उपयोगी है।

चित्रक

नाम—

संस्कृत—चित्रक, अग्नि, अग्निशिखा, सप्तर्षी, शार्दूला। हिन्दी—चित्रक, चित्रा, चीतावर। गुजराती—चित्रो, चित्रक। मराठी—चित्रकमूल, चित्रक। पञ्जाब—चित्रक। तामील—अदिगरदि, अक्किनि, करिमद। तेलगू—अग्निमन्न, चित्रमूलम। अरबी—शीतरज। फारसी—बिरावरिन्दे, शीतीरक। लेटिन—Plumbago Zeylanica (प्लोम्बेगो जेलेनिका)

वर्णन—

यह वनस्पति सारे भारतवर्ष में पैदा होती है। कहीं २ इसकी खेती भी की जाती है। इसके पौधे बहु वर्ष जीवी और हमेशा हरे रहने वाले होते हैं। ये पौधे ३ से ६ फुट तक ऊँचे होते हैं। इस पौधे का तना बहुत कम होता है। जड़ के सिरे पर से ही पतली-पतली कई डालियां फूटती हैं जो चिकनी और हरे रंग की होती है। इसके पत्ते मोगरे के पत्तों की तरह अण्डाकार, लम्ब गोल और हरे रंग के होते हैं। ये बहुत दलदार होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के और गन्ध रहित होते हैं। इसके फूलों की कलगी कोमल शाखाओं में से निकलती है। वह ३ से १२ इञ्च तक लम्बी होती है। उसके ऊपर फूल लगते हैं। इन फूलों के ऊपर फल लगते हैं और एक फल में एक २ बीज निकलता है। इसकी छाल कालापन लिये हुए खाकी रंग की होती है। इसकी सूखी जड़ें तोड़ने से झट टूट जाती हैं। इनका स्वाद तीक्ष्ण और कड़वा होता है। इसकी जड़ की छाल औषधि के काम में आती है। अधिक पुरानी होने पर यह निरुपयोगी हो जाती है। इसकी सफेद, लाल और काली ऐसी तीन जातियां होती हैं। सफेद चित्रक को लेटिन में प्लम्बेगो जेलेनिका, लाल चित्रक को प्लम्बेगो रोजिया और काली चित्रक को प्लम्बेगो केपेंसिस कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से चित्रक पाचक, रूखी, हलकी, पचने में चरपरी, अग्नि दीपक, ग्राही, कड़वी, गरम, रुचिकारक, रसायन, अग्नि के समान पराक्रमी तथा सूजन, कोढ़, बवासीर, खांसी, कृमि, कण्डू, यकृत रोग, संग्रहणी, क्षय और उदर रोगों को नष्ट करने वाली है।

लाल चित्रक—

देह को स्थूल करने वाली, रुचि कारक, कुष्ट नाशक, पारे को बान्धने वाली, लोहे को भेदने वाली, रसायन और धातु परिवर्तक है।

काली चित्रक—

काली चित्रक को खाने से मनुष्य के बाल काले हो जाते हैं। गाय की सूंघी हुई काली चित्रक को दूध में डालने से दूध काला हो जाता है।

योग्य मात्रा में और योग्य विधि से इसका उपयोग करने से सन्निपात, जलोदर, संग्रहणी, अजीर्ण, बवासीर, अरुचि, वात, पित्त, कफ, कुष्ट, सूजन, तिल्ली और यकृत की वृद्धि, मन्दाग्नि, इत्यादि रोगों में यह अच्छा लाभ बतलाती है। पर अधिक मात्रा में लेने से यह एक प्रकार के विष का काम करती है। इसको अधिक मात्रा में लेने से आमाशय में जलन पैदा होती है। दस्तें और उल्टियां होने लगती हैं। पेट में बहुत कष्ट होने लगता है और नाड़ी अशक्त होकर अव्यवस्थित चलने लगती है। चमड़े पर भी इसका लेप करने से फोला उठ जाता है, जो बहुत कष्टदायक होता है और मुश्किल से भरता है। वहां की चमड़ी भी काली पड़ जाती है।

छोटी मात्रा में इसका उपयोग करने से पाचन नली की श्लैष्मिक त्वचा को उत्तेजना मिलती है और आमाशय तथा उसके द्वारा गुदा की रक्ताभिसरण क्रिया बढ़कर उनमें शक्ति आती है। इसके सेवन से पेट

में गर्मी उत्पन्न होती है और पाचन क्रिया बढ़ती है। गुदा में स्थित उस नस के ऊपर जिस पर अर्श पैदा होते हैं चित्रक की प्रत्यक्ष क्रिया होती है। इसके सेवन से उस नस की शिथिलता नष्ट हो जाती है। यकृत के ऊपर भी इस औषधि की क्रिया स्पष्ट होती है। इसके सेवन से यकृत को उत्तेजना मिलती है और पित्त व्यवस्थित गति से बहने लगता है। यही कारण है कि चित्रक को देने पर मल हमेशा पीले रंग का उतरता है।

यह औषधि रक्त में मिलने के पश्चात् मल छोड़ने वाली ग्रंथि के ऊपर उत्तेजक असर डालती है और उसी समय चमड़ी के अन्दर रहने वाली स्वेद ग्रंथि के ऊपर भी इसकी विशेष क्रिया होती है। यही कारण है कि चित्रक को देने से बहुत पसीना होता है।

गर्भाशय के ऊपर चित्रक की क्रिया, अत्यन्त महत्व पूर्ण और ध्यान में रखने के काबिल होती है। साधारण बड़ी मात्रा में इसको देने से कमर की सभी इन्द्रियों में जलन पैदा होती है। दस्तें लगने लगती है। दस्तो के साथ गर्भाशय से रक्त बहने लगता है। पेशाब बूंद २ होने लगता है और गर्भाशय का संकोचन इतना अधिक होता है कि अन्त में गर्भपात हो जाता है इसके सेवन से जो गर्भपात होता है उसमें अगर विशेष सुश्रुषा और सावधानी न रक्खी जाय तो कमर के अन्दर जलन पैदा होकर स्त्री का जीवन खतरे में पड़ जाता है।

विषम ज्वर और खास करके यकृत और तिल्ली की वृद्धि पर चित्रक के उपयोग से बहुत लाभ होता है। ज्वर के अन्दर इसकी जड़ के चूर्ण को सोंठ, मिरच, पीपल के साथ देने से अथवा इसका अर्क देने से अच्छा लाभ होता है। ज्वर में जब रक्ताभिसरण क्रिया मन्द हो जाती है और रोगी अन्न नहीं खा सकता है उस समय चित्रक के उपयोग से अच्छा लाभ होता है। सूतिका ज्वर में चित्रक के उपयोग से अच्छा लाभ होता है। सूतिका ज्वर में चित्रक देने से २ प्रकार के प्रभाव दृष्टि गोचर होते हैं। एक तो इससे बुखार की कमी होती है। सारे शरीर की इन्द्रियों को उत्तेजना मिलती है। दूसरे गर्भाशय उत्तेजित होकर दूषित आर्तव बहने लगता है, जिससे मक्कल शूल मिटता है। सूतिका ज्वर में चित्रक को निर्गुण्डी के साथ देना चाहिये।

शिथिलता प्रधान पाचन नलिका के रोगों में चित्रक एक बहुत प्रभावशाली औषधि है। अरुचि, अग्निमांद्य और अजीर्ण के विकारों में इसकी ताजा जड़ के चूर्ण को वायबिडंग और नागरमोथे के साथ देने से पाचनशक्ति की व्यवस्था ठीक होकर नियमित भूख लगने लगती है। भोजन पर रुचि पैदा होती है और मन में प्रसन्नता उत्पन्न होती है। बड़ी आंत और छोटी आंतों की शिथिलता की वजह से पेट के अन्दर कभी कब्जियत, कभी दस्तें लगना ऐसी अव्यवस्था पैदा हो जाती है। उसको दूर करने के लिये चित्रक को इन्द्रजौ, सेंधा निमक और पीपलामूल के साथ देने से अच्छा लाभ होता है।

बवासीर के रोग पर भी चित्रक का प्रत्यक्ष असर होता है। इस कार्य के लिये इसको दही के साथ देना चाहिये।

चित्रक पेट में जाने के पश्चात् चमड़ी के छिद्रों के द्वारा बाहर निकलती है। जिससे त्वचा की जीवन विनिमय क्रिया में सुधार होता है। इस कारण गर्मी या उपदंश की दूसरी अवस्था में अथवा महाकुष्ठ रोग में इसका उपयोग होता है। इसी प्रकार चमड़ी के दूसरे रोगों में खास करके खुजली और कच्ची धातुओं के खाने से पैदा हुए रक्त विकार में इसको देने से अच्छा परिणाम होता है।

रासायनिक विश्लेषण—

सन् १८८५ में ढूलाग ने चित्रक की जड़ से प्लम्बेगो नामक पदार्थ प्राप्त किया और उसका नाम प्लम्बेगिन रक्खा गया। फ्लकीगर ने सन् १८८६ में इससे यही तत्व प्राप्त किया मगर यह उससे अधिक साफ था। राय और दत्त ने सन १६०८ में यह सिद्ध किया कि प्लम्बेगिन भारतवर्ष में पाई जानेवाली चित्रक की सभी जातियों में पाया जाता है। इसकी जड़ में यह '६१ प्रतिशत की तादाद में रहता है। भिन्न २ जातियों में और भिन्न २ परिस्थितियों में पैदा हुए पौधों में यह तत्व भिन्न २ मात्रा में पाया जाता है। इसका वृक्ष जितना पुराना होगा और जितनी सूखी जमीन में होगा उतना ही अधिक क्रिया शील तत्व इसकी जड़ों में पाया जायगा। यह भी पाया गया है कि इसकी ताजा जड़ों में प्लम्बेगिन अधिक-मात्रा में पाया जाता है।

मानवीय शरीर पर प्लम्बेगिन का प्रभाव—

सन् १९३१ में क्रिको नेइस तत्व (प्लम्बेगिन) के महत्व का अध्ययन किया। वे इस निश्चय पर पहुँचे कि थोड़ी मात्रा में लिये जाने पर यह केंद्रीय स्नायुमण्डल को उत्तेजित करता है और अधिक मात्रा में लेने से यह निष्क्रियता पैदा कर मृत्यु ला देता है। इससे रक्तभार कुछ गिरा हुआ मालूम पड़ता है। कम मात्रा में इसकी खुराक सारे शरीर के मज्जा तंतुओं को उत्तेजित कर देती है। लखनऊ में व्यास और लाल ने यह जाहिर किया कि यह एक तेज जलन करनेवाला पदार्थ है। इसमें कृमिनाशक गुण भी है। कम मात्रा में लिये जाने पर यह पसीना लाता है और अधिक मात्रा में लेने से श्वास क्रिया को रोककर जीवन को नष्ट कर देता है। इसका प्रभाव सीधा मज्जातन्तुओं पर पड़ता है। श्वलरोग और गंज के ऊपर भी इसके प्रयोग किये गये हैं और उसमें यह लाभदायक सिद्ध हुआ है। सारांश यह कि—

(१) यह एक तेज जलन पैदा करनेवाला और कृमिनाशक पदार्थ है। बाह्य उपचार में लेने से इसका प्रभाव जलन के रूप में मालूम पड़ता है। बेक्टेरिया नामक कृमि पर भी यह अपना प्रभाव दिखलाता है।

(२) प्लम्बेगिन का खास असर मज्जातन्तुओं पर होता है। कम तादाद में लेने पर यह मज्जाओं को उत्तेजित करता है और अधिक तादाद में लेने से उनको निष्क्रिय बनाता है।

(३) यह हृदय के मज्जा तन्तुओं की संकोचक क्रिया को उत्तेजना देता है। इसी प्रकार बृहद् अन्त्र और गर्भाशय की क्रिया पर भी अपना संकोचक असर दिखलाता है। इसका यह प्रभाव बहुत गहरा होता है।

(५) पसीना, मूत्र और पित्त की क्रियाओं को यह उत्तेजना देता है।

(६) इसके लेने से गर्भ या बच्चा चाहे वह मरा हुआ हो चाहे जीवित गर्भाशय के बाहर आ जाता है।

सुश्रुत के मतानुसार इसकी जड़ दूसरी औषधियों के साथ में सांप के विष पर उपयोगी है। मगर वेस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति न तो सर्पदंश में और न बिच्छू के विष में ही लाभदायक है।

डायमाक के मतानुसार चित्रक की जड़ बवासीर में लाभदायक है।

वाग्भट्ट के मतानुसार इसकी पीसी हुई जड़ बड़ी पौष्टिक होती है। इसे भिन्न भिन्न पौष्टिक वस्तुओं के साथ उपयोग में लेते हैं। गाय के घी और शहद के साथ इसे लेने से यह धातुपरिवर्तक हो जाती है।

चरक के मतानुसार चित्रक की जड़ सभी पौष्टिक पदार्थों में बहुत तेज है।

यूनानी मत – यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे के आखिर में गरम और खुश्क है। किसी २ के मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह पाचन शक्ति को उत्तेजित करती है। कामेंद्रिय में बहुत तेजी पैदा करती है। कफ को दस्त की राह निकाल देती है। चमड़े पर लगाने से छाला पटक देती है। इसको सिरके के साथ लगाने से दाद और सफेद दाग मिट जाते हैं, मगर बहुत जलन होती है और कभी २ घाव भी पड़ जाते हैं। कफ से पैदा हुई गठिया पर इसके लेप से लाभ होता है। इसकी तासीर बहुत गरम है, इसलिये इसकी गर्मी को दूर करने करने के लिये इसे पानी और नमक के साथ भिगोकर दूध के साथ हरीरा बनाकर लेना चाहिये। ऐसा करने से इसकी गरमी शान्त हो जाती है। इसके सेवन से गर्भवती स्त्री का गर्भ गिर जाता है। इसलिये गर्भवती स्त्री को यह औषधि नहीं लेना चाहिये।

उपयोग –

तिल्ली—घी गुवार के गूदा के ऊपर चित्रक की छाल का चूर्ण भुरभुरा कर खिलाने से तिल्ली मिटती है।

श्वेत कुष्ट--चित्रक की छाल को दूध या जल के साथ पीस कर कोढ़ और दूसरे प्रकार के त्वचा के रोगों पर लेप करना चाहिये अथवा इन्हीं चीजों के साथ पीस कर, पुल्टिश बना कर तब तक बंधा रखना चाहिये जब तक कि छाला न उठ जाय। छाला उठने पर उसको खोल लेना चाहिये इस छाले के आराम होने पर श्वेत कुष्ट के दाग मिट जाते हैं।

गठिया—इसी पुल्टिस को गठिया की सूजन पर १५। २० मिनिट तक बँधा रखने से लाभ होता है।

संग्रहणी—इसके क्वाथ और लुगदी से सिद्ध किये हुए घी का सेवन करने से संग्रहणी मिटती है।

बवासीर– इसकी जड़ की छाल के चूर्ण को दही के शा मट्ठे के साथ पीने से बवासीर में लाभ होता है।

पांडु रोग—इसके चूर्ण में आंवले के रस की ३ भावना देकर उसको गाय के घी के साथ रात में चटाने से पांडुरोग मिटता है।

नकसीर—इसके चूर्ण को शहद के साथ चटाने से नकसीर बन्द होती है।

मण्डल कुष्ट—इसका लेप या मालिश करने से मण्डल कुष्ठ में लाभ होता है।

श्लीपद—चित्रक और देवदारू को गौ मूत्र के साथ पीसकर लेप करने से श्लीपद में लाभ होता है।

मूढ़ गर्भ—इसकी जड़ को गर्भाशय के मुँह में रखने से अटका हुआ गर्भ या ओड़ गर्भाशय से बाहर निकल जाता है।

हानि कारक—यह फेंफड़े और जिगर को नुकसान पहुँचाती है। तथा गर्भवती स्त्री के गर्भ को गिरा देती है।

दर्प नाशक—फेफड़े के लिये इसका दर्प नाशक मस्तगी और बबूल का गोंद है तथा जिगर के लिये इसका दर्पनाशक गुलाब के फूल और सन्दल है।

प्रतिनिधी—इसके प्रतिनिधि तिल्ली के लिये मूगा या कटीर की जड़, दस्त लाने के लिये महोलोरा और दूसरी बातों के लिये मजीठ और नर कचूर है।

माना—इसकी मात्रा मनुष्य का बलाबल देख कर १ माशे से ३ माशे तक दी जा सकती है। बच्चों के लिये इसकी मात्रा ४ रत्ती तक की है।

बनावटें—

चित्रकादि घृत—चित्रक की जड़ ५ सेर लेकर उसको कूटकर एक हजार चौबीस तोला पानी में उबालना चाहिये जब चौथाई पानी शेष रह जाय तब उसे उतार कर छान लेना चाहिये। उस क्वाथ में ६४ तोला घी, १२८ तोला कांजी, २५६ तोला दही का मट्ठा और सूंठ, पीपर, चित्रक, चव्य, यवक्षार, सज्जीखार, सैंधानमक, संचार नमक, समुद्र नमक, काच नमक जीरा, स्याह जीरा, हलदी, दारू हलदी ये सब एक २ रुपये भर काली मिरच २ रुपये भर। इन सब चीजों को सिल पर पानी के साथ पीसकर लुगदी बनाकर कड़ाही में रखकर धीमी आंच से औटाना चाहिये। जब सब चीजें जलकर घी मात्र शेष रह जाय, तब उसे उतार कर छान लेना चाहिये। इस घी को १ तोले से ४ तोले तक की मात्रा में दूध अथवा दूसरे अनुपान के साथ देने से तिल्ली और लीव्हर की वृद्धि, सूजन, उदर रोग, संग्रहणी, पुराना अतिसार, पेट का फूलना, पसलियों का दर्द और पीनस रोग में बहुत लाभ होता है।

चित्रकादि चूर्ण—चित्रक की जड़, आमला, हरड़, पीपर, रेवन्द चीनी, और सैंधा नमक। इन सब चीजों को समान भाग लेकर, चूर्ण बनाकर, ४ माशे से ५ माशे तक की मात्रा में प्रतिदिन सोते समय गरम पानी के साथ लेने से पुराना सन्निपात, वायु के रोग और आंतों के रोग मिटते है।

मानसिक रोग नाशक चूर्ण—चित्रक की जड़, ब्राह्मी, और वच का समान भाग चूर्ण बनाकर एक माशे से दो माशे तक की मात्रा में दिन में तीन बार देने से उन्माद, हिस्टीरिया, मालीखोलिया, इत्यादि रोगों में लाभ होता है। (जंगलनी जड़ी बूटी)

चित्र हरीतिकि अवलेह—चित्रक की जड़ का क्वाथ, आंवले का रस, नीम गिलोय का रस और दश मूल का क्वाथ, ये चारों चीजें प्रत्येक दो २ सो तोला। हरड़ को पानी के साथ उबालकर उसका निकाला हुआ गूदा १२८ तोला और गुड़ २०० तोला। इन सब चीजों को मिलाकर मन्दाग्नि से पकाना चाहिये। जब अवलेह की तरह हो जाय, तब नीचे उतार कर उसमें सोंठ, मिरच, पीपर, तज, तमाल-पत्र, इलायची और नाग केशर का दो २ तोला चूर्ण और १ तोला यवक्षार डाल देना चाहिये। ठण्डा होने पर दूसरे दिन उसमें १६ तोला शहद भी मिला देना चाहिये।

इस औषधि को १ से लेकर २॥ तोले तक की मात्रा में लेने से श्वास, खांसी, कृमिरोग, मन्दाग्नि पीनस, बवासीर, इत्यादि रोग नष्ट होते है। अधिक समय तक सेवन करने से जीवन की विनिमय क्रिया में बहुत सुधार होता है।

षड् धरण योग—चित्रक को जड़, इन्द्रजो, काली पहाड़ की जड़, कुटकी. अतीस और हरड़ ये सब चीजें समान भाग लेकर, चूर्ण बनाकर २ माशे से ४ माशे तक की मात्रा में लेने से सब प्रकार के वात रोग मिटते हैं।

चितावला

नाम—

पंजाब—चितावला। लेटिन—Senicio Densiflorus (सेनिसिओ डेन्सीफ्लोरस)

वर्णन—

यह वनस्पति मध्य और पूर्वी हिमालय तथा खासिया पहाड़ियों में पैदा होती है। यह एक झाड़ीनुमा पौधा है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते फोड़ों पर उनको मुलायम करने और पकाने के लिये लगाये जाते हैं।

चिनइसलित

नाम—

बम्बई—चिनइसलित। तामील—मुरुवल। लेटिन—Pisonia Morindaifolia (पाइसोनिया मोरिन्डैफोलिया)

वर्णन—

यह वनस्पति अफगानिस्तान में पैदा होती है और भारतवर्ष में भी कहीं-कहीं बोई जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते श्लीपद रोग की जलन के ऊपर प्रदाह को कम करने के उपयोग में लिये जाते हैं।

चिनार

नाम—

पञ्जाब—चिनार, चनार। काश्मीर—बुअ, बुइन, बोइन। फारसी—चिनार। उर्दू—चिनार। लेटिन—Platanus Orientalis (प्लेटेनस ओरिएण्टेलिस)

वर्णन—

यह वनस्पति उत्तर पश्चिमी हिमालय में पैदा होती है। यह एक बड़ा जंगली वृक्ष होता है। इसकी छाल का रंग कुछ सफेद होता है। इसके पत्ते लम्बे की अपेक्षा चौड़े अधिक होते हैं। इसका फल लम्बा गोल होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत के अनुसार इसकी छाल कड़वी और खराब स्वादवाली होती है। यह धवल रोग और जहरीले जानवरों के काटने पर लाभ दायक है। इसका फल और पत्ते नेत्र रोगों पर बड़े लाभ दायक हैं। ये दन्तरोग, घाव, गले की बीमारियां और गुर्दे के रोगों में भी मुफीद है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते नेत्र रोगों में लाभ दायक है। इसकी छाल अतिसार में उपयोगी होती है। इसमें एलेंटाइन और एसनेरेगिन नामक पदार्थ पाये जाते हैं।

चिड़िया गंद

नाम—

यूनानी—चिड़िया गन्द।

वर्णन—

यह एक वनस्पति की जड़ है जो किसी कदर सालम मिश्री से मिलती जुलती होती है। यह हिमालय में कुमाऊ के आसपास पैदा होती है। गीली हालत में इसके अन्दर इतनी तेजी होती है कि चबाने से जबान पर छाले पड़ जाते हैं। सूख जाने के बाद इसमें इतनी तेजी नहीं रहती।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वस्तु के सेवन से मनुष्य की काम शक्ति में बहुत वृद्धि होती है। (ख० अ०)

चिरपोटी

नाम—

संस्कृत—चिरपोटा, दीर्घरसा, ज्वर कारिणी, कुन्तली, पटोल, रक्तहंसी। हिन्दी—चिरपोटी, पनपोखा, पटपोना, बनपोता। गुजराती—टपोडा। मराठी—चिरबूटी, चिरपोटा। लेटिन—Zanonia Indica. झेनोनिया इण्डिका।

वर्णन—

यह वनस्पति बरसात में बहुत पैदा होती है। यह एक लता है जो बहुधा पहाड़ी जमीन पर फैलती है। इसके पत्ते धतूरे के पत्तों की तरह और बहुत पतले होते हैं। इसके फूल पीले रंग के और फल चिकने और छोटे बेर की तरह होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से इसके पत्ते प्रदाह को कम करने वाले और फल शीतल तथा मृदु विरेचक होते हैं। दमा और वायु नलियों के प्रदाह में ये लाभ दायक हैं। ज्वर और पित्त में भी ये फायदा पहुँचाते हैं।

यूनानी मत से इसका ताजा रस छिपकली के जहर को दूर करने वाला होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह मृदु विरेचक, कृमि नाशक, ज़हर निवारक, दमा तथा खांसी में उपयोगी है।

उपयोग—

आक्षेप—इसके पत्तों को मक्खन और दूध में पीसकर लेप करने से आक्षेप की पीड़ा मिटती है।

फोड़े फुन्सी—इसके पत्तों को जल में औटाकर उस जल से स्नान कराने से फोड़े, फुन्सी, खुजली और जलन मिट जाती है।

विष के उपद्रव—इसके ताजा पत्तों का स्वरस पिलाने से जहर के उपद्रव दूर होते हैं।

चिरबोटी

नाम—

संस्कृत—चिरपोटा, टंकारी, लक्ष्मीनिया। हिन्दी—चिरबोटी, तुलसी पत्र। बंगाल—टंकारी फुलेपुटीर। गुजराती—पारटो, परपोटो। मराठी—रानपाड़ो, चिरबोटी। लेटिन—Physalis Indica फिजेलिस इण्डिका।

वर्णन—

इसका पौधा फुट भर ऊंचा होता है और यह वर्षा ऋतु में पैदा होता है। इसके ऊपर उत्तम स्वादिष्ट, नारंगी रंग के और बेर के समान फल आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति पौष्टिक मूत्रल और विरेचक होती है। कब्जियत के अन्दर इसका फल बहुत उपयोगी होता है। मकोय की यह एक उत्तम प्रतिनिधि है। सुजाक में इसका फल देने से लाभ होता है। इसके पंचांग को चांवलों के पानी में पीसकर स्तनों पर लेप करने से स्तन कठोर होते हैं। दमे के अन्दर इसकी जड़ और सुहागी को शहद के साथ देने से कफ निकल जाता है और शान्ति मिलती है।

—०—

चिरायता

नाम—

संस्कृत—चिरतिक्त, भूनिंब, चिरतिक्ता, किराततिक्त, ज्वरान्तक, नाडितिक्त, सन्निपातहा। हिन्दी—चिरायता। बंगाल—चिरेता। गुजराती—करियातूं। मराठी—चिराइत काड़ी किराइत, फूल किराइत। फारसी—कसबूकरीराह, नैनिहाद। अरबी—कसबूकरीराह। लेटिन—Swertia Chirata स्वेरटिया चिरेटा।

वर्णन—

यह छोटी जाति का क्षुप हिमालय के मध्य में नेपाल से काश्मीर तक और कुमाऊँ में होता है। यह नेपाल के मोरंग परगने में बहुत पैदा होता है। इसका क्षुप ३ फुट तक लम्बा होता है। फूल आने के बाद सारे पौधे को निकालकर सुखा लिया जाता है। इसकी डालियां कालापन लिये हुए पीले रंग की होती है। इसके फूल पीले और तुर्रेदार होते हैं। इसके फलियां लगती हैं जिनमें बहुत बीज रहते हैं। इसका पंचांग अत्यन्त कड़वा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से चिरायता शीतल, दीपन, पाचन, कटु पौष्टिक, ज्वरघ्न, दाहनाशक, मृदुविरेचक, और पार्यायिक ज्वरों को दूर करनेवाला होता है। यह कृमिनाशक भी है तथा प्यास, कफ, पित्त, कुष्ठ, व्रण, दमा, श्वेतप्रदर, खांसी, सूजन, बवासीर, और अरुचि को दूर करनेवाला होता है। गर्भावस्था की मतली में यह बहुत लाभ पहुँचाता है। इससे आमाशय की रस क्रिया भी शुद्ध होती है और अन्न भली प्रकार पचता है।

जीर्ण विषम ज्वर के अन्दर जब कि विषम ज्वर का विष शरीर के अन्दर गुप्त रूप से रहता है और अपना स्वरूप ज्वर के रूप में प्रकट न करके अजीर्ण, अग्निमांद्य और हलकी हरारत के रूप में प्रगट करता रहता है। ऐसी स्थिति में इन उपद्रवों को नष्ट करने के लिये चिरायता बहुत उपयोगी होता है। चिरायते का ज्वरघ्न धर्म अत्यन्त मृदु स्वभाव होता है इसलिये ज्वर की चिकित्सा में केवल इसी

वस्तु के ऊपर विश्वास नहीं रखा जा सकता। पार्यायिक ज्वरों को रोकने की शक्ति भी इसमें बहुत कम है। श्वास नलिका की सूजन और उसके संकोच विकास की वजह से पैदा हुए दमे में चिरायता लाभदायक है। आमाशय की शिथिलता में यह एक उत्तम औषधि है। इससे जीभ साफ होती है और दस्त भी साफ होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से दूसरे दर्जे के आखिर में गरम और खुश्क है। यह खून को साफ करता है। दिल और जिगर को ताकत देता है, पेशाब अधिक लाता है, जलोदर, सीने का दर्द, गुर्दे का दर्द, गर्भाशय का दर्द, पुरानी वात और खांसी में यह मुफीद है, सर्दी की वजह से पैदा हुई जिगर और मेदे की सूजन को यह मिटाता है, बिगड़े हुए बुखार में यह लाभ पहुँचाता है, चर्म रोग सम्बन्धी बीमारियां जैसे—खुश्क और तर खुजली, कुष्ट, चमड़ी के नीचे खून जम जाने से पड़े हुए दाग इसके लेप से मिट जाते हैं। अजमोद के साथ इसको देने से पागलपन में लाभ होता है। इसको पीस कर आंख में लगाने से आंख की ज्योति बढ़ती है। बूँद २ पेशाब आने की बीमारी भी इसके सेवन से मिट जाती है। इसके सेवन से हाजमा दुरुस्त होकर भूख बढ़ जाती है। हलका दस्तावर होने की वजह से इससे कब्जियत में भी लाभ होता है। इसको गुलाब के तेल और सिरके के साथ पीस कर आग से जले हुए स्थान पर लगाने से फायदा होता है।

भारतवर्ष में यह एक सुप्रसिद्ध कटु पौष्टिक औषधि मानी जाती है। यह बिलकुल कड़वा और गन्ध रहित होता है। कटु पौष्टिक होते हुए भी यह इस जाति की अन्य औषधियों की तरह आंतों में संकोचन पैदा नहीं करता बल्कि दस्त में नियमितता ला देता है। यह पित्त को उत्तेजित करता है और पित्तस्राव क्रिया को व्यवस्थित करता है। इसलिये गठिया से पीड़ित मनुष्यों को इसे पौष्टिक पदार्थ के रूप में देने से अच्छा लाभ होता है।

यह पौष्टिक, ज्वर नाशक और विरेचक है। ज्वर, शरीर की जलन, आंतों के कृमि और चर्म रोगों पर यह अच्छा लाभ पहुंचाता है। ज्वर के अन्दर यह ज्वर निवारक पदार्थ के रूप में कम मगर पौष्टिक वस्तु के रूप में अधिक उपयोगी होता है।

फ्लेमिंग के मतानुसार चिरायता में, सभी प्रकार के अग्नि प्रवर्द्धक, पौष्टिक, ज्वरघ्न और अतिसार नाशक गुण मौजूद रहते हैं। यही गुण जेन्शन वर्ग में भी बतलाये गये हैं। बल्कि यूरोप से जो जेन्शन यहां आता है उसकी अपेक्षा चिरायता में ये गुण अधिक मात्रा में पाये जाते हैं।

इसमें पाये जाने वाले कटु तत्त्व १.४२ से १.५२ प्र० श० तक रहते हैं। यह मात्रा जेन्शन में पाये जाते वाले कटु तत्त्व से भी अधिक है। चिरायता अमेरिका और इंग्लैण्ड के फरमाकोपिया में सम्मत माना गया है।

रासायनिक विश्लेषण—

डिमाक और कीड़ के मतानुसार चिरायता एक प्रकार की कटु-वनस्पति है। यह खास करके

अन्न प्रणाली के ऊपर अपना विशेष प्रभाव बतलाती है। मुंह में जाकर यह स्वाद के स्नायुओं को उत्तेजित करती है। पेट में पहुँचकर यह उदर ग्रंथियों को और पाकस्थली के रस प्रवाह को उत्तेजित करती है। जिससे क्षुधा तेज होती है और पाचन शक्ति सुधर जाती है। यह एक अग्नि प्रवर्धक और पौष्टिक पदार्थ है। वृहदन्त्र के ऊपर भी यह अपना प्रभाव दिखलाती है। यह ऐसे मलेरिया ज्वरों में अधिक उत्तम पाई गई है जिनमें खास लक्षण अग्निमांद्य का पाया जाता है।

डायमाक के मतानुसार पश्चिमी भारत में वायु नलियों के प्रदाह की वजह से पैदा हुई दमें की बीमारी में इसका सफलता के साथ उपयोग किया जाता है।

महर्षि चरक के मतानुसार यह मुंह से होने वाले रक्तस्राव में और दूसरे रक्तस्राव में तथा जलोदर में लाभदायक है।

हारीत के मतानुसार चिरायते को पीसकर, शहद के साथ मिलाकर गर्भावस्था में होने वाली उल्टियों में देने से लाभ होता है।

दत्त के मतानुसार चिरायता, नीम गिलोय, त्रिफला और आंबी हलदी का काढ़ा बना कर देने से पित्त ज्वर, आंतों के कृमि, शरीर की जलन और चर्म रोगों में लाभ होता है।

बनावटें—

सुदर्शन चूर्ण— त्रिफला, हलदी, दारू हलदी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, कचूर, चित्रक, पीपला मूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, नीम गिलोय, धनिया, अडूसा, कुटकी, पित्त पापड़ा, मोथा, त्रायमाण, नेत्रवाला, नीम की छाल, पोकर मूल, मुलैठी, जवासा, अजवायन, इन्द्रजौ, भारंगी, सहंजने के बीज, फिटकरी, वच, तज, पद्माक, खस, चन्दन, अतीस, बरियारा, शालपर्णी पृष्टपर्णी, वायविडंग, तगर, तेजपात, देवदारू, चव्य, पटोलपत्र, जीवक, ऋषभक, काकड़ा सिंगी, लौंग, वंशलोचन, कमलगट्टा, काकोली, पत्रज, जावत्री, तालीस पत्र। इन सब औषधियों को समान भाग लेकर जितना इन सबका वजन हो उससे आधा चिरायता इसमें मिलाकर बारीक चूर्ण करलें। यही आयुर्वेद का सुप्रसिद्ध महा सुदर्शन चूर्ण है।

इस चूर्ण को २ माशे से ३ माशे तक की मात्रा में लेने से सब प्रकार के ज्वर, श्वास, खांसी पाडु रोग, हृदय रोग, कामला और पीठ, कमर तथा घुटनो का दर्द नष्ट होता है।

षोडशांग चूर्ण— चिरायता, नीम की छाल, कुटकी, गिलोय, हर्र, मोथा, धनिया, जवासा, चिरायते का फल, कटेरी, काकड़ासिंगी, सोंठ, पित्त पापडा, माल कांगनी, परवल के पत्ते, पीपर और कचूर। इन सब औषधियों को समान भाग लेकर उनका चूर्ण बना लेना चाहिये। यह षोड़शांग चूर्ण सब प्रकार के ज्वरों को नष्ट करने में सिद्ध हस्त है।

चिरायता मीठा

नाम—

हिन्दी—चिरायता पहाड़ी। मराठी—पहाड़ी चिरेता। लेटिन—Swertia Augustifolia स्वेरटिया अगस्टिफोलिया।

वर्णन—

यह वनस्पति हिमालय के अन्दर चिनाव से भूटान तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह चिरायते के बदले में उपयोग में लिया जाता है।

इसकी एक जाति और है जिसे लैटिन में "स्वेरटिया पर परेसेंस" (Swuertia Purpurascens) कहते हैं यह भी चिरायते के बदले काम में आती है।

इसकी एक तीसरी जाति जिसको लेटिन में "स्वेरटिया एलेटा" (Swetia Alata) और पंजाब में चिरेता, इकन तूटिया और काश्मीर में बुई कहते हैं और होती है वह भी पौष्टिक व और ज्वर निवारक है।

चिरायता बड़ा

नाम—

हिन्दी- बड़ा चिरायता। लेटिन—Exacum Bicolor (एक्जेकम बायकलर)।

वर्णन—

यह छोटा पौधा हिन्दुस्तान के दक्षिण में और कोकण में बरसात के दिनों में पैदा होता है। इसके फूल सफेद और सुन्दर होते हैं इसकी कली बदामी मुलायम और चमकीली होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक और अग्निप्रवर्धक होती है। इसे जेनशियन रूट के बदले में उपयोग में लेते हैं।

चिन्नी

नाम—

दक्षिण—चिन्नी। तामील—चिन्नी। तेलगू—चिन्नी। लेटिन—Acalyphc Fruticosa (एकेलिफा फ्रुटिकोसा)

वर्णन—

यह एक झाड़ीनुमा वृक्ष है। इसके पत्ते गोल, छोटे और हरे रंग के होते हैं। यह वनस्पति दक्षिण तथा सीलोन में पैदा है।

गुण दोष और प्रभाव—

एन्सली के मतानुसार इसके पत्ते धातु परिवर्तक, दुर्बलता को दूर करने वाले और जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाले होते हैं। इनका योग निरांश आधे चाय के चम्मच की मात्रा में दिन में दो बार दिया जाता है।

चिरवल

नाम—

हिन्दी—चिरवल। बंगाल—सुरगुली। मराठी—चिरवल। तामील—चायवेर, इम्बुरेल, इम्बरल। तेलगू—चिरिवेर, चेरिवेरू। लेटिन—Oldenlandia Umbellata (ओलडेनलेंडिया अम्बेलेटा)

वर्णन—

यह वनस्पति वर्षाऋतु में पैदा होती है। इसका पौधा छोटा और वर्षजीवी होता है। इसके पत्ते छोटे और फली लम्बगोल रहती है। इसकी जड़ें लम्बी, कोमल और नारंगी के रंग की होती हैं। हैं। इसकी जड़ों से रंग भी तैयार किया जाता है। औषधि में इसके पत्ते और जड़ें काम में आती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते और इसकी जड़ें कफ निस्सारक होती हैं। वायु नलियों के प्रदाह, जुकाम, दमा और क्षय में ये लाभ दायक हैं। इसकी जड़ का काढ़ा जो कि १० गुने जल में तैयार किया जाता है, आधे से १ औंस की मात्रा में देने से वायु नलियों के प्रदाह और दमे के रोग में बहुत लाभ होता है।

वाट के मतानुसार इसकी जड़ सर्पदंश के उपचार में विशेष रूप से उपयोगी मानी जाती है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्पदंश में निरुपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि कफ निस्सारक और ज्वरनाशक है इसे सर्पदंश के उपचार में काम में लेते हैं। इसमें एलिक फेरिन नामक पदार्थ पाया जाता है।

चिराइलु

नाम—

हिन्दी—चिराइलु। पंजाब—सारगर, शिनवाला, सिमरंग। गढ़वाल—चिमुरा, सिमरिश। कश्मीर—नागर। कुमाऊ—चिमुर। नेपाल—चराइला। लेटिन—Rhododendron Campn

[illegible]

वर्णन—

यह वनस्पति हिमालय में काश्मीर से भूटान तक पैदा होती है। यह हमेशा हरी रहने वाली झाड़ी है। इसकी छाल चिकनी और हलके बादामी रंग की होती है। इसके फूल सफेद और भीतर से हलके गुलाबी और बैंगनी रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति पुराने संधिवात, उपदंश और संग्रहणी रोग में लाभदायक है। इसकी सूखी डालियाँ क्षय रोग और जीर्ण ज्वर में उपयोगी है। इसके पत्तों को तम्बाकू के साथ मिलाकर सूंघने से आधाशीशी दूर होती है।

कर्नल चौपरा के मतानुसार यह आधा शीशी, जुकाम, सन्धिवात, और संग्रहणी रोग में लाभदायक होता है।

—o—

चिरियारी

नाम—

संस्कृत—क्षिज हरेता, क्षिप्र हरदी, क्षिरट, कटगलि। हिन्दी—चिरचारी, चिरियारा। बम्बई—निचरडी। बंगाल—बनोकरा। गुजराती—झीरटो। लेटिन—Triumfetta Rotundifolia ट्रिम्फेटा रोटंडिफोलिया।

वर्णन—

इस औषधि की दो जातियाँ होती हैं। एक को गुजराती में झीटा और दूसरी को झीपटी कहते हैं। झीपटी का लेटिन नाम Triumfetta Rnomboidea. ट्रिम्फेटा राहम बोडिया है। यह वनस्पति विशेष कर बरसात में पैदा होती है। इसके पौधे १॥ से ३॥ फीट तक ऊंचे होते हैं। इसके पत्ते आधे से डेढ़ इंच तक लम्बे और उतने ही चौड़े होते हैं। इन पत्तों पर बारीक रुंए होते हैं। इसके फूल पीले रंग के होते हैं। ये गुच्छों में लगते हैं। इसके फल चने के दाने के बराबर या उनसे कुछ छोटे होते हैं। इन फलों पर बांका अनी वाले कांटे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से इसकी जड़ कड़वी और ठंडी रहती है। यह पौष्टिक, रक्तस्राव को रोकने वाली, दुग्ध वर्धक, कामोद्दीपक और शीतल होती है। इसके पत्ते, फूल और फल स्निग्ध, संकोचक और लुआबदार होते हैं। ये सुजाक में उपयोगी हैं।

इस औषधि के अन्दर जखम से बहते हुए खून को बन्द करके उसको अच्छा कर देने की अद्भुत शक्ति है। झीपटे के पत्तों को चबाकर या पीसकर जखम पर लगा देने से जखम से बहता हुआ खून तुरन्त बन्द हो जाता है। तीर, तलवार, कुल्हाड़ी, हंसिया, चाकू, इत्यादि किसी भी शस्त्र से लगे

हुए घाव का खून बन्द करने के लिये यह औषधि बहुत प्राचीन समय से उपयोग में ली जाती है। इसके लगाने से घाव बिना पके हुए भर जाता है।

बाह्य उपचार की तरह आंतरिक उपचार में भी यह औषधि बहुत प्रभावशाली है। इसकी ६ मासे जड़ को पानी में पीसकर शक्कर मिलाकर दिन में दो बार पीने से बवासीर में से गिरने वाला खून, फैंफड़े के जरिये होने वाला रक्त स्राव, और खूनी अतिसार तत्काल बन्द हो जाता है।

इसकी जड़ का काढ़ा प्रसूति के समय पीने से बच्चा आसानी से पैदा हो जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति कुआबदार और शांति दायक होती है। यह प्रसव में भी लाभदायक है।

—०—

चिरिला रिल

नाम—

यूनानी—चिरिला रिल।

वर्णन—

ये एक पेड़ के पत्ते हैं जो मोटे और खुरदरे होते हैं। ये ५ से ७ इंच तक लम्बे होते हैं। ये नोक की तरफ से जरा मुड़े हुए और किनारों पर कटे हुए होते हैं। इनको मसलने से एक खास तरह की गन्ध आती है। (ख० अ०)

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों का यंत्र द्वारा अर्क खींचा जाता है। यह अधिक मात्रा में जहर है। थोड़ी मात्रा में सूखी खांसी के लिये मुफीद है। कम्प वायु और मेदे की बीमारी में भी यह लाभ दायक है। स्त्रियों के स्तन जब दूध की वजह से सूज गये हो और बहुत दर्द हो तब इसका लोशन लगाने से बड़ा फायदा होता है।

———

चिरौंजी

नाम—

संस्कृत—प्रियाल, चार, खरस्कन्द, बहुलवल्कल, स्नेहबीज, इत्यादि। हिन्दी—चिरौंजी। बंगाल—चिरौंजी, पियाल। मराठी—चारोली। गुजराती—चारोली। तेलगू—चारूपप्पू। तामील—काटमरा। पञ्जाब—चिरोली। फारसी—बुकजे खाशा। अरबी—हब्बुस्समाना। लेटिन-Buchanania Latifolia बुचेनेनिया लेटिफोलिया।

वर्णन

चिरौंजी के वृक्ष प्रायः सारे भारतवर्ष में छिटपुट होते हैं। इसके पत्ते छोटे २ नोकदार और

खरखरे होते हैं। इसके फल करौंदे के समान नीले रंग के होते हैं उनमें से जो मगज निकलती है उसे चिरोंजी कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से चिरौंजी मीठी, भारी, स्निग्ध, मल को रोकने वाली, शीतल, धातुवर्धक, कफ कारक, कामोद्दीपक, वात नाशक तथा पित्त दाह, ज्वर, तृषा, रक्त रोग, रक्तविकार और वनक्षय में लाभ पहुंचाने वाली होती है। चिरौंजी की मगज मधुर वीर्य वर्धक, स्निग्ध, शीतल, मलस्तम्भक, हृदय को हितकारी, शुक्रजनक और वात पित्त नाशक है। चिरौंजी का तेल मधुर, भारी, किंचित गरम कफ कारक और वात पित्त को दूर करने वाला होता है। चिरौंजी की जड़ कसैली, कफ पित्त नाशक और रुधिर विकार को दूर करने वाली है। चिरौंजी में मांस वर्द्धक द्रव्य २० प्रतिशत, मैदा २१॥ प्र० शत, और तेल ५८॥ प्र० शत होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और पहले दर्जे में तर है। इसका फल दूसरे दर्जे में सर्द और तर है। यह शरीर को मोटा करती है। इसको पीस कर मुंह पर मलने से शरीर का सौंदर्य बढ़ता है। इसके सेवन से मनुष्य की कामशक्ति और वीर्य में बहुत वृद्धि होती है। तर खुजली के अन्दर आध पाव चिरौंजी को, आध पाव गुलाब जल में खूब पीस कर उसमें १॥ तोला सुहागा मिला कर लगाने से ३ दिन में बहुत लाभ होता है। इसका फल पित्त के उपद्रव और खून के उपद्रव को मिटाता है, सिर दर्द को दूर करता है। इसे अधिक खाने से पेट फूल जाता है।

उपयोग—

मिलामें की सूजन—चिरौंजी को तिल और भैंस के दूध के साथ पीस कर खाने से मिलामें की सूजन मिटती है।

मकड़ी का विष—चिरौंजी को तेल के साथ पीस कर मालिश करने से मकड़ी का विष दूर होता है।

सर्दी—चिरौंजी के खाने से कलेजे, फेफड़े और मस्तक को सरदी मिटती है।

खुजली—चिरौंजी का गुलाब जल में पीस कर मालिश करने से चेहरे पर होने वाली फुन्सियां और दूसरी खुजली मिट जाती है।

पित्ती—एक छटांक भर चिरौंजी खा जाने से शरीर में उछली हुई पित्ती शान्त हो जाती है। एक अनुभवी का कथन है कि अगर पित्ती किसी दवा से न जाय तो इससे जरूर चली जाती है।

चिरड़ा (सप्तरंगी)

नाम—

संस्कृत—सप्तचक्रा, सप्तरंगा, वक्रमूला, स्वर्णमूला, भूमिगन्ध, भूतगन्धा। हिन्दी—चिरड़ा, चिड़ार, चैरे। मराठी—सप्तकपि, कुलकुलटा, कादलाशिंगी। तामोल—करनशिंगी। तेलगू—कारापका। बम्बई—ओकरा, मारो। लेटिन—Casearia Esculeat। केसेरिया एसक्युलेंटा।

वर्णन—

यह वनस्पति कोंकण, दक्षिण हिन्दुस्तान के पहाड़ और लंका में पैदा होती है। यह एक प्रकार का छोटा वृक्ष है। इसकी डाल पीली और सफेद रंग की होती है। इसका फल नारंगी रंग का, डेढ़ इंच लंबा, अण्डाकृति और खाने के लायक होता है। इस फल में बहुत से बीज रहते हैं। इन बीजों पर एक प्रकार का लाल रंग का आवरण रहता है। इसकी जड़ की छाल लकड़ी सुनहरी रंग की होती है। इसकी जड़ का स्वाद कड़वा और तूरा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से इसकी जड़ कड़वी, कसैली, मृदुविरेचक, वायुनाशक और सुगन्धित होती है। यह ज्वर और तृषा को शमन करती है। पसीना लाती है। यकृत के लिये यह एक उत्तेजक पदार्थ है। इसके लेने से बिना किसी तकलीफ के १-२ पीले रंग के दस्त होजाते हैं। इसकी मात्रा अधिक हो जाने पर भी किसी प्रकार की हानि होने की सम्भावना नहीं रहती। इससे पाचन की विनिमय क्रिया सुधरती है, भूख लगती है और पेट में वायु इकट्ठी नहीं होती है।

यह वस्तु विशेषकर यकृत के रोग में उपयोग में ली जाती है। यकृत की वृद्धि और बवासीर के रोग में यह बहुत उपयोगी है। इससे यकृत की वृद्धि और उसकी जड़ता दूर होकर वह पूर्व स्थिति में आजाता है। अर्श रोग के अन्दर इसकी जड़ को ठंडे पानी में पीसकर लगाने से और इसके पत्तों का रस घी के साथ खिलाने से या इसकी जड़ का चूर्ण ६ माशे की मात्रा में मक्खन के साथ देने से बहुत अच्छा असर होता है।

यकृत की खराबी से पैदा हुए मधुमेह रोग पर इस वनस्पति की विलक्षण क्रिया होती है। इससे पेशाब के साथ शक्कर जाना बहुत जल्दी कम हो जाता है। पेशाब की तादाद भी घट जाती है। पित्त युक्त पतले दस्त होते हैं। पेट का फूलना बन्द हो जाता है, पसीना आना बन्द हो जाता है, अगर पांवों में सूजन आगई हो तो वह भी मिट जाती है, और शक्ति बढ़ती है। रोगी का रंग सुधर जाता है। लेकिन यह ख्याल रखना चाहिये कि सब प्रकार के मधुमेह रोग पर यह औषधि उपयोगी नहीं पड़ती। यकृत की खराबी से पैदा हुए मधुमेह रोग में इसके साथ किसी दूसरी औषधि को देने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि यह स्वतः बहुत तेजस्वी औषधि है। फिर भी इसके साथ अगर जामुन की गुठली और लहसन दिया जाय तो विशेष लाभ होता है। यह औषधि एक साथ बहुत दिन तक देने से पेट में जलन होती है और पेशाब में फिर शक्कर आने लग जाती है। इसलिये इसको आठ दिन देकर फिर आठ दिन बन्द कर देना चाहिये। लगातार नहीं लेना चाहिये। इसकी क्रिया बड़ी तेजी से और बड़ी स्पष्ट होती है। इसलिये इसका प्रभाव स्थायी रहता है या नहीं यह संदिग्ध है।

मात्रा—इसकी मात्रा पत्तों के स्वरस की ६ माशे से एक तोला तक और क्वाथ के रूप में एक तोला जड़ के चूर्ण का क्वाथ बनाकर लेना चाहिये।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषध यकृत की क्रिया को उत्तेजना देती है। यह

चिला [चिलिराघ]

नाम—

गढ़वाल—चिलिराघ, चिला, चिल्दी, वंग, चिलटो, रंमुला, तेलीगर्षा। अलमोड़ा—राया-शोल। भूटान—दमसिध। काश्मीर—वादर, बुदार। कुमाऊ—राघ, रइसला, रंसाल। नेपाल—गोग-रियासुला। लेटिन—Abies Webbiana (एबिस वेबियाना)

वर्णन—

यह हमेशा हरा रहने वाला ऊँचा और बड़ा वृक्ष हिमालय में नेपाल के आस पास पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके सूखे पत्ते उत्तरी हिन्दुस्थान और बंगाल में तालीस पत्र के नाम से मशहूर है। मगर असली तालीस पत्र दूसरी वस्तु है, जिसका वर्णन आगे दिया जायगा। यह वनस्पति (चिलिराघ) पेट का आफरा उतारने वाली, कफ निस्सारक, अग्नि वर्धक, पौष्टिक और संकोचक होती है। क्षय रोग, दमा, वायुनलियों के प्रदाह और मूत्राशय के रोगों में इसके पीसे हुए पत्ते अडूसे के रस और शहद के साथ दिये जाते हैं।

इसके ताजा पत्तों का रस ज्वर निवारक और बच्चों के दांत आने के समय की पीड़ा को दूर करने वाला माना जाता है। इसका शीत निर्यास गले के रोग और स्वरभंग में भी उपयोगी माना जाता है।

चिलौनी

नाम—

हिन्दी—चिलौनी, मकरिवा, मकरिया, मकूसल। नेपाल—अवलि चिलौनी। आसाम—चिलौनी, मकरिया, मकसूल। लेटिन—Schima Wallichii (स्किमा वेलीची)

वर्णन—

यह वनस्पति नेपाल, सिक्किम, खासिया पहाड़ियां, मनीपुर और चिटगांव में पैदा होती है। यह एक बड़ा वृक्ष होता है। इसके पत्ते लम्बगोल, फूल सफेद और सुगन्धित और फल लम्ब गोल होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह चर्म दाहक और कृमि नाशक होती है। इसमें सेपानिन पाया जाता है।